॥ ओ३म् ॥

महर्षिचरितामृतम्

संस्कृत नाटक

व

हिन्दी अनुवाद

निःशेषसंसृतिदुरूहविधेयधुर्यां
मेधाविनः सफलताप्तितयाऽद्रियन्ते ।
निःश्रेयसे जगति या परमावदातां
मेधां विधेहि मयि तां परमेश ! भव्याम् ॥

—रचयिता—
मोहमयीगुरुकुलस्य
प्रतिष्ठितस्नातकः सत्यव्रत. वेदविशारदः
माटुंगा, मुंबई–१९

समर्पण

आर्यजीवन संपन्न 'महर्षिचरितामृतम्।
जननी राजकीर्तिकी श्रीसुमित्राकोसमर्पित ॥

*

अनुक्रम

———

कृतज्ञताप्रकाशः

(१) षड्दर्शनार्य्यभाष्यकाराणां पूज्यचरणानामाचार्यप्रवराणां गुरुवर श्रीमायाशङ्करशर्मणां भृश कृतज्ञोऽस्मि यैर्नाटकस्यास्य प्रणेतु: परिचयं लिखित्वा परिचायितोऽयं ग्रन्थकारः ।

(२) स्वर्गतानामार्य्यकवीन्द्राणां श्रीमुनिमेधाव्रताचार्याणां दयानन्ददिग्विजयमहाकाव्याद्यनेकग्रन्थाना प्रणेतृणामपि कृतज्ञोऽस्मि यैराशीर्वचनैः सत्कृत्योत्साहितोऽयं जनः ।

(३) सुहृद्वरौ-सभूयकारिणौ-श्रीहीरालाल-ओङ्कारनाथौ मदर्थे द्वावप्यभूनामभिनन्द्यसत्वौ ।

(४) अन्येऽपि सहाया धन्यवादानर्हन्ति ग्रन्थकारस्य ।

कृतज्ञता प्रकाशन

१] षड्दर्शनार्यभाष्यरचयिता, पूज्य आचार्यप्रवर, गुरुवर्य श्री मायाशकरजी शर्मा का मैं हृदय से कृतज्ञ हूं, जिन्होंने इस नाटक के रचयिता का परिचय लिखकर इस ग्रथ कारको लोकपरिचित किया है ।

२] मैं श्री 'दयानन्द दिग्विजय' महाकाव्यादि अनेक ग्रंयों के लेखक सुप्रसिद्ध आर्यकवीद्र (स्वर्गीय) श्री मुनिमेधाव्रताचार्य का आभार मानता हूं कि उन्होने मुझे पद पद पर उत्साह प्रदान कर प्रोत्साहित किया ।

३] मित्रवर्य श्री हीरालालजी एव श्री ओकारनाथजी इन दोनो भाइयो ने मिलजुलकर जो सहानुभूति प्रदर्शित की है, उसके लिये इन दोनों को धन्यवाद देता हू ।

(४) इस सस्कृत नाटक का हिन्दी अनुवाद मित्रवर आचार्य विभुदेवजी शास्त्री ने किया है । तदर्थ वे समस्त हिंदी जगत् के धन्यवाद के पात्र है ।

(५) इस ग्रन्थ को मुं. प्र. आयविद्या सभा घाटकोपर ने, प्रकाशित कराके महर्षि दयानदजी के समस्त भक्तजनो को एव सत्साहित्य रसिको को उपकृत किया है।

(६) इस ग्रथ को शीघ्र प्रकाशित कराने के लिए स्नेह भाजन श्री जददेवजी आर्य, श्री गुल्झारीलाल जी आय, श्री भगवती प्रसादजी गुप्ता, श्री गुलाटीजी, श्री मल्होत्राजी, श्री जुनेजा जी श्री अर्जुन भाई पटेल श्री नवीनचन्द्र जी पाल, श्री जगरामजी गुप्त, श्री सिद्धनाथ जी आर्य, श्री मिठाईलाल सिंह जी, डॉ महेन्द्रकुमार शास्त्री आदि अमेक बन्धुओ की बार २ प्ररेणा के लिए मैं उन सबका हार्दिक कृतज्ञ हू।

(७) बम्बई की "आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह समिति" की ओर से रु. २५००) का चेक द्वारा प्रकाशन–सहायता दी गई है, अत: उक्त समिति और उसके कार्यकर्ताओ मैं अत्यत कृतज्ञ हू।

(८) और अत मे प. श्री देवेश्वरजी निराला मुद्रण परिवार का भी कृतज्ञ हू। प्रेस की कई असुविधाओ के होते हुये भी उन्होने पूण कोशिष करके छाप दिया।

(९) जिनकी अलौकिक गुणगरिमाने मुझे इस ओर आकृष्ट किया वे महर्षि दयानद सरस्वती के हम सब अत्यन्त ऋणी हैं।

इतिशम्

२९५ 'सत्यसदन" दि २०-४-१९१९

माटुंगा-बम्बई-१९ विदुषां विधेय:

स्नातक: सत्यव्रत:

शुद्धिपत्रम्

अपेक्षा थी कि शुद्धिपत्र देना न पड़े किन्तु सिसकाक्षर भंग और असावधानी से विवशता है। अतः मुख्य २ अशुद्धियां नीचे दी जाती है। पाठक कृपया ठीक कर ले।

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
५	२५	कहा	कहो
७	१६	कार्तिक	कीर्तिसे
७	२७	मतंभराज	मत्तेभराज
१०	७	यथार्थेव	यथार्थैव
१०	३	निद्राघ	निद्रार्घ
१३	१४	असदिग्ध	असंदिग्ध
१६	१७	वेद	वेदा
१८	६	द्वा	द्वौ
१९	११	...	प्रकाश को देख
२९	८	गहीनो	गहहीतो
३६	१६	गवपेत्येप	गवेपयत्ये
३८	१६	सभाविती	संभाविता
३८	८	मुमाफिर	मुसाफिर
४६	१२	विजनान्ते	विसर्जनान्ते
४८	१२	दशनम्	दर्शनम्
४९	२०	प्रतिभा	प्रतिमा
५२	१६	नेप	नैप
५४	१	कलनि	कलित
५८	११	मपय	मर्पय
६०	२०	प्रघानानन्द	प्रधाननिन्दा
६२	२०	पवित्रा	पवित्र
६८	४	तर्वपिणी	वर्पिणी
७७	१२	सुझमे	मुझमे
८२	५	मोदाय	मोदमादाय
८३	३	प्रयति	प्रयति
८६	१	ऽस्म	ऽस्मि
८८	१६	घट्ट	घट्टे
८९	१३	वियाम	विश्राम
९१	१०	को	की
९४	१३	विभावया	विभावर्या
९६	३	मामस	मानस
,,	१४	विश्रमाय	विश्रामाय
९९	४	त्वगत	स्वगत
१००	२०	मपय	मर्पय
१०२	२	विधये	विधेये
१०३	५	करनजी	करसनजी
१०५	१३	विघोपाजन	विघोपार्जन
१०८	२	श्रमात	श्रयति
१०९	२	आंख	आंखें
११०	१८	महोवसार	मोहावसर
१११	१७	भव्यतर्थि	भव्यार्थवा
११२	१	स्नदमेयरुप	स्तदमेयरुपं
११३	१	मस्त्स	मानस
११४	३	भवन	भगवन
,,	१०	वादेनाम्	वेदिनाम्
,,	१३	माचमितु	मोचयितुम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्धि
११५	२२	लया	गया
११८	१४	क्रमणन	क्रमणेन
१२४	९	विपदगते	विपादगर्ते
१२६	२२	काम	काम
१२८	२३	महरणम्	मघहरणम्
१३३	१६	पिशाव	पिशाच
१३६	२०	गव	गर्व
१३७	,,	खर्वगव	खवगव
१३९	३	भन	जन
१४५	१२	लोकामत	लोकायत
१४७	१	वेदे	वेद
,,	१७	आचार्यं	आचारार्थं
१५१	१	सत्यवान	सत्यवचन
,,	२०	श्वन्य	धन्य
१५३	१३	ग्रह	आह
१५७	१२	ओरथी	ओखी
,,	२४	हेरी	मेरी
१६२	६	मार्तारि	मार्जार
१६५	१०	तमोवशुभ	तवोपशुभ
१६८	१३	ममूदोष	मस्तदोष
१७१	२०	कोहरा	को कौन हरा
१७३	१३	हमारा	तुम्हारा
१७६	१	चतुर्थोऽङ्क:	तृतीयोऽङ्क:
१७८	४	पश्यन्ता	पश्यन्तो
१८३	११	वता	वया
१८५	३	सुभमति	शुभमति
१८६	२२	यथोचित	यथोचित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१९२	१७	विप्रे:	विप्रैः
२००	७	सिन्धु:	सिन्धु सत्यवधुः
२११	६	पालन	वातेन
२१२	१४	मातानुचर	मतानुचर
२१४	१८	च्छो	च्छैल
२१७	१६	उत्रति	उन्नति
२१९	२५	स्वायमिबुदी	स्वार्थबुदोय
२२७	२	पारस्पारिक	पारस्परिक
२२८	७	ऋतरम्	ऋत्विम्
२२६	१	कसे	कैसे
२३०	११	रेकाऽपि	रेकोऽपि
२३२	४	वशादुपति	वशादुपैति
,,	६	अिचारमो	विचारतो
२३६	७	चमत्केरवे	चमत्करवे
२४२	२	शन:	शनै,
,,	१२	प्रसन्नवत्तय:	प्रसन्नवृत्तय
,	१६	मायपुरुषा	मार्यपुरुषा
२४५	१	दुगन्त	दुर्दान्त
,,	६०	मूधन्यता	मूर्धन्यता
२५०	१	सव	सर्वं
,	६	क्षम्यता	क्षम्यता
२५४	१	काक्षय	कौक्षेय
२५५	१	म्लेक्षोसे	म्लेच्छो से
२५८	१०	गतव	गतैव
,,	१६	सर्वस	सर्वेन
२६०	२	निगमावसर	निर्गमनावसर

लेखकमहोदयस्य अल्पतमः परिचयः

अस्ति भगवद्भिः श्रीकृष्णादिभिर्महात्मभिः सेवितस्य पश्चिमाब्धितरङ्गपूतस्य सौराष्ट्रदेशस्याङ्कलालिता विविध-विद्याव्यापारकृष्यादिकर्मबहुला 'अमरेली' नाम नगरी। तत्र वास्तव्यः श्रीमहर्षिदयानन्दसरस्वतीस्वामिना दर्शिते वैदिके धर्मे बहुश्रद्ध गुर्जरगिरः शिक्षकमहोदय. स्वर्गत 'श्रीहीराचद्र मास्तर' इत्यभिधया प्रसिद्धि गत—परिचये मदीये बहुशः सम्प्राप्त.। स कदाचित मोहमयी (मुम्बई) निकषास्थिते सान्ताक्रुझनगरे सनिविष्टं मुम्बई प्रदेश आर्यविद्यासभया क्रिय-माणप्रबन्धं गुरुकुल चतुर्दशवपदेशीयेन केनचित शिशुना सह सम्प्राप्तवान्। तदानीमह तत्राचार्यतया सस्कृतवाङ्मयाध्या-पनमकरवम्। चिरात्लब्धेन श्रीहीराचन्दमास्तरमहोदयस्य दर्शनेनाह पर प्रमोदमापम्। कुशलप्रश्नादनन्तर 'भवता सहाय शिशुः कः ?" इति मया पृष्टेन तेनेत्थमावेदितम्:—

छात्रससदि लब्धकीर्तिः 'चतुर्भुज' नामाय मम समानधर्मा समान नगरनिवासश्च विद्यार्थी विद्यत। जन्मना जैनधर्मा-वलम्बिनापि वैदिकधर्मं श्रद्दधानेन मयाऽयमार्यसमाजसेवितं वैदिकधर्मलेश परिचायित.। मम चाय शिष्यवर्गे समस्ति। पुण्यश्लोकौ पितरौ चास्य बाल्ये, वयसि स्वरितौ। बालेऽस्मिन्मे महती श्रद्धा वर्तते। नुनमय देशोदयकार्यकारी भविता। अधीतवेदादिविद्या वैदिकधर्मप्रचारेऽपि सम्यक् प्रयतिष्यते। व्याख्यानेऽप्यस्य प्रगल्भताऽस्ति, इति बद्धश्रद्धोऽहमत्र गुरुकुले लब्धप्रवेशमिम कर्तुमागतोऽस्मीति। अपि कुलजनेभ्योऽस्य गुरुकुलवासो रोचिष्यत ? इति मया पृष्टेन तेनोक्त' तेषामनु-ज्ञामधिगम्याहमिहागत इति। सकलोऽयमुदन्तस्तदानीन्तन-मुख्याधिष्ठात्रे निवेदितः। तेन चाय कृतपरीक्षो गुरुकुले

ग्रन्थकार का संक्षिप्त परिचय

भगवान श्रीकृष्णादि अनेक महापुरुषो से सुसेवित पश्चिम जलधि की तरगो से पावन, सौराष्ट्र की कान्त उदात्त गोदी मे विविध विद्या व्यापार से विभूपित 'अमरेली' नाम की एक समृद्ध नगरी मे, महर्पि स्वामी दयानन्द सरस्वती के श्रद्धालु भक्त थे श्री हीराचन्दजी मास्टर। उन्हे वंदिक धर्मपर अत्यन्त श्रद्धा थी, भले ही वे स्वयं जन्मत: जैन मतावलम्वी थे। अनेक बार इनसे साक्षात्कार होता रहा है। ये मास्टर महोदय एक बार सन १९१५ मे मुम्बई के निकटवर्ती सातात्रुज नगर मे अवस्थित मुम्बई प्रदेश आर्यविधा सभा सचालित गुरुकुल मे अपने साथ चौदह वर्षीय एक किशोर के साथ पधारे थे, मैं उस समय इस गुरुकुल मे आचार्य था, और सस्कृत वाङमय पढाया करता था। चिरकालानन्तर श्री हीराचन्दजी मास्टर के दर्शन पाकर मुझे खूब आनन्द मिला; कुशल प्रश्नो के बाद मैंने पूछा ! मास्टरजी ! आपके साथ यह किशोर कौन है ? तो मास्टरजी ने बताया अमरेली वासी 'चतुर्भुज' नामक यह किशोर मेरी विरादरी का जैन धर्मी है, छात्रों की सभा मे इसने यश प्राप्त किया है; जन्म से जैन धर्मी होते हुए भी मैने इस छात्र को वैदिक धर्म का परिचय कराया है, यह मेरे शिष्यवर्ग मे ही है। इसके माता पिता दोनो ही शैशवावस्था मे ही स्वर्गीय हो चुके हैं; इस किशोर को मैं अत्यन्त चाहता हू, निश्चित ही यह बडा होकर देशोदय का कार्यकर्ता होगा; वेदादि शास्त्रो को पढकर यह वेद प्रचार मे भलीभाँति सफल हो सकेगा; व्याख्यान भी यह अच्छा देता है, इसकी प्रगल्भता देख कर ही मैं इसे गुरुकुल मे प्रविष्ट कराने के लिये लाया हू। क्या गुरुजनो को भी इस किशोर का गुरुकुल निवास पसन्द आयेगा ? बालक के गुरुजनो की आज्ञा लेकर ही मैं यहाँ इसे लेकर आया हू,

प्राप्तप्रवेशः कृतः। ममाप्युपनीयायं सावित्रीमातृकलानीतः। सत्यव्रतधरोऽय नाम्ना 'सत्यव्रत' इति सर्वराहूतः। अनेन कर्मणा हीराचन्दमास्तरमहोदयः समतुष्यत्।

ग्रहणधारणपटुरयं बटुः, शनैः शनैः संस्थास्थितर्गुरुभिर्विनीयमानः शरीरे, मानसे आत्मनि च समुन्नति पुष्यन् सर्वषा प्रीतिभाजनं जातः। एतस्मिन् गुरुकुले संस्कृतसाहित्याध्यापकः कविशिरोमणिः पावटलालशर्माऽऽसीत्। तेन चायं काव्यरसास्वादश्रवणं ग्राहितः। उद्बुद्धकाव्यसंस्कारोऽयं बहूनि मनोरमाणि सरलानि गीर्वाणवाण्या पद्यानि निर्मिमाणो गुरुजनानां हृदये कविरयं भवितेति श्रद्धां ममजनयत्। अन्येषु च यजुर्वेददर्शनोपनिषदादिषु शास्त्रेषु कौशलयमस्याविरासीत्। गुरुकुलमहोत्सवेषु समीयुषां विदुषां व्याख्यानानां श्रवणेन बहुश्रुतवर्त्मनि पदमनेन निहितम्।

आर्यविद्यासभायाः मन्त्रिमहोदयश्रीडॉक्टर कल्याणदासस्य हृदयेऽप्यचिरादनेनात्मना विनयेन कर्मशक्त्या च प्रभावः समुत्पादितः। आर्यसमाजजगति च शनैः शनैः प्रसिद्धिं गतः। निश्चितपूर्व च विद्याव्रतस्नातक परीक्षायां परीक्षणीयविषयेषु समुत्तीर्णः समजायत। आङ्ग्लसंस्कृतगुर्जरहिन्दीमराठीति भाषापञ्चकेषु चाय प्रावीण्यं प्राप्तवान्। 'वेदविशारद' इतिप्रष्ठितस्नातकोपाधिं चाधिगतवान्। गणितादिविषयेषु च नैपुण्यं हृदयगतं कृतवान्। व्यवहारेऽप्ययं कुशलो विदितः। कृतसमावर्तनोऽयं विद्यासभया मन्त्रिमहोदयस्य सहायको वर्णितः। आर्यसभासद्भिश्चायं १९२६ खिस्ताब्दे महर्षि-

यह सारा वृत्तान्त मैंने तत्कालीन गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता को कह सुनाया। मुख्याधिष्ठाता ने परीक्षा लेकर इस किशोर को गुरुकुल मे प्रविष्ट किया। मैंने भी उपनयन सस्कार करके इस किशोर को शिष्य बना लिया। सत्यव्रत धारण करने वाले इस बालक को 'सत्यव्रत' कहकर सबने पुकारा, मास्टर जी को इस कार्य से बडा आनन्द मिला। विद्याग्रहण मे चतुर यह किशोर शनैः शनैः गुरुजनो से विनीत व्यवहार करता हुआ, तन-मन और आत्मा को समुन्नत बनाता रहा और इस प्रकार सबका प्रेमपात्र बन गया। इस गुरुकुल मे सस्कृत साहित्य के प्राध्यापक स्व० कविरत्न श्री पोपटलालजी शर्मा थे। इन्होने इस उदीयमान युवा को काव्य रसास्वादन मे दक्ष बना दिया। उद् बुद्ध सस्कारी यह छात्र सूरभारती मे मनोहर सरस पद्यो का सर्जन करके गुरुजनो के हृदयो मे यह कवि होगा ऐसी प्रतीति उत्पन्न करने में सफल हो गया। यजुर्वेद, दर्शन ग्रथ एव उपनिषदादि शास्त्रो मे भी इस युवक की पुरी पहुँच हो गयी। गुरुकुल के महोत्सवो मे पधारे हुए दिग्गज विद्वानो के विविध विषयो पर होनेवाले प्रवचनो ने इस तरुण मे 'बहुश्रुतता का पाथेय भर दिया।

मु॰ प्र॰ आर्य विद्यासभा के मत्री श्री डा॰ कल्याणदासजी के हृदय मे भी यह युवक अपनी विशिष्ठ योग्यता विनयशीलता तथा कार्यकुशलता से स्थान पा गया, और आर्य सामाजिक जगत् मे इसे प्रतिष्ठा मिलने लगी, गुरुकुल की निश्चित विद्या व्रत स्नातक परीक्षा मे यह छात्र योग्यता पूर्वक प्रथम कक्षा मे उत्तीर्ण हुआ; अग्रेजी, सस्कृत, गुजराती, हिन्दी, मराठी भाषाओ का पाडित्य भी इन्होने उपार्जित कर लिया। गुरुकुल की 'वेद विशारद' की उपाधि से यह विभूषित किया गया।

स्थापितस्य काकड़वाडागतार्यसमाजस्य मन्त्रिपदेऽभिषिक्त.। तत्राप्यय कुशल· कर्मकरो भूत्वा सर्वपामभिनन्द्यसत्त्वोऽभूत्। तथैवानेन महानुभावेन मुम्बईआर्यप्रतिनिधिसभाया: मन्त्रिणो विश्वस्तविविधपदभारो वर्षाणा विंशतेरधिक काल समूढ:। गुरुकुलार्थं धनोपार्जने च श्रीमन्निमहोदय स्वगत: डॉ कल्याण-दास इममात्मनो दक्षिण बाहुममन्यत । व्यापारविषयेऽप्यस्य धीरर्थकरी दूरदर्शिनी च वर्तते। यतो मोहमय्यामेव 'कुमार मेटल इडस्ट्रीज" "इण्डियन क्रेंकशाफ्ट इडस्ट्रीज," 'इडियन मैटल फार्जिग एड रोलिंग मिल्स," चैतेषूद्योगेषु चाय सभूयकारी वर्तते । सुख चापीश्वरानुग्रहेणानेनानुभूयते ।

स्वज्ञातिभिश्चाय बहुमानपात्रता नीत:। विवादपदनिर्णये चाप्यय स्थैर्यतया शोभते। किं बहुना यत्र यत्र सासारिकशुभ-कर्माणि तत्र तत्र समुन्नतिमेव समदर्शयत्। विशिष्टसमाजेषु परिचयविशेषमागत्य लब्धयशा: समभवत्। इदानीमय महाभाग: कुशलो व्यापारी वेदादिशास्त्रेषु च निपुणतामावहन्नितरा विमल यशस्तनोति।

आर्यसमाजसिद्धान्तपरिपालनेऽप्ययमहार्यनिश्चयो वर्तते। समाजे बहवो जना: केवल। वाचि कौशलमावहन्ति, न पुन: कर्मपरिपालने। अय तु 'आचार: परमो धर्म' इति मानव वच: स्वाचारे समर्थयितु न विस्मरति।

कुलपरपरामाश्रितैर्ज्ञातिजनै स्वज्ञातौ परिणयायाय प्रार्थि-तोऽपि नानुकूलता तेषा प्रापत्। यतोऽनेन विदुषा प्रर्थीयस्यपि ज्ञातिप्रथा जनाना प्रगतिविरोधिनी न हितायावगता। गुणकर्मा-श्रिता वैदिकी वर्णव्यवस्थामास्थाय सम्यगनुष्ठितब्रह्मचर्या-

गुरुकुल से स्नातक बन जाने के बाद, जब ज्ञाति बिरादरी ने इनसे अपनी जैन बिरादरी मे ही विवाह करने का आग्रह कि तो इन्होने किसी की बात न मानी और गुणकर्म स्वभाव को ही प्राथमिकता देके इन्होने सच्ची वर्णव्यवस्था के अनुसार अपने तारकर कुलोत्पन्न सहपाठी कृष्णचन्द्र की सुयोग्य सुचरित्रा मिष्ठ भाषिणी, सुमध्यमा, शिक्षिता बहन श्री सुमित्रा से पाणिग्रहण किया। दाम्पत्य जीवन मे ये दोनो, सुतरा सफल है, आतिथ्य सत्कार तो इनकी थाती के रूप मे प्रशस्त माना जाता है। इनकी इन्दिरा, भारती एव चारुलता नामक तीनो आत्मजाओ के M A. के उच्चशिक्षण के साथ-साथ पुरातन वैदिक विधि से उपवीत संस्कार भी हुए है। परिवार मे गुरुजनो का स्वागत सत्कार तो नियमित होता ही रहता है। सभा हो या सदन, सवत्र ही ये स्वय की योग्यता का परिचय देते रहे।

गुजरात राज्य के सौराष्ट्र विभाग मे मोरवी नामक एक देशी राज्य था; उसी राज्य की तहसील 'टकारा' नामक नगर को महर्षि दयानन्द ने अपने लोकोत्तर जन्म से पावन किया है, यह अब सब संमत है। स्वामी दयानन्द का जन्मनाम 'मूलशकर' था यह तथ्य सभी इतिहासकार स्वीकार करते है। स्वामी दयानन्द के जन्मस्थान मे ही सन् १९२४ मे 'दयानन्द जन्म शताब्दि महोत्सव' मनाया जाने वाला था, इस महोत्सव को पूर्ण सफल बनाने के लिये इस तरुण ने अपनी गुरुकुलकी अन्तिम स्नातक परीक्षा छोड दी और जी जान से टकारा मे जुट गया, इसके बाद तो क्या वृद्ध आर्य श्रेष्ठी श्री हरगोविन्द धरमसी काचवाला, स्व प परधुभाई, स्व दामोदर सुन्दरदास जी, महाराज वीरपूर नरेश हमीरसिहजी चेर दरबार श्री मनुभा साहेब, स्व, डा कल्याणदास, श्री विजयशकर मूलशकर बानी इत्यादि सुप्रतिष्ठित आर्य नेताओ ने अपना सपूर्ण

अमोऽय युवा, सत्कुलसमुभवा समानगुणकर्मशालिनीं पवित्रचरित्र स्नेहसुधया परिचिता जनता प्लावयन्ती श्रीसरस्वतीसनाथा भ्रातृमती महाराष्ट्रदेशीयां 'तारकर' कुलोत्पन्ना मातापित्रोर्बहिश्चरप्राणभूता 'सुमित्रा' नामधेयां सुमित्रानन्दकन्दमारा युवतिं कन्या सवर्णमात्मनेक्ष्यगता गार्हस्थ्यधर्मसेवनाय स्वगृहिणीपदे स्थापितवान् । आतिथ्यधर्मपरिपालनतेजसा दम्पत्योरनयोर्गृहस्थाश्रमो नितरां दीप्यते । प्रजा चानयोर्लब्धवैदिकसंस्कारा सत्ययुगं दर्शयति । अस्य इन्दिरा, भारती, चारुलता पुत्र्योऽपि धृतोपवीता श्रुतिमन्त्रोच्चारैर्जनताश्रुतिं पुनन्ति । गुरुगौरवपूजा चात्रानुदिनं जनमनांसि मोदयति । मित्रवर्गे च साहाय्यदाने नास्य संकुचितः पन्थाः । प्रसङ्गे प्रसङ्गे सदसि सद्मनि च वैदिकधर्मप्रचारे कर्तव्ये विबुधसमवायेन सह विचारणागभीरतास्य न दरिद्राति ।

गुजरातराज्ये सौराष्ट्रान्तर्गतमोरवीनगरप्रान्ते 'टंकारा' नाम प्रसिद्धं नगरमस्ति । तच्च नगरं महर्षिदयानन्देनात्मजन्मना पावितमिति सर्वजनसम्मतम् । दयानन्दस्य जन्मनाम 'मूलशंकर' आसीदिति तज्जीवनलेखकमहोदयानां मतं सर्वैः सम्मतम् । वेदनेत्रग्रहचन्द्रमिते ख्रिस्तीये वत्सरे महर्षि जन्मशताब्दी महोत्सवः समजायत । तं सफलं कर्तुमन्तिमां स्नातकपरीक्षामपि विहायाय श्रीसत्यव्रतमहोदयः सर्वेभ्यः प्रथममेव कार्यक्षेत्रे प्रचारमन्त्रिरूपेणावातरत् । पश्चादन्येऽपि श्री हरगोविंद काचवाला, स्व परधुभाई शर्मा, स्व. दामोदर सुंदरदास श्चास्मिन्कार्ये प्राविशन् । पश्चात् श्रीस्वामिशङ्करानन्दः, वीरपुरननरेशहमीरसिंहः, मनुभाचेरदरबारः, स्व डॉ. कल्याणदास प्रभृतयः प्रमुखमहानुभावा आर्यसमाजसेवकधुरंधरा बद्धपरिकरा

सहयोग देकर इस नव युवक के प्रचार मन्त्रित्व पद को खूब सफल बनाया, यह महोत्सव अत्यन्त सफल रहा। इसी महोत्सव के अवसर पर जब ये टकारा मे रहे तो इन्होने भी मोरवी राज्य एव राजकोट राज्य के प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर महर्षि दयानन्द के जन्मस्थल के विषय मे खोजपूर्ण कार्य करके गुजराती भाषा मे अपने ढग की मौलिक रचना सग्रहीत की। बाद मे तो यही सग्रहीत खोजपूर्ण प्रकाशित सामग्री के आधार पर ही हिंदी भाषा मे भी 'महर्षि दयानन्द जन्म स्थानादि निर्णय' नाम से एक पठणीय ग्रंथ टकारा शताब्दि समितिने प्रकाशित किया। इस अवसर पर जो कार्यकुशलता इन्होने दिखाई, इससे सभी छोटे बडे कार्यकर्ता इनसे बहुत बहुत प्रभावित हुए। इसी सम्मेलन की सफलता ने इनकी सर्वतोमुखीन प्रतिभा को आर्यजगत् मे उजागर कर दिया।

बम्बई के पूर्वी उपनगर 'घाटकोपर' मे अवस्थित गुरुकुल हाईस्कूल' बहुत ह्रा आर्थिकसकट मे था तो स्नातक महोदय ने अपना समस्त सहकार देकर सस्था को चार चाँद लगा दिये और आज तो यह सस्था आर्यसमाज ही क्या-अन्य सगठनो की सस्थाओ मे अग्रगण्य स्थान पर है। इस सस्था का अपना छात्रावास भी है, यहाँ पर छात्र गुरुकुलीय सात्विक वातावरण मे अग्निहोत्र एव सध्यादि शुभकर्म करते हुए विद्याध्ययन करते हैं। इसके भी स्नातक महोदय मुख्याधिष्ठाता रहे हैं, यह गुरुकुल आश्रम आज भी भली भाँति भारत के भावी नागरिको को वैदिक विचारो से अवगत कराता हुआ चल रहा है।

माटुंगा बम्बई के आर्य समाज तथा आर्य समाज संचालित

अभूवन्। मासत्रय टङ्कारायां निवसताऽनेनैव मोरवीराज्यस्य राजकोट-राज्यस्य च पुरातनानामैतिहासिकपत्राणामनुसन्धानेन महर्षिदयानन्दस्य जन्मस्थानादिविषये निर्णयप्रदा सामग्री गुर्जरगिरि सङ्गृहीता। पश्चादियं सामग्री टङ्कारा शताब्दी समित्या 'महर्षिजन्मस्थानादि निर्णय' नाम्ना ग्रन्थरूपेण हिंदीभाषायां प्रकाशिता वर्तते। तदानीमस्य निरन्तरकार्यतत्परताकुशलते तत्र स्थितानां जनानां चेतःसु पदं न्यधाताम्। तदारभ्यार्यजगति नानादिग्देशनिवास्यार्यसमाजप्रमुखमन्त्रि सभासत्सु बहुमानपात्रतामयादयम्।

मुम्बापुरीनिकटस्थ 'घाटकोपर' नाम्नि नगरे स्थितस्य गुरुकुलहाईस्कूलस्य आर्थिकीमवस्थामुन्नेतुं प्रबन्धकमहोदया अतियत्नपरायणा आसन्। तेषु स्नातकप्रवरोऽयं प्रथमत एव समवेतोऽभवत। असाधारणं च स्वकीयं श्रमदानं व्यतरत। तद्गुरुकुलाश्रमव्यवस्था विधातुं मुख्याधिष्ठातृपदं च स्वीकृत्यानेन सफलः प्रयत्नः कृतः। इदानीं तत्राश्रमे छात्रगणो ब्रह्मचर्यपालनपूर्वकमध्ययनं विदधाति।

माटुंगा' स्थितार्यसमाजकर्णधारपदे दीक्षितेनानेनार्यसमाजस्तदद्विद्यालयश्च समुन्नतिं नीतौ। द्वादशवर्षपर्यन्तं प्रतिवत्सरं मासमेकमनेन महाराष्ट्रप्रदेशे 'मराठी' भाषायां वेदधर्मप्रचारः स्वेच्छया विहितः। इत्थं विद्याक्षेत्रेषु वेदधर्मप्रचारक्षेत्रेषु चाविरतं प्रयतमानः समस्तजनानां प्रशंसामधिगतवानपि नम्रतां न मुञ्चति।

अध्यापनेनाऽप्ययं कुशलतामावहन् छात्रसमुदाये धर्मबीजानि समावपत्, समावपति च।

दयानन्द बालक एव बालिका विद्यालय के समुन्नय म मे स्नातक महोदय साथ रहे हैं। अपने प्रचार काय को बारह वर्षो तक नियमित रूप से प्रतिवर्ष, एक मास, ये वतमान महाराष्ट्र मे वैदिक धर्म का प्रचार मराठी भाषा मे सफलता से करते रहे है। इस प्रकार अनेक क्षेत्रो में यशस्वी बनने पर भी ये विनम्रता की प्रतिमूर्ति वने हुये हैं।

अध्यापन कार्य मे भी इन्हें अभिरुचि है। गुरुकुल हाई स्कूल में छात्रो मे जिन्होने पर्याप्त रूप से वैदिक धर्म का प्रचार किया है। समाज मे फैले भ्रष्टाचार के पक्षधरो के साथ कभी भी जिन्होने समझौता नही किया और सफलतापूवक उनका प्रतिकार करते आ रहे हैं—आजतक !

अपने जीवन दीपक के बुझने से पूर्व ही श्री डा कल्याण॰ दासजी देसाई ने स्नातक सत्यव्रत को अपना सुयोग्य उत्तराधिकारी नियुक्त करके गुरुकुल संस्थाओ को दीघजीवी बनाकर इनके प्रति महान् स्नेह प्रकट किया और बडी योग्यता से ये उस विश्वास को सजोये हुए है।

इस प्रतिष्ठित स्नातक शिरोमणि विद्वान ने स्नातक परीक्षा मे "वैदिक त्रैतवाद" नाम से एक महानिवन्ध (Thesis) देववाणी मे लिखकर पंडित समाज मे उच्च स्थान प्राप्त किया, यही महानिबन्ध कालान्तर मे विशिष्ठ ग्रंथ के रूप में गुजराती भाषा मे प्रकाशित हुआ है, इस पुस्तक को दर्शन-प्रेमी बड चाव से पढते है। इस ग्रन्थ में ब्रह्मजीव एवं प्रकृती को पृथक् सत्ता के अस्तित्व की विशद व्याख्या है, इसमे त्रैतवाद के समर्थन मे वेदादि शास्त्रो के प्रमाण दिये गये हैं। इस ग्रन्थ मे वर्णित 'त्रैतवाद' तो प्राचीन आचार्य श्रीमान् लोकाचार्य के विशिष्ठा द्वैतवाद के समयन मे 'तत्वत्रयम्' को भी मातकर गया है।

ईश्वर की मूर्तिपूजा के विरोध मे लिखित 'मूर्तिमीमासा' नामक ग्रन्थ मैंने पढ़ा है, इस ग्रन्थ की प्रौढता ने भी स्नातकजी

समाजे कदाचारकराणां वेदप्रतीपगामिनां वित्तकीर्तिलोभपरायणानां लोककण्टकानामुत्साहदलनायायमलम्।

स्वर्गं प्रयता आर्यविद्यासभासंस्थापकेन श्री डॉक्टर कल्याणदास महोदयेन गुरुकुलसंचालनभारोऽस्मिन् पुत्रसमानशिष्ये सहकार्यकरे च संक्रामितः। स च भारस्तितिक्षापरवशेनानेन सम्यगुह्यते।

अनेन विदुषा प्रतिष्ठितस्नातकशिरोमणिना 'वैदिकत्रैतवाद' नामा महानिबन्धो (Thesis) स्नातकपरीक्षायां देववाण्या लिखितः। स च कालान्तरेण विशदतया ग्रन्थरूपेण गुर्जरभाषायां प्रकाशं नीतः। तत्व जिज्ञासुभिरयं रमातिरेकेण पठ्यते। ब्रह्मजीवात्मप्रकृतीनां सप्रमाणं निरूपणं विद्यते ग्रन्थेऽस्मिन् तत्त्वत्रयात्पराचीनवादिनां मतं निर्मूलं निष्प्रमाणं च दर्शितम्। विशिष्टाद्वैतपथसेविना श्रीमल्लोकार्यवरणेन प्रणीतं 'तत्त्वत्रयम्' नामकं ग्रन्थमतिशेते एतदीयस्त्रैतवादः।

मूर्तिपूजाविषयकोऽपि 'मूर्तिमीमांसा' नामक ग्रंथोऽस्य मया पठितः। अनेन ग्रंथेनापि महती समाजसेवा कृतेति तत्त्वविदां समाजे लब्धास्पदा चर्चा वर्तते।

अन्येऽपि बहवो लेखाः समाजहिताय वर्तमानपत्रेषु अनेन महानुभावेन लिखिता दृश्यन्ते।

अनेन स्नातकमहोदयेन मुम्बईप्रदेशार्यप्रतिनिधिसभायाः मुखपत्रस्य 'आर्यप्रकाश' स्य अवैतनिकसंपादकपदमपि बहुशः समधिष्ठितम्। तद्द्वारमनेनापि जनसंसदि श्रुतिधर्मसेवाऽविस्मरणीया विहिता। किं बहुना चारित्र्यसंपन्नस्य अस्य महोदयस्य निखिलं जीवनं परहिताय निर्मितमिवाभाति।

के ज्ञान गौरव को विद्वत्समाज मे प्रस्तुत कर यशोर्जन किया है।

समय समय पर लिखे गये सामाजिक तथा साहित्यिक लेख और निबन्ध इनकी लेखनी की दक्षता को प्रदर्शित कर चुके है।

एक सफल पत्रकार के रूप मे स्नातक सत्यव्रतजी ने मुंबई प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक मुख पत्र 'आर्यप्रकाश' का कई बार योग्यतापूर्वक सम्पादन किया है; इससे इनकी लेखन शैली का चमत्कार पाठको को खूब पढने को मिला, चिरकालतक इस प्रकार यह व्यक्ति भारतीय समाज के लिये सब प्रकार से एक चरित्र प्रस्तुत करने मे सर्वथा सफल रहे है।

महर्षि दयानन्द का 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ मेरी निराशा का कारण हुआ है ऐसा कहने वाले महात्मा गाँधी की भी इन्होने अपने तीखे तीरो से खूब गत बनायी थी। क्योकि सत्यव्रत के लिये सत्य से अधिक प्रिय और क्या हो सकता है?

बडी-बडी सभाओ मे सम्मेलनो मे यह मनीषी सुवक्ता के रूप मे सर्वदा लब्ध प्रतिष्ठ रहा है। इनके विषय के प्रस्तुतीकरण का तौर तरीका श्रोता को ज्ञानवान बना देता है।

यह देखा गया है कि आर्यसमाज के अधिकांश कार्यकर्ताओ के बालक-बालिकाओ के भी विधिपूर्वक यज्ञोपवीतादि सस्कार नही किये जाते हैं, किन्तु इन्होने तो विधिपूर्वक अपनी पुत्रियो और पुत्रो के समुचित समय पर उपनयन, वेदारभ सस्कार करवाये हैं, तभी तो स्वामी दयानन्द का मन्तव्य सिद्ध होता है कि स्त्री पुरुष दोनो ही वेदाध्ययन मे अधिकारी है। अन्यथा स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम् की तलवार जाने कब से लटकती आ रही थी। महर्षि दयानन्द की कृपा स्वरूप ही आज स्त्री-शूद्र बडी सख्या मे वेदादि शास्त्रो के प्रौढ विद्वान उपलब्ध हो रहे हैं। अस्तु

'महर्षिदयानन्दस्य सत्यार्थप्रकाशग्रन्थो मम निराशाय सजात' इति वादी महात्मा गाधिमहोदयोऽपि अस्य वेदविदो लेखशराणा शरव्यता गत । सत्यव्रतस्य सत्यादधिकतर कि प्रेय सभवेत् ?

सभायां व्याख्यानदाने कुशलोऽयमात्मनो विचारधारा सम्यक्तरा निरूपयति, यतः श्रोतारो लब्धप्रकाशा इव जायन्ते। आर्यसमाजे प्राप्तप्रमुखादिपदाधिकाराणा पुत्रा अपि विधिना न दत्तोपवीता. प्रायश ध्रियन्ते, तदा कैव कथा पुत्रीणाम् ? अय तु स्नातकमहोदय श्रुतिविहितकर्मणि श्रद्धान आत्मजा अपि स्ववेश्मनि, समाहूतज्ञातिमित्रादि-मण्डलस्य समक्ष कृतोपनयनसस्कारा: सम्पादितवान। एतेन पवित्रेण कर्मणा स्त्रीणा वेदाधिकारो नास्तीति प्रलपता जनानामपि हृदयानि पवित्रीक्रियन्ते।

एकदाऽनेन श्रीमता गीर्वाणवाण्या स्वरचित महर्षिचरितामृत नाटक मत्सकाश प्रहितमवलोकनार्थम्। अह च तत्पठित्वा आश्चर्यपाथोनिधौ निमग्न. इद नाटक महर्षिदयानन्दसरस्वती स्वामिन समस्ति। अस्य स्नातकस्य सस्कृतनाटकनिर्मितावपि शक्तिरस्तीति मया एतन्नाटकवाचनादनन्तरमेव ज्ञातम्। अति-परिचयोऽपि गुणगभीरस्य सज्जनस्य निखिलान् गुणान् सद्यः प्रकटीकर्तु नालमिति मे चेतसि तदा जातम्। अस्य नाटकस्य सविधान साहित्यशास्त्रानुसारि विद्यते। अस्य नाटकस्य सरसानि मनोरमाणि पद्यानि पठतो मे मनसि कालिदासादि-महाकवय. स्मृतिगोचरीभूता.। वीतरागस्य महर्षिदयानन्दसर-स्वतीस्वामिना रसबहुलमप्यस्पृष्टशृङ्गाररसमिदं नाटक सुयोग्यमेव जातम्। अतो मे मनसि महती मुदजनि।

गणित, विज्ञानादि विषयो मे स्नातकजी ने विशिष्ठ योग्यता अर्जित की, अतः व्यवहार मे निपुणता तो सहजही मिल गयी। समावतन सस्कार के पश्चात स्नातक बनकर इस युवक को आर्य विद्या सभा में मन्त्री महोदय का सहायक निर्धारित किया। बम्बई समाज के आर्य सभासदों ने योग्यता के आधार पर सन १९२६ मे इसे काकडवाडी के सबसे पुरातन प्रतिष्ठित आर्य समाज का मंत्री बनाया; आर्य-समाज के गौरव युक्त मंत्री पद पर रहते हुए भी ये मुम्बई प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री का पद भी संभालते रहे और अपनी योग्यता का सिक्का जमाते रहे; यह पदभार बीस वर्षों से भी अधिक समय तक उठाकर ये सामाजिक क्षेत्र में अत्यन्त प्रतिष्ठित हो गये। आर्यसमाज के सुयोग्य नेता, श्री डॉ. कल्याणदासजी देसाई तो इन्हें अपना दक्षिणहस्त मानते थे। व्यापारिक क्षेत्र मे भी इनकी बुद्धि सशक्त है, तभी तो 'कुमार मेटल इडस्ट्रीज' 'इडियन क्रेंक शाफ्ट इंडस्ट्रीज में सहभागी हुये तथा 'इण्डियन मेटल फॉजिग एण्ड रोलीग मिल्स' नामक उद्योग मे ये सहभागी है। अन्य सभी प्रकार के सुख भी प्रभु की दया से उन्हें प्राप्त है।

अपनी ज्ञाति से भी वे अभिपूजित हुए हैं, विवाद होनेपर लोग इन्हें न्यायाधीश मानते रहें हैं। अधिक क्या कहूं कि जहां कहीं भी ये रहें वहीं पर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ती ही गई और इस समय तो यह महाशय व्यापारी, एव वैदिक विद्वान् के रूप में सर्वत्र प्रशंसित हैं।

आर्य समाज के सिद्धान्त पालन में भी ये महान् आदर्श कारी हैं। आर्य समाज में अधिकांश व्यक्ति केवल वाणी से ही आर्यत्व व्यक्त करते हैं, कर्म से नहीं; किन्तु ये तो 'आचारः परमोधर्मः' इस मनुवचन के परिपालक हैं।

महर्षिदयानन्दस्यालौकिकीं जीवनगाथां सर्वं प्रथमं यथा शास्त्रं नाटकस्वरूपे देववाण्यां गुम्फितवत: श्रीस्नातकसत्यव्रतस्य सुश्लाघ्योऽयं परिश्रमस्तस्यापि भक्त्यनुरूप एव। सफलया रचनयाऽनया ग्रन्थकारमहाभागेनायं साहित्येऽग्रिमं स्थानं लब्धमिति नि शङ्कं वक्तुमुत्सहे

अयमल्पतमोऽस्य स्नातकमहानुभावस्य जीवनचरितस्य परिचयो विन्यस्तो मया। मन्ये चास्मिन् परिचयदाने वक्तव्यविषयाणां शतांशोऽपि मया न पारित इति। आशासे चास्य विदुष काव्यनाटकनिर्मितिबाहुल्यम् आस्वादयन्तो चास्य नाटकस्य रस सदसद्युक्तिनहेतव सन्त: वितरतु चास्मै विदुष विश्वव्यापी दयाघन परमात्मा वर्षाणां शतादप्यधिकं समृद्धिमत् सर्वथा सुखकरमायु। इत्योम्।

स प्र आर्यसमाज। आणंद (गुजरातराज्य)	प मयाशङ्कर शर्मा दर्शनाचार्य

एक बार स्नातक महोदय ने स्वरचित 'महर्षि चरितामृतम्' संस्कृत नाटक मेरे पास अवलोकनार्थ भेजा जब मैंने यह नाटक पढ़ा तो मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा ! मैं तो आश्चर्य सागर में निमग्न हो गया, तब इस नाटक के पठनानन्तर ही मुझे यह पता चला कि यह व्यक्ति सफल नाटककार भी है ! मुझे यह भी मालूम हुआ कि गुणगंभीर विद्वानो के, वैशिष्ठ्य, चिरपरिचय से भी नहीं जाना जा सकता ! जिस नाटक का निर्माण साहित्य शास्त्रानुसार ही हुआ है, जिस नाटक में आए हुए सरल मनोहर पद्य तो कविकुलगुरु कालिदास आदि कवियों की स्मृति याद कराने वाले हैं।

जीवन महर्षिदयानन्द सरस्वती स्वामीजी महाराज का जीवन विविध रसयुक्त होता हुआ भी यह नाटक शृंगार रस से सर्वथा अलिप्त है, यह एक आदर्श की बात है, ऐसे योगिराज के कथोपकथन में ! जिससे मेरे मन में अत्यधिक मोद बढ़ा।

महर्षि दयानन्द की अलौकिक जीवनगाथा को सर्वप्रथम शास्त्रानुसार सस्कृत नाटक के रूप में उपनिबद्ध करने वाले स्नातक सत्यव्रत का यह परिश्रम श्लाघनीय है और ऋषि की अनूठी भक्ति का द्योतक है। मैं यह बात असदिग्ध रूप से कह सकता हूं कि ग्रन्थकार इस नाटक के द्वारा आर्य-साहित्य में अग्रिम पंक्ति मे विराज मान एव सफल है।

यह संक्षिप्त सा परिचय स्नातक सत्यव्रतजी-- का लिखकर मैंने अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करनी चाही है। संभव तो यह है कि--मैं नाटककार को पूर्ण रूप से विज्ञपाठक के समक्ष उपस्थित करने में सफल न भी हुआ हूं, मुझे आशा है कि जिस समर्थ विद्वान की रुचिर रचना का रसास्वाद विद्वद्जन अपनी सदाशयताकों समृद्ध बनाकर इन्हें कृतार्थ करना न भूलेंगे। परम कृपालु भगवान ग्रन्थकार को 'भूयश्च शरदः शतात्' का वरदान दें।।

महर्षिदयानन्दस्यालौकिकीं जीवनगाथां सर्वं प्रथम यथा शास्त्र नाटकस्वरूपे देववाण्या गुम्फितवत: श्रीस्नातकसत्यव्रतस्य सुश्लाघ्योऽयं परिश्रमस्तस्यापि भक्त्यनुरूप एव। सफलया रचनयाऽनया ग्रन्थकारमहाभागेनार्यसाहित्येऽग्रिम स्थान लब्धमिति नि शङ्क वक्तुमुत्सहे

अयमल्पतमोऽस्य स्नातकमहानुभावस्य जीवनचरितस्य परिचयो विन्यस्तो मया। मन्ये चास्मिन् परिचयदाने वक्तव्य-विषयाणां शताशोऽपि मया न पारित इति। आशासे चास्य विदुष काव्यनाटकनिर्मितिबाहुल्यम आस्वादयन्ता चास्य नाटकस्य रस सदसद्व्यक्तिहेतवे सन्त: वितरतु चास्मै विदुष विश्वव्यापी दयाघन परमात्मा वर्षाणा शतादप्यधिक समृद्धि-मत् सर्वथा सुखकरमायु। इत्योम्।

च प्र आर्यसमाज। } प मयाशङ्कर शर्मा
आणद (गुजरातराज्य) } दर्शनाचार्य

एक बार स्नातक महोदय ने स्वरचित 'महर्षि चरितामृतम्' संस्कृत नाटक मेरे पास अवलोकनार्थ भेजा जब मैंने यह नाटक पढ़ा तो मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा ! मैं तो आश्चर्य सागर में निमग्न हो गया, तब इस नाटक क पठनानन्तर ही मुझे यह पता चला कि यह व्यक्ति सफल नाटककार भी है ! मुझे यह भी मालूम हुआ कि गुणगंभीर विद्वानो के, वैशिष्ठय, चिरपरिचय से भी नहीं जाना जा सकता ! जिस नाटक का निर्माण साहित्य शास्त्रानुसार ही हुआ है, जिस नाटक में आए हुए सरल मनोहर पद्य वो कविकुलगुरु कालिदास आदि कवियों की स्मृति याद कराने वाले हैं।

जीवन महर्षिदयानन्द सरस्वती स्वामीजी महाराज का जीवन विविध रसयुक्त होता हुआ भी यह नाटक श्रृंगार रस से सर्वथा अलिप्त है, यह एक आदर्श की बात है, ऐसे योगिराज के कथोपकथन में ! जिससे मेरे मन में अत्यधिक मोद बढ़ा।

महर्षि दयानन्द की अलौकिक जीवनगाथा को सर्वप्रथम शास्त्रानुसार सस्कृत नाटक के रूप में उपनिबद्ध करने वाले स्नातक सत्यव्रत का यह परिश्रम श्लाघनीय है और ऋषि की अनूठो भक्ति का द्योतक है। मैं यह बात असदिग्ध रूप से कह सकता हूं कि ग्रन्थकार इस नाटक के द्वारा आर्य–साहित्य में अग्रिम पंक्ति मे विराज मान एव सफल है।

यह संक्षिप्त सा परिचय स्नातक सत्यव्रतजी— का लिखकर मैंने अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करनी चाही है। संभव तो यह है कि—मैं नाटककार को पूर्ण रूप से विज्ञपाठक के समक्ष उपस्थित करने में सफल न भी हुआ हूं, मुझे आशा है कि जिस समर्थ विद्वान की रुचिर रचना का रसास्वाद विद्वद्‌जन अपनी सदाशयताकों समृद्ध बनाकर इन्हें कृतार्थ करना न भूलेंगे। परम कृपालु भगवान ग्रन्थकार को 'भूयश्च शरदः शतात्' का वरदान दें ! !

आर्य समाज ने गुरुकुलो की स्थापना कर देववाणी संस्कृत का पुनरुद्धार करना चाहा है । इस दृष्टि से इस ग्रंथकी रचना ने आर्यों की आकाक्षा को अधिकांश मे सफल किया है। इसका श्रेय ग्रंथकार स्नातक सत्यव्रतजी को देना चाहिए। प्रभु ग्रंथकार को दीर्घायु करे यही प्रार्थना।

म. प्र. आर्यसमाज,
आणंद (गुजरातराज्य)

पं. मयाशङ्कर शर्मा
दर्शनाचार्य

महर्षिः

धृति, क्षमाभ्यां सह सा सखीभ्या
सरस्वती, यस्य मुखे रराज ।
नित्य प्रसादामलशान्तिरम्या
वन्दे दयानन्दसरस्वतीन्द्रम् ॥

॥ ओ३म् ॥

महर्षि चरितामृतं नाटकम्

॥ तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जयति संततसतमसच्छटा-
च्छुरितमानसमोहहरद्युतिः ।
करुणया हृदयाम्बुजममलं,
दिशतु शश्वदनश्वरमीश्वरम् ॥१॥

अजमुदित्वरविश्वविधिप्रियं,
श्रुतिसमादृतशक्तिसमन्वितम् ।
निगमगर्भगभीरसुधानिधिं,
शिव ! शिवाय नमामि मनोगतम् ॥२॥

सुखं दुःखं सोढुं वितर मयि किंचिद्बलमयि,
प्रभो ! गाढं ध्वान्तं दलय मनसो मे च सततम् ।
अहं सेवाकृत्ये सफलमखिलं जीवितमिव
यथा कर्तुं शक्तः कुरु शिव ! तथा विश्वजनक ! ॥३॥

[1]यदिन्दिराभारतिचारुकीर्तिं
राज्ञां प्रकाशं भुवनेषु गूढम् ।
सुमित्ररत्नं जगदेकवन्द्यं
तमीश्वरं भावय मुक्तयेऽलम् ॥४॥

यदक्षरं ब्रह्मविदो वदन्ति,
यद्योगिनां योगपथानुगम्यम् ।
समस्ततेजोमय दिव्यरूप-,
मुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम् ॥५॥

यत्कालकालादिमनादिरूप,
यदृग्यजुःसामसु सम्प्रगीतम् ।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः.
पुनातु नस्तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥६॥

पारिवारिकजनाः

॥ नाटकमारभ्यते ॥

सूत्रधारः–[नेपथ्याभिमुखमवलोक्य] अलमलमतिविस्तरेण [सर्वान् विलोक्य स्वगतम्] अहो ! सर्वथा गुणग्रहणपटीयसी विपश्चित्परिषच्चातक-मण्डलीव कादम्बिनीमपेक्षते नूतनचरित्रनिर्मितम्। [प्रकाश]
आर्ये ! इतस्तावत्।

नटी:–[कुसुमभाजनं गृहीत्वा] इयमस्मि, को निदेशः स्वामिन् ?

सूत्र:–देवि ! गुणारामविहारिणी कोविद परिषदियं समुपतिष्ठते नयनानन्दजननं दिव्यचरितामृतं पिपासुः, आदिष्टोऽस्मि गुरुकुलक्लिष्टेन वेदशास्त्रमयपत्रमुनिवर मायाशंकराचार्य-शिष्येण श्रीसत्यव्रतस्नातकेन रचितमुचितमनयाभिनेय "महर्षिचरितामृतम्" नाम नाटकमभिनेतुमिति, तत्कथमनभियुक्तामिव कर्मणि पश्यामि भवतीम् ?

नटी:–अयोग्याधिकारे पदे पद निदधानो जनः सर्वदा हास्यतां याति।

सूत्र:–[अज्ञात्वा तत्त्वम्] ननु किमुद्दिष्टम्, न सम्यगवधारयामि भवत्या आशय, तद् विशद विवर्णयतु।

नटी–[सोल्लुण्ठनम्] आर्य ! पुरस्करणीये हि कार्ये किं मे पृष्टेन मतेन वा ?

सूत्र:–देवि ! मैवम्, कानिचित्पुरुषतन्त्राणि कानिचिद्गृहिणीतन्त्राणि, कानिचिदुभयतन्त्राणि भवन्ति कार्याणि।

सूत्रधार :—[नेपथ्य की ओर देखकर] बस करो बस, अति-विस्तार से क्या लाभ ? [सब को देखकर मन में] अहा ! सबके गुणो को ग्रहण करने में चतुर, यह विद्वत्परिषद् भी किसी जीवन चरित्र रचना की, उसी प्रकार प्रतीक्षाकर रही है जैसे चातक पंक्ति मेघ माला की। [प्रकट में] देवि ! थोड़ा इधर आओ।

नटी :—[फूलो की कंडिया हाथ में लेकर] वह आ गई, पतिदेव की क्या आज्ञा है ?

सूत्रधार : - देवि ! सद्गुणों के उपवन में विचरने वाली यह विद्वत् सभा, नेत्रा को आनन्द देनेवाले दिव्य चरित रूपी अमृत की प्यासी है, मुझे आदेश मिला है कि तपोनुष्ठान पूर्वक गुरुकुल मे पढ़े हुए, वेदादिशास्त्रो मे निष्णात मुनिकल्प श्री आचार्य माया शंकर जी के शिष्य, श्री स्नातक सत्यव्रतजी के द्वारा रचित और इस अवसर पर अभिनय योग्य 'महर्षिचरितामृतम्' नामक नाटक का अभिनय प्रस्तुत करूं तो फिर तुम इस काम मे लापरवाह सी क्यों दिखाई दे रही हो ?

नटी :—जिसका वह अधिकारी नही है ऐसे कार्य में प्रवृत्त होने वाला मनुष्य सदा उपहास का पात्र बनता है।

सूत्रधार :—[भाव को न समझते हुए अरे, क्या कहा ? आप के आशय को मैं नही समझ पाया हू, इसलिये स्पष्ट रूप से समझाओ।

नटी .—[उछलते हुए] आर्य ! पुरुष के करने योग्य काम में मेरे पूछने से अथवा जानने से क्या लाभ ?

सूत्रधार :—देवि ! ऐसा मत कहो ! कुछ कार्य केवल पुरुष के करने योग्य होते हैं, कुछ केवल पत्नी के करने योग्य और कुछ ऐसे होते हैं, जिन्हें कि दोनो मिलकर करते हैं।

नटी:–अपूर्वमिव वचः ।

सूत्र –आर्ये ! अवगतस्ते हृदयतर्कः, एवमेव कैश्चित्पुरुषापसदैः समानमपि परस्परोपकरणं पदं निराकृतं दंपत्योः प्रकृतिपुरुषयोरिव ।

नटी:–प्रिय नः [स्मृत्वेव] न तु विद्यमानेष्वपि समादृतभूषणेषु ज्योतिश्चक्रेष्विव परेषु महामहिमशालिषु कथं नाम सुभगम्मन्यः कविरयं न विरमति महर्षिचरितामृतात् ?

सूत्रः–सत्यमेतत् ! तथापि—

"सौजन्यैकपयोनिधेरविरलप्रारब्धपुण्यव्रत–
प्रेयोलालितमानसस्य विशदः कस्यापि भव्यायिनः ।
कामंधाममुदामशेषजनताकीर्तिस्फुरत्तारका—
तेजःस्तोमहरः स निर्मलयशःशीतद्युतिः शोभते ॥७॥

नटी:–एवं पारेगिरां गौरवं, अथ पुनः सुधाप्रवाहवाहिनश्चरित्रप्रतिवेशिनः कवेरपि कथं न परिचयभणितिः श्रवणगोचरी भवति ?

सूत्रः–आर्ये ! किं वृथा विकत्थनघोषैः, आविष्कुर्वन्ति कार्यत एव महिमानं महायशसः पश्य—

"उद्दामद्रागुदञ्चत्खरतरनखराघातसंचूर्णितोग्र–
ग्रावग्रामस्य गर्वग्रहिलगुरुपदं निर्यतोऽरण्यभागात् ।
त्रस्तत्रस्तास्ततत्वक्षुभितगजघटास्फारचीत्काररावै-
र्दत्तकर्णः शौर्यंशवलेरगदितगरिमा ज्ञायते सिंहसूनोः ॥८॥

नटी :—आपका यह वचन अभूतपूर्व सा है।

सूत्रधार :—प्रिये ! तुम्हारे मन की शका को मैंने ताड लिया है। वास्तव मे, कुछ नये धर्मो ने प्रकृति और पुरुष के समान पति और पत्नी दोनो द्वारा परस्पर मिल-जुल कर करने योग्य कर्म के अधिकार का भी निषेध कर दिया है।

नटी :—आपकी बात हमे बडी प्रिय लगी, [स्मरण सा करके] क्यो जी, ये अपने आपको सौभाग्यशाली समझने वाले नाटककार 'श्री स्नातकजी' नक्षत्रो के समान देदीप्यमान चरित्र वाले समादरणीय अति गौरवशाली अन्य महा-पुरुषो के होते हुये भी केवल 'महर्षिचरितामृतम् (-महर्षि दयानन्द के चरित्र) के गान मे ही क्यो लगे रहते हैं ?

सूत्रधार :—यह सत्य है तथापि—

सौजन्य-सागर के असामान्य भाग्यरूप पुण्यव्रत से लालित मानसवाले किसी भव्यार्थीका विस्तृत तेज, एव समग्र कीर्ति के शोभायमान तारको से युक्त प्रकाश, और अन्धकार समूह को हटाता हुआ—निर्मल यशवाला चन्द्रमा शोभता है ॥७॥

नटी :—अहा ! अनिर्वचनीय महिमा है। पर साथ ही इस अमृत धारा को प्रवाहित करने वाले, 'चरित्र' के रचयिता कवि महोदय (नाटककार) का भी परिचय क्यो नही दिया जा रहा है ?

सूत्रधार :—प्रिये ! व्यर्थ ही आत्मप्रशसा के उद्देश्य से क्या लाभ ?

सूत्र :—आर्ये ! क्या लाभ है इन अनावश्यक बातो से मनस्वीजन तो कार्य से ही निज गौरवाख्यान किया करते हैं। देखिये।

'मत्तेभराज मदवारि विशोभिगण्ड,
उध्वस्त पादपचयाखिलवन्यशक्त ।
दन्तावल-प्रतिपल-प्रति-भू समर्थ,
सिंहार्भक द्विप विनाशन हेतु पूज्य ॥८॥

नटी:–[सस्नेहम्] अहो प्रत्यापितमेदमार्य वचः, साम्प्रत कस्मिन्नियुज्यतेऽय जनः ?

सूत्र:–किमन्यत् प्राथमिक श्रवणरञ्जनमन्तरेण विदुषाम् ?

नटी:–ननु कमाश्रित्य गायामि ?

सूत्र:–[विलोक्य] इममेव समुचितसमयानुकूल जलदकालम् । पश्य अय हि पयोवाहस्य–

"धरां धारासारैरनधिगतनिम्नोन्नतदशा-
मनर्थैर्विन्यासैः श्रुतिमिव खलानां विचरयन् ।
अनालोकं धर्मागममिव विधायाम्बरमणि
समायातः कालः कलिरिव कलापिप्रियकरः ॥९॥

नटी:–सत्यं तथापि रमणीयः सलिलप्रवाहः—

"निखिलकरकलापैर्भू रस हन्त कृष्ट्वा
प्रतिदिनमविरामं सग्रहं कुर्वतोऽस्य ।
अयमुपकृतिकामो सर्वमादाय भानोः
सुखयति सुखमुर्वीमातपेनाभितप्ताम् ॥१०॥

सूत्र:–अतिकमनीयं संगीतम् [वीक्ष्य कुसुमभाजनम्] आर्ये ! किमेतत् ?

नटी:–ननु जानात्येव आर्यः, यथा श्वः शिवरात्रिः, अतो मया प्रथममेव संगृहीतानि कुसुमानि ।

सूत्र.–पुरस्तात् किल [नेपथ्ये]

'भो भो अन्तेवासिनः, एष समाज्ञापयति वो गुरुः यथा श्वः शिवरात्रिरिति, अनध्यायो युष्माकम्" [श्रुत्वा] देवि ! इदमाम् प्राकृतमेव मद्वचनोऽनुरूपम् ।

नटी:–यथार्थं समाज्ञापयति ।

नटी :-[सप्रेम] अहो आपने तो मुझे सचेत ही कर दिया। अब कहिये यह जन सभा क्या देखना चाहती है ?

सूत्र :-विद्वानो को श्रवण दृश्य के सिवाय और क्या चाहिये ?

नटी : किसके गीत गाऊँ ?

सूत्र: [देखकर] इस श्यामल घन शोभित पावस वेला के ही। देखो तो इस जलद के ,—

"धरा धारा सिक्ता कर अलभ नीचोच्च पदवी,
विमोघाक्षेपो से श्रुतिसम खलो को रच रहा।
विना ज्योति प्राय: सुकृतपथ को हीन रवि सी,
किया वेलाआयी कलिसम कलापी प्रिय करी ॥९॥

नटी :-है तो सत्य, पर कितना रमणीय है यह सलिल सम्पात–

"सकल किरण जालो से धरावारि लेके,
प्रतिदिन करता ही जो रहा अम्बु योग,
निखिल रवि विभव की प्राप्ति से धन्य भाग,
सुखद कर रहा है ताप सन्तप्त भू को ॥१०॥

सूत्र –बड़ा ही मनोहर गीत है। (पुष्पपत्र को देखकर) आर्ये ! यह क्या है ?

नटी –आप जानते ही हैं कि शिवरात्रि है। तभी तो मैंने अभी से सग्रह कर लिया है कलियों का।

सूत्र :-बहुत अच्छा किया [नेपथ्य मे]

'अरे अरे अन्तेवासियो ! हमारे गुरुदेव का आदेश है तुम्हारे लिए कल शिवरात्रि का अनध्याय रहेगा।" [सुनकर] देवि ! शीघ्रता करो ब्रह्मचारियोको तो कौतुक का आनन्द आ गया है।

नटी :-जैसी आपकी आज्ञा !

सूत्र.–[विहस्य] अहा ! समागता दम्भदण्डैरिव पूजकैर्घणघणायमानघटाघोषनिरस्तजननिद्रा उपवासमिषान्मिष्टान्नपूरितोदरकुहरैश्चोच्चारितदीर्घनादा निद्रालुजनघुरघुरायमाणघोरघोणघोषिता शिवरात्रिः. अथवा शिवरात्रिः ।

[विचिन्त्य]

"अस्तंगतेऽपि मार्त्तण्डे कस्यचित्तेजसा सतः ।
इयं रात्रिर्यथार्थैव शिवरात्रिर्भविष्यति" ॥११॥

[अपि च]

अद्य प्रचण्डतमसा परिपूरिताऽपि
घोराऽपि भीतिकरकारणसंगताऽपि ।
कस्याऽपि दिव्यमहसा शिवरात्रिरेषा
रात्रीतिशब्दमपहाय शिवं धरीता ॥१२॥

[इति निष्क्रान्तः]

इति प्रस्तावना

सूत्र .-[मुस्कराकर] ओ हो ! आ ही गयी है पूजकों के दम्भदण्डो के समान घनघनाते हुए घण्टा घोषो से विनष्ट जननिद्रा वाली, उपवास के व्याज से मिष्टान्न भरे हुए उदर गुहा के समान दीर्घनाद वाली, निद्रालुजन की घुरघुराहट से घोरतम शब्दमयी शिवरात्रि अथवा शिवरात्रि [सोचकर]

"अस्तंगत हुआ भानु किसी के सत्य तेज से,
अवश्यही यही यामा होगी शिवरात्रि वस्तुतः॥११॥"

[और भी]

"आज प्रचण्ड तम से परिपूरिता भी,
घोरा विभीषण भयादि विधान हेतु।
पुण्य प्रभाव सरसा शिवरात्रि होगी,
रात्रि प्रसिद्ध ध्वनि छोड़ शिवार्थ बोधी ॥१२॥

[इस प्रकार चला गया]

॥ इति प्रस्तावना ॥

प्रथमोऽङ्कः ।

(प्रवेशः प्रथमः)

[स्थलं गुरुकुलम्, प्रातः समयः, ततः प्रविशति कश्चित्-
निद्रार्धनिमीलितनयनश्छात्रः]

राजप्रकाश :-अहो ! विभातप्राया विभावरी । तथाहि—

पीयूषकोमलरसोरसरीतिचोरा
दारानिभां कुमुदिनीं श्रयत. सुधांशोः ।
कान्तिर्विघोरपगता कुटिलस्य ताव-
दीर्षाकषायितमना इव मानिनीयम् ॥१॥

अहो ! इतोऽपि हृदयङ्गमः प्रकृतिविलासः—

'इतस्तारा व्यस्ता अनुगतनिकारा इव करा
न राजन्ते राजन्यनुचितसमासादितगतौ ।
विभावर्या भर्तुर्विरहजनितानां च कणिका
निकामं नेत्रान्तर्गलितसलिलानामुपनभः ॥२॥

समुद्गतः प्रभापाटलः प्रभाकरः—

"एतद्बिम्बमधोविधूनिततमो रेतोधसः साम्प्रत
संव्यूहैरविशायमम्बरमिद भासामहो लिम्पति ।
विश्वव्याप्ततमच्छटासहवसत्येनः कलङ्कस्पृशा-
माशानां कथमुन्मृजामिव ततो भानुर्विधत्तेऽराम् ॥३॥

इतोऽपि

"दिवकामिनो सदनवन्दनमालिकेव
कान्तिः सरोजसुहृदो नवकोङ्कमीयम् ।

प्रथमांक

[प्रवेश प्रथम]

[स्थान गुरुकुल, समय प्रातः, निद्रार्ध निमीलित नयन किसी छात्र का प्रवेश]

राजप्रकाश : अहो ? रजनी तो समाप्त हो गयी। तभी तो :

पीयूष मंजुल रसाशय रीति लुब्धा,
पत्नी ममा कुमुदिनी प्रिय चन्द्रमा का।
शोभामिटी लग रही सम मानिनी सी,
ईर्षानिल, चलित चित्त अहो प्रभाते ॥१॥

अहो ! कितना चित्त चोर है प्रकृति नटी का यह अनूठा विलास ! .

यहाँ तारे सारे रुचिर कर से हीन कर से,
नही शोभा पाते अनुचित कृति भूमि पति से।
निशा के स्वामी के विरह जनिता संख्य कणिका,
असुदिग्धाश्रुकी नयनगत नीरागम विभा ॥२॥

भगवान् भुवन भास्कर सुवर्णथालसा उभर आया,
विम्बकार रवि प्रभात समयी गाढान्धकारारि ये।
आकाशा खिल सम्प्रति प्रतिनिधीभूत प्रकाशौघ,
सर्वात्मगत प्रधान प्रणिधि प्रख्यात कीर्ति प्रिय,
सर्वाशाधवलायिता सुखमयी भास्वान् के शौर्य से ॥३॥

इधर भी तो

आशांगना निलमवन्दन मालिका सी,
सूर्य प्रभा नवल कुंकुम सी सुरम्या।

आशाङ्गनाभिरनुरागवतीभिरद्य
सस्मेरहासमिह कारयति प्रसङ्गम् ॥४॥

भवतु, आदिष्टोऽस्मि गुरुणा यथा "अद्य शिवरात्रिरिति प्रातरेव त्वया सर्वाणि कुसुमानि संगृहीतव्यानि" इति तद् यावन्न समागच्छति नागरिकसमवायस्तावदिमानि विकसितानि गृह्णामि पुष्पाणि।

[विलोक्य]

"पीयूषदीधितिलसत्किरणाञ्चितानि
किञ्चिन्मदारुणविभारुणितानि मध्ये।
बिम्बाधरामलवलद् दशनांकभाजं
प्रातःश्रियः स्मितरुचं कुसुमान्यवापु" ॥५॥

[इति कुसुमानि चिनोति, ततः प्रविशति शीतवेपिताङ्गः छात्रः]

कीर्तिकुमारः—अरे ! ईदृशेऽनध्यायकालेऽपि नाऽस्माकं निद्रावकाशसुखं सर्वथा, इदं कुरु, इदं कर्तव्यमिति नियोगशतैः क्षणमपि विरतिं न ददाति नो गुरुः

[हिमबाधां नाटयति, अग्रे विलोक्य]

अये ! राजप्रकाश एहि।

राजप्रकाशः—[आगत्य] ननु कीर्तिकुमार! कथं भवानपि विभात एव कुथरकम्बलः समागतः ?

कुमारः-[सेर्ष्यम्] भो ! कुसुमानि चेतुमाज्ञप्तोऽस्मि उपाध्यायहतकेन।

काशः—वयस्य ! प्रातरेव निन्दसि गुरुम् ?

दिङ्नारियाँ नव सुनेहवती अमीये,
हासानुहास करती शुभकाल आज ॥४॥

अच्छा, गुरुजनने तो आदेश दिया है।

तदनुसार आज शिवरात्रि है। अतः प्रातःकाल ही तुझे सारे सुमनों का संग्रह कर लेना। अब, जबतक जनता की भीड़ नहीं उमड़ती तब तक इन विकसित कुसुमों को चुन लूँ।

[देखकर]

"पीयूष हस्त विलसत्कर भव्यभूत,
ईषन्मदारुणसुभा अरुणाभ मध्य।
बिम्बाधरा विमल शुभ्र सुदन्त शोभी,
प्रातर्विभा स्मितमयी कुसुमाश्रिता थी ॥५॥

[इस प्रकार कुसुमचयन करता है, सामने से शीत से कम्पायमान कलेवर छात्र प्रवेश करता है।]

कीर्तिकुमार : ओ हो! इतनी सुन्दर अनध्याय वेला है तो भी हमें निद्रा का सुख नहीं है, 'यह कर' 'वह ऐसा कर', 'ऐसा करना चाहिये', इस प्रकार की गुरुजी की सैकड़ों आज्ञाएँ हमें विश्राम नहीं लेने देतीं।

[सर्दी की असह्यता बताता है, आगे देखकर] हां भई! राजप्रकाश! इधर आ न।

राजप्रकाश : [आकर] भाई कीर्तिकुमार! क्यों तुम भी सबेरे सबेरे ही कम्बल झटकाते चले आ रहे हो?

कुमार : [जलन से] क्या करूँ भैय्या? दुष्ट उपाध्याय ने प्रसून चयन की आज्ञा जो दे दी है।

प्रकाश : वाह भाई! प्रभात की पुनीत वेला में ही गुरु की निन्दा!

कुमारः–भो गुरुवत्सल ! सत्यमेतत्, पश्य,

अस्मिन्विभातावसरे मन्दमन्दमकरन्दवाहिनि तुषारबिन्दु तुन्दिलितवपुषि वाति मरुति गृहेषु नित्यजागरुका: कुक्कुटा अपि पक्षतीच्छादिताऽवयवा: शरते।

प्रकाश: तत: किं वक्तुकामोऽसि ?

कुमारः–अद्य शिवरात्रि:, गुरुरपि शिवसायुज्यमेतु।

प्रकाश.– सखे ! कथमध्यापकस्योपहास: ?

कुमारः–[अश्रुत्वेव] पश्य, अयमपि मूलशङ्करः किमपि गुण-गुणायमान: आक्रोशतीव निसर्गरुषे गुरवे।

प्रकाश·–सर्वथाऽनभिज्ञोऽसि, अयन्तु वेदस्तवेन स्मरति चराचर-नायकम्।

[तत: प्रविशति शङ्कर·]

शङ्कर –अहो ! विभातसमयस्य कमयनीयता !

इतो विभा भानुमत: समन्तादपाकरोति प्रचुरान्धकारम्।
पवित्रसारस्वतसारपात्रीन्नयोमयी रम्यगवीव गुर्वी ॥६॥

अपि च

वेद यस्य प्रशसापरिणतिमिवशा: कर्मणामोक्षिता य-
स्त्रैलोक्यक्षेमधाता वसतिरभिमना धर्मशर्मोदयस्य।

कुमार जी हाँ गुरुभक्त जी ! यह सत्य है देखो न इस प्रत्यूष वेला मे मन्दमन्द मकरन्द वहन करने वाले हिमकी बून्दो से परिपुष्ट शीतल समीरण के सञ्चार से नित्य जागरुक अरुण शिखा भी तो आज घरो मे ही डैनो मे चोचें छिपाये कैसे सो रहे हैं।

प्रकाश : तो तुम्हारे कथन का क्या भाव है ?

कुमार : मैं तो यही चाहता हू कि आज शिवरात्रि के दिन गुरुजी भी कैलाश वासी हो जायें।

प्रकाश : क्यो अध्यापक महोदय का भी उपहास ?

कुमार : [अनसुनी करके] देखो ! यह मूल-शकर भी तो कुछ गुनगुनाता हुआ सा दुर्वासा जैसे गुरु को ही रो रहा है।

प्रकाश : तू सर्वथा अनभिज्ञ है। यह तो श्रुतिवचनो से चराचर पति का सस्तवन कर रहा है।

[इतने में मूलशङ्कर प्रवेश करता है]

शकर : अहो प्रभात वेला कितनी रमणीय है ?

'यहाँ प्रभा भास्करकी नशाती,
प्रगाढ अन्धेरे दशो दिशा का।
पुनीत विद्यागत सारपत्री,
वेदत्रयी शोभन गौ समाना ॥६॥

और भी तो—

चारो श्रुति प्रथित गायन कार्य सक्ता,
जो सर्वदा सकल कर्मनिरीक्षकाद्य।
लोकत्रयी कुशल मगलद प्रसन्न,

उन्मीलत्पङ्कजालीपरिमललहरी लोभिनीन्दिन्दिराली
झङ्कारस्वीकृतस्वागतमयमरुण. शोभते लोकचक्षु: ॥७॥

प्रकाश –[समीप गत्वा]

शङ्कर ! कथ आगमनपरिक्लेश: स्वीकृत: ?

[अश्रुत्वेव प्रकृतिविकासमवलोक्य]

"द्वौ कन्दुकौ हिमरुचिद्युमणी विभातो
मन्दप्रफुल्लनयनद्युतिलक्ष्यमाणौ ।
धाता जगत्त्रयविनिर्मितिजागरूक:
सक्रीडते गगनसीमनि किं कराभ्याम् ॥८॥

[प्रकाश विलोक्य] सखे ! पश्य !

"धाराभिर्विश्वमारात्तमसि निपतितं रञ्जितकुङ्कुमाना-
मानाकव्यापिनीभिर्निशिचरनिवहः क्षोदितो रश्मिदण्डे ।
मुक्तानां सूक्तरावै कमलवनमहाबन्दिवासादलीना
साकं यद्गोद्विजैश्च चरति विभवति भ्राजमानांशुराशि. ॥९॥

प्रकाश:–सत्यं मनोहरमेव निखिलम् ।

"विकचकमललीलालम्पटालिस्वराली,
कृतकुतुकवचोभिर्दृश्यते दिक्सखीभि: ।
अरुणितवपुरुद्यन् चूर्णमुष्ट्येव भास्वा-
नमरपतिगृहिण्या सस्पृहमुक्तमुक्त." ॥१०॥]

शङ्कर:–ननु कथं प्रातरेव भवन्तौ समागतौ ?

कुमार:–शिरो मुण्डयितुम् ।

प्रकाश:–[विहस्य] शिवपूजार्थं चेत् सुमनासि ।

उत्फुल्ल पकजनिलीन सुपट्पदालि,
स्वस्था गतार्थ करती गुणगान सद्य।
भानु प्रभात किरणें सकलान्धकार ॥७॥"

प्रकाश : [निकट जाकर]

शङ्कर : आगमन का कष्ट क्यों उठाया है ?

[अनसुनाकर के ही प्रकृति का सौन्दर्य देखकर]

"दो गेंद से रवि निशाकर शोभते हैं
मन्द प्रसन्न नयनद्युतिदीप्तिपूर्ण।
धाता समस्त भव निर्मित बुद्धभाव,
है खेलता गगन आँगन में करों से ॥८॥"

[आलोकाविलोकन करके] मित्र ! देखो !

"धराओं से झटिति जग को ध्वान्त संक्रान्त शून्य,
रक्तात्यन्त प्रखर किरणों से अभी रात्रि गामी।
पद्मारण्याश्रित मधु के मिष्ट कांत स्वरों में,
पक्षी-गीएँ वरण करते साथ भाता दिनेश ॥९॥"

प्रकाश : यथार्थ ही तो है, ओहो ! निखिल प्रकृति कितनी रुचिर है ?

"विकसित जलजों मे मग्न मुग्धालि वग,
ध्वनित कुतुकवाणी दिक्सखी सृष्ट हर्ष।
रवि अरुणित देही चूर्णकी मुष्टियों सा,
भ्रमरपतिरमा के स्पर्श से ज्ञात मुक्त ॥१०॥

शंकर : क्यों जी इतना प्रभात में कैसे शुभागमन हुआ आप दोनों का ?

कुमार : सिर मुंडाने के लिए।

प्रकाश : [मुस्कराकर] शिवार्चना के लिए, सुमन संचय के लिए।

कुमार:—शङ्कर ! दिष्टचा भवान्न पतितो नयनगोचर तस्य पण्डितस्य । [प्रकाशं प्रति] सखे ! अयं कथ-न विषयीकृत. कुसुमावचये ?

प्रकाश:—वन्धो ! प्रतिमैव रञ्जयति गुरून शिष्याणाम् ।

कुमार:—अवगतम् , अतिप्रतिभावत्त्वमपि दोषाय कल्पते !

प्रकाश:—कथमिव—

कुमार:—पश्य, तस्मिन्दिने बृहस्पतिरिव शकर: कथ निःसारित: विद्यालयात् ।

शङ्कर:—हा धिक् वयस्य ! स्वाच्छन्द्य हि निपातयति गतं !

कुमार:—भो जाने ! आत्मन: समधिकमेधाविशेष न सहन्ते शिष्य हताशा अध्यापक: ।

शङ्कर:—बालिशोऽसि ।

"वचांसि येषामुदयङ्गमानि,
पापप्रणालीदलनक्षमाणि ।
चरित्रशीलानि न शीलयन्ति,
घनावलेपा निपतन्ति शोके ॥११॥

प्रकाश:—तथ्यमाहुगुरवो हि—

"स्तोकं लब्धमपायि पुण्यनिचयथाजान्मनाग्थिने
लोकेऽस्मिन्द्रविण दुरन्तकरण केनापि किं दीयते ।
एते हन्त निसर्गसौम्यरुचयो विद्याधन शाश्वत
निर्व्याजं ददते पवित्रमनसो धन्या गुणग्राहिण: ॥१२।

कुमार:—त्वमपि विप्रलब्धोऽसि पश्य—

"अन्विष्यान्विष्य राशीननुचितसरणीहन्त पारक्यवाचां
प्राचामाचार्यतायाः पदमिह विदधद्दर्पदन्द्रम्यमाण: ।

कुमार : शंकर ! भाग्य से तू उस पण्डित की आँखों के सामने नहीं आया । [प्रकाश की ओर] मित्र ! इसे क्यों नहीं लिया कुसुम चयन में ?

प्रकाश : भैय्या ! गुरु जन तो शिष्यों की प्रतिभा से ही प्रसन्न रहते हैं ।

कुमार : हाँ, जान लिया, अधिक प्रतिभा भी तो दुःख का कारण बन जाती है ।

प्रकाश : कैसे ?

देखो न, उस दिन वृहस्पति के समान बुद्धिमान् शकर को कैसे निकाल दिया था विद्यालय से ?

शङ्कर : अरे भाई छिः छिः अधिक स्वच्छन्दता गड्ढे में गिरा देती है ।

कुमार : मुझ ज्ञात है, अपनी योग्यता से अधिक योग्य शिष्यो को निराश गुरुजन कहाँ पसन्द करते हैं ?

शङ्कर : मूख है तू ।

"वाणी जिन्हों की उदयार्थकारी,
पाप प्रणाली दलन प्रवीण ।
चरित्रशाली न मलीन होते,
गर्वाधमात्मा गिरते दुखों में ॥ ११ ॥

प्रकाश : सत्य वचन हैं गुरुजनो के :—

थोडा प्राप्ति विनाशि पुण्य जनक व्याज प्रदत्तान्य को,
कोई क्या कितना वितीर्ण करता संसार में द्रव्य को ।
ये तो पूज्य महानुभाव गुरु हैं नैसर्ग सौम्याशय,
विद्या दान मुदा प्रदान करते ये धन्य पूतान्तर ॥१२॥

कुमार : तू भी मूर्ख ही रहा, देखा—

"अत्यन्त शोधन पर प्रकृतान्य वाणी,
सर्वस्व है समझता नित जो कवीश ।
आचार्य पूज्य पद को अभिमान दृष्टि,

कण्ठेऽकुण्ठः शिशूनां स्रजमिव वहतां शासनालोमलसू-
दङ्गीकृत्य गर्जत्यनुभवरहितः पण्डितम्मन्य एषः ॥१३॥

अपि च ।

"अधिगत्य कियत्यनर्थभाञ्जि
परमत्या हृदयङ्गमानि कृत्वा ।
अधिकाश्रितदर्पमक्षराणि
ननु वागीशगतिं विडम्बयन्ति" ॥१४॥

प्रकाश:—अयमपि प्रशसनीयस्तेषां मतः, किन्तु नहि परेऽपि मुष्काक्षरोदरं भरिणः सवथा नमस्या हि ते पश्य—

दूरादेव मनोहरः शिखरगिरिः शोवापदापत्प्रद.
वक्रः सोऽपि तुषारदीधितिरयं काम कलङ्कान्वितः ।
क्षुब्ध. किञ्च चलत्पेयसलिलो वारांनिधिस्तद्गुरुः
विद्यादिव्यविलासवर्षणसुधापाकः कथं वर्ण्यते ॥१५॥

कुमार :—भवतु, युष्याकमभिरुचि. ।

शङ्कर :— (सशङ्कः) न तव ?

कुमार.—अथ किम्, अद्यैव शिवरात्रिमहोत्सवं भाजयित्वा व्रजिष्याम्यन्यत्र ।

प्रकाश :—निश्चतं तदपि नाम ! अन्यथा कथं मूषकस्य बिडालेन सम युद्धाभिनिवेशः ?

[कुमारः शङ्कराय पत्रं दर्शयति]

शङ्कर :—[पठित्वा] (स्वगतं) अहो ! भारतीविलासालय इव सिद्धाश्रमे [सिद्धपुरे] नियतं विपश्चितामवकाशः

से देखता चिर अनेहस से प्रगल्भ।
पाण्डित्य कण्ठगत जो शिशुसा सुहार,
धारे मनुष्य पति सा दृढ़दण्ड बुद्धि ॥१३॥"

और भी तो—

"मनस्थ मोघार्थ अनेक लेके,
सरस्वती भी परकीय लेके।
स्वय बने अर्थपति प्रविश,
दर्पोक्तियाँ लाँछन दे रही हैं ॥१४॥

प्रकाश.-ऐसा प्रयास भी प्रशस्त है उनका ! सभी तो ये ऐसे नही हैं जिनके चरणों की धूलि से मस्तक पवित्र किया जाए। इनमे भी अनेक ऐसे हैं जो उदरपूर्ति का ही ध्यान रखते हैं। —देखो

"आपल्लंध्य मनोहरोन्नतशिरा शैवालक प्राञ्जल,
है लक्ष्मांकित चन्द्रमा असरल प्रख्यात शीतांशुक।
वो भी वक्र तुषारदीधिति तथा दोषांकनापूरित।
क्षुब्ध क्षीर निधि प्रशस्तन रहा प्यासे सभी प्राणभृत् ॥१५॥

कुमार : हाँ, हाँ ठीक है आप की अभिरुचि !

शकर : [शंकित सा] तेरी नही न !

कुमार : और क्या आज ही शिवरात्रि का मेला बिताकर कही भाग जाऊँगा।

प्रकाश : स्थान तो निश्चित ही है न !
नही तो बिल्ली से चूहे की क्या लड़ाई ?

[कुमार शंकर को पत्र दिखाता है]

शकर : [पढकर] (मन ही मन मे) अहो ! विद्या के भव्य धाम सिद्धाश्रम (सिद्धपुर) में विद्वानों का पुनीत सान्निध्य तो अवश्य है।

[प्रकाशम्] कुमार ! अवश्य एतत्करणीयम् ।

पश्य—

कल्याणैककुलाङ्कुरा, सुरसरिद्धारानुकारा,परान्
ध्वस्ताशेषतमश्चया नवनवोन्मेषा दिनेशा इव ।
नि:शेषार्पितजीवना जलधराविश्वानुबन्धा इव
चेतस्तोषसमर्पणे: सुगुरवो धन्या यशोराशय: ॥१६॥

प्रकाश :-भो ! अवचितानि न वा कुसुमानि, पश्य, उदितो भगवान् दिवाकर: त्वरित गन्तव्यम् ।

कुमार :—कथ विभेषि, धिक् कष्टम् ।

"अपेक्ष्य हेतुं परिकुप्यतोऽपि
न कोपतापो कुटिल: स्वभाव
परतु निर्हेतुरुषा गुरूणां
सान्निध्यमन्त.करण क्षिणोति" ॥१७॥

[शङ्कर: सिद्धाश्रमचिन्तां नाटयति]

कुमार :—मया वस्तुनो न निन्द्यन्ते गुरव: किन्तु पल्लवग्राहिण एव— पश्य —

"स्वाहंकारजुष:, प्रमादिवपुषश्चारित्रचञ्चूपुप:
शिष्टा हन्त गुरोर्विशिष्टमतय शिष्या भवेयु: कथम् ।

प्रकाश :—नाय सर्वदा नियम: । पश्य—

"क्षारादेव विनिर्गतानि जलधेरस्मादलङ्कुर्वते
वक्ष: सुन्दरमौक्तिकानि किरणश्रेणीभिरेणीदृशाम् ॥१८॥

(नेपथ्ये) भो भो ! अन्तेवासिन: सजात । एव सन्ध्यासमय:,

शङ्कर :—(श्रुत्वा) अहो ! कालातिपातोऽय व्यर्थकथया, तदस्यामेव सरिति विधीयता स्नानक्रिया ।

[प्रकट मे] कुमार ! हाँ हाँ अवश्य ऐसा करो यही ठीक है ।

देखो .—

"आनन्दातिशय प्रसन्न हृदय प्रज्ञाभिमानोन्नत,
गंगाधार समान मल निचयध्वंसावशेषोज्ज्वल ।
भानु ज्योति समप्रफुल्ल जलद श्यामो धरा मोदक,
धन्यामन्द मुद प्रदर्शित यशा आचार्यवर्यादृत ॥१६॥

प्रकाश : क्यों भई ! पुष्प चयनकर लिया है ? देखना ! प्राचीदिशा मे भगवान् भुवन-भास्कर सुवर्णथाल सा ऊपर उठ रहा है । शीघ्र चलना चाहिए ।

कुमार : क्यो भयभीत हो रहे हो ? हाय रे !

"सहेतु जो क्रोध करे महात्मा,
न दुःखदायी कटुभाव होता ।
आचार्य निष्कारण रुष्ट हो तो,
सनीपता मानस को चुभेगी ॥ १७ ॥"

[शंकर सिद्धाश्रम चिन्ता का प्रदर्शन करता है ।]

कुमार : मै वस्तुत गुरुजनो की निन्दा नही करता । मैं तो पल्लवग्राही गुरुवो की बात करता हूँ ।

देख—

"स्वार्थान्धामल बुद्धिशील नितही आचार चर्चा करे ।
शिष्यो को न महान् ज्ञान निधियाँ ये दे सकें स्वप्न मे ॥

प्रकाश सदा ऐसा ही थोडे होता है ?

मोती क्षार समुद्र जात रमणीवक्ष स्थलाभूषण ।
आदर्श प्रतिमान है जगत मे एणाक्षियो को सदा ॥१८॥

(नेपथ्य मे) अरे विद्यार्थियो ! सन्ध्याकाल हो चुका है ।

शंकर · [सुनकर] अहो ! क्या लाभ है व्यर्थ समय यापन से ? चलो इस नदी मे ही स्नान कर ल ।

कुमार :—अयमपि द्वितीयो गण्डस्फोटकः प्रभातस्नानम्।
प्रकाश :—(अश्रुत्वा) अथ किम्?

विष्कम्भ: (इति सर्वे निष्क्रान्ताः)

द्वितीय प्रवेशः

[सन्ध्यासमयः, टकारास्थानम्]

[ततः प्रविशति कश्चिद्वैदेशिकः]

[चन्द्रशेखर:] वैदेशिक—[समन्तादवलोक्य] अहो! अस्त यियासुर्भगवान् लोकचक्षु—

"उल्लासं कमलाकरस्य कलयन् दीर्घं निरस्यंस्तमः
शोभां कामपि पङ्कजेषु विदधच्चञ्चत्करश्रीभरः।
लोकं तेजसि मज्जयन् जययशोमुद्रामहिम्नाङ्कितो
मार्तण्डः समुपैति कालपरवानस्ताचलं संप्रति ॥१॥

"येनोदितेन मधुपैः ममकारि मैत्री,
पात्रीकृताः प्रणयतो मधुकोशवत्यः।
इत्थं जगत्त्रयगतिर्वचनीयभीरुः
सिन्धौ प्रतापगतिरेष रविर्ममज्ज॥२॥

अहो पर्यवसानशीलं हि सर्वषां जीवनम्—

'लब्ध्वा भूतिं सकलवसुधाधीशसाम्राज्यकल्पां
कीर्तिं शुद्धां ममदरमणीहाससकाशमूर्तिम्।
का विश्रान्तिस्तृणलघुषु हा जन्तुषे क्षेमदात्री
संसारेऽस्मिन् सलिलघटिकाचक्रवद्घूर्णमाने"॥३॥

कुमार : यह प्रातः स्नान भी दूसरी मुसीबत हो गयी।

प्रकाश : [अनसुना करके] और क्या ?

[सब चले जाते है]

(द्वितीय दृश्य)

[समय सायकाल, स्थान टकारा]

[इतने में एक परदेशी छात्र प्रविष्ट होता है] चन्द्रशेखर

परदेशी छात्रः—[चारों ओर देखकर] अहो ! भगवान् दिवाकर तो अस्ताचल की ओर जा रहे हैं :—

कमलाकर को विकसा कर के,
आते गाढ़ तमस विनसा करके।
मृदु अम्बुज मे प्रतिभा भर के,
चहुं ओर प्रकाश निभा करके।
ध्रुव चचल रश्मि उठा कर के,
रवि कीर्तिजयांकित श्री धर के।
छिपता परतन्त्र विभा भर के,
सम सज्जन कष्ट हरे पर के ॥१॥
'मंत्री द्विरेफ गण से कर जो उदेता,
पात्रत्वपा प्रणय से मधु कोप शीला।
ऐसे समस्त भव जीवन वाच्य भीरु,
है डूबता जलधि में रवि तेज धामा' ॥२॥

हाँ, हां, इसी प्रकार तो सारे ही संसार का जीवन है :—

पाके श्री का सकल धरणी ईश साम्राज्य तुल्या,
शुद्धाकीर्ति मदिररमणीहारा सकाश रूपा।
कैसी शांति क्षयरत सभी प्राणियों में सुखाढ्या,
आताजाता प्रति पल जगत् वारियन्त्रस्यपात्र ॥ ॥

भवतु अस्तङ्गत. प्रभाकरः, मयाऽपि निजावासयोग्यमन्वेपणीय स्थानम् [सर्वतोऽवलोक्य] न दृश्यते कोऽपि । [आकाशे] भो भो ! ग्रामनिवासिनः, वैदेशिकोऽस्मि । क्व ननु योग्यमस्मादृशामायतनम् ! किं ब्रूपे उपशिवालय धर्मशालेति ! अहो पर निवृ तिस्थानम् ।—

यात्रिकाणां च पन्यानां
विटानां· व्यसनैषिणाम् ।
कामिनां गृहहीनानां
धर्मशाला गृहायते ॥४॥

अस्तु तामेव गच्छामि [अवलोक्य] इयमेव सा चलत्पताकाञ्चलनेनाह्वयन्तीव पान्थान् विराजते । ततः प्रविशामि सुखशयनाय । [एककोणे प्रविश्य, विलोक्य] अरे ! किमिदम् ?

"क्वचित्थुत्काष्ठीव: सकलगदसंक्रामकरणः
क्वचित्फूत्कारेण प्रचलित पतत्कच्चरचयः ।
क्वचिज्जीर्णा कन्था सघनमलिनः कर्पटः
क्वचिद्भ्मासक्त स्रवति हत कुड्य कृमिकरम् ॥५॥

एपाऽपि केनाचिद्भितौ परिलिखिता स्वाभिधेयगौरवप्रशस्तिश्चकास्ति । एतदपि पथिकैरानीत शाकपाकादितृणजाल चुल्लिका परित. प्रसृतम् । इतोऽपि सारमेयपुच्छाहतः शीतभूमिश्वभ्रधूलिनिकरः । बीभत्समिद स्थानम् । क्व गच्छामि ? एतादृशे तु कुक्कुरा अपि न निषीदन्ति । [अग्रे विलोक्य] अये ? सम्मुख वर्तते गृहं कस्यचित् । नून गृहस्वामिनो भविष्यन्ति । [इति तदभिमुख व्रजति] [ततः प्रविशति चतुर्दशवर्षीया बाला]

बाला —भगवन् ! नमस्ते !

पथिकः—भद्रमस्तु वत्साधि !

अच्छा, अब तो सूर्य छिप गया है। मुझे भी अपने निवास की व्यवस्था कर लेनी चाहिये। [चारों ओर देख कर] यहाँ तो कोई नहीं दीखता। [गगन में] अरे भाई ग्राम निवासियो ! मैं विदेश से आया हूं। कहीं पर हमारे लिये उपयुक्त स्थान है ! क्या कहते हो ? शिवालय के पास में ही धर्मशाला है। बड़ा ही आराम का स्थान है :—

यात्रियों राहगीरों की, बनियों की व्यसनार्त की।
कामुकों गृहीनों का, धर्मशाला निजालय ॥४॥

तो चलूं इसी के पास। [देखकर] यही है वह धन्य भाग्या धर्मशाला, जो पथिकों को हिलते हुये केतु के व्याज से बुलाया करती है। अच्छा; सुखद निद्रा के लिए चलूं यहीं धर्मशाला में। [एक कोने में जाकर, और देखकर] ओहो ! क्या है यह सब ?

"कहीं ढेरों थूक प्रबलगद का कारण बना
कहीं फूत्कारों से उड़-उड़ रहा खूब कचरा।
कहीं जीर्णा कन्या अतिमलिन है दारु फलक,
कहीं धूम व्याप्त स्रवित कृमिकुड्य प्रति पद ॥५॥"

ये भीतें भी तो लोगों के सगौरव हस्ताक्षरों से भरी हुई कैसी शोभायमान लग रही हैं ?

और यात्रियों के लाये ये चूल्हे के चारों ओर शाक पात के ढेर कैसे पड़े हैं ? इधर कुत्तों की पूंछों से उड़ने वाली यह धूलि भी तो इस पावन स्थान को कैसे भद्दा बना रही है ? यह स्थान बड़ा मैला है। कहाँ जाऊं ? ऐसे स्थान पर तो कुत्ते भी नहीं बैठते। [आगे निहारकर] हाँ यह सामने तो है किसी का घर। निश्चित ही घर वाले यहाँ होंगे। [वह उस घर की ओर बढ़ता है तभी सामने से चौदह वर्ष की बाला प्रविष्ट होती है]

बाला :—भगवन् ! नमस्ते !

पथिक :—नमस्ते कल्याणि !

बाला :–कुतः समागम्यते श्रीमता ?

पथिक :-ननु सिद्धायतनात् सिद्धपुरात् ।

बाला :–किं सिद्धपुरात् ?

पथिक :–ओम् । भद्रे ।

[बालिका सनिःश्वासं अधोमुखी भवति]

पथिक :–[स्वगतम्]कथं नामश्रवणमात्रेण बालया निःश्वसितम् अपि नामाभिमतो जनः स्मृतः स्यात् [निरीक्ष्य] अये आकृतिरपि लावण्यमयी तदेवानुस्मारयति (प्रकाशम्) भद्रे ! कथं भवत्या नामश्रवणेन निःश्वसितम् ?

बाला :–महाभाग ! किं निवेदयामि मन्दभाग्या !

पथिक :–जनित कुतूहल, विस्तरेण वर्णयतु भवती ।

बाला :–जन्मस्थानं मदीयं तत्र ।

पथिक :–किं सिद्धपुरे जन्मस्थानम् ?

बाला :–एवम्

पथिक :–[साश्चर्यं स्वगतम्] कथं माकन्दपरिरम्भशालिनं माधवीलता खदिरवनमालिङ्गति ? [प्रकाशम्] भद्रे यद्यपि नवीनागन्तुकेन न सर्वं रहस्यं प्रष्टव्यं गृहमेधिनाम् । किन्तु भवत्याः शालीनतां वीक्ष्य प्रष्टुमुत्सहे ।

बाला :–ननु विश्रब्धं वदन्तु महाभागाः ।

पथिक :–तत्कथं भवत्या दूरादत्र निवासः ?

बाला :–अत्रैव मे दुर्विधायाः परिणतं भाग्यम् ।

पथिक :–अवगतम्, वैवाहिकः सम्बन्धः किम् ?

बाला :–नहि नहि, विक्रय. ।

बाला :-कहाँ से पधार रहे हैं आप ?
पथिक :-मै सिद्धायतन अर्थात् सिद्धपुर से ।
बाला :-क्या सिद्धपुर से ?
पथिक :—हाँ भद्रे !

[बालिका नि:श्वास छोड़ती हुई नीचा मुख कर लेती है]

पथिक :—(स्वगत) नाम सुनने से ही इस बालिका ने नि:श्वास क्यों छोड़ा होगा ?

हाँ, नाम से किसी की स्मृति जाग उठी है। [देखकर] ओहो ! आकृति भी तो सुन्दर है, वही याद करा रही है। [प्रकाश] कल्याणी ! तुमने नाम सुनते ही आह क्यो भरी ?

बाला :-महाशय ! मैं अभागिनी क्या बताऊ ?
पथिक :-कौतूहल हो गया है। विस्तार से बता दो क्या बात है ?
बाला:—वह मेरी जन्मभूमि है।
पथिक :-क्या सिद्धपुर तुम्हारा जन्म स्थान है ?
बाला :—जी हाँ !
पथिक :—[आश्चर्य चकित स्वगत] माकन्द वृक्ष का सहारा लेने वाले यह माधवी बेल भी हाय रे ! खैर के पेड़ से कैसे लिपट गयी ? [प्रकाश में हाँ, तो देवि ! वैसे नवीन यात्री को तो नहीं पूछना चाहिये घर गृहस्थ की सारी बातें। परन्तु आपकी शालीनता देखकर पूछने का मन हो गया है।
बाला :—नहीं, खूब पूछिये आप !
पथिक :—तो इतनी दूर से आप यहाँ कैसे आ गयी ?
बाला :-मुझ अभागिनी का भाग्य यही पर फूटा है।
पथिक :-समझ गया, आप विवाहिता हैं यहाँ ?
बाला :—नहीं, नहीं, विक्रीता हूं मैं यहाँ पर।

पथिकः—(साश्चर्यम्) कथं विक्रयः? (स्मृत्वा) आम्)। अवगतम् अस्ति तत्र गुर्जरप्रदेशस्य प्रसिद्धे नगरेऽयं कन्याविक्रय-व्यवहारः। यत्र धनलुब्धाः केचन काकोदरा बहुमूल्येन कन्याविक्रयं कुर्वन्ति। हा!

"आविर्भूतदयोदयात् परिचयादुच्छिष्टपिण्डादृतान्
न क्रूरायजनोऽपि हार्दविवशो दत्ते गृहात्कुक्कुटान्।
धिक् त यः परिपोष्य जीवनरसस्नेहेन यावत्सुखम्
विक्रीय द्रविणेन पार्थनिरतो भुङ्क्ते स्वकन्यामिषम्॥६॥

हा! भारतवर्ष! का दशा नीतोऽसि पामरपशुभिः

निःश्वासानिलघूर्णमानलहरीसावर्तवक्रायिते
चेतोदाहकरालपावकशिखाधाराकुले दुर्वहे।
आपन्नक्रपरिक्रमप्रचलिते व्युल्लङ्घिताशाम्बरे
कन्यानां नयनाश्रुनीरधिजले हा देश! संमज्जसि॥७॥

[इति निःश्वसिति]

बाला:—इत आसनपरिग्रहं करोतु भवान्। [विलोक्य] ननु सम्प्राप्त एवैष गृहस्वामिशिवपूजकः सहोपाध्यायेन।

(इति निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति पूजकः सहोपाध्यायेन)

पूजकः—भो भो! उपाध्याय! कथं चिरायितं भवद्भिः?

उपाध्यायः—नियोजिता मया विद्यार्थिभिः शर्वर्यां शिवपूजन-सम्भारसंपादनाय।

पूजकः—[मध्ये] ननु, अस्मत्पूजनसंभारो विहितो न वा

पथिक :-[आश्चर्य के साथ] कैसी विक्री ? (याद करके) हां, समझ में बात आ गयी अब। गुजरात के प्रसिद्ध उस नगर में कन्या विक्रय की प्रथा है। वहां कुछ काकवृत्ति के धन लोभी माता-पिता, संरक्षक, कन्याओं को खूब सारे रुपयों में बेच देते है। हाय री कुप्रथा ?

'उद्‌भूतानु दयामरा यदि नर स्वप्राणियों को बड़े,
स्नेहाधीन न बेचते अदय को गेहाश्रमी मानव,
सम्पुष्टामितवत्सलत्वभरिता पुत्री पिता बेचते।
तो वे हैं तनयाऽऽमिषाद पतित प्रख्यात पापी बुरे ॥६॥

हाय रे भारतवर्ष ! तुझे किस दुर्दशा को पहुंचा दिया है ऐसे पामर पशुओं ने !

हाहाकार समीर पूर्णित चलद्दोर्घोर्मि सावर्तक;
चित्त ज्वालन दुर्भगानल शिखा धारा वृत प्रोदय।
आपद्‌ग्राह युत प्रकर्ष रहित व्युल्लघनाशामय,
आँसू सागर नीर मग्न बनता तू देश ! क्यों जा रहा ॥७॥

[निःश्वास छोड़ता है]

बाला :—यहां आसन स्वीकार करें आप [देखकर] हां, हां, अब तो उपाध्याय के साथ गृहस्वामी शिवार्चन करके आ ही गये हैं।

[बाला का प्रस्थान]

[उपाध्याय के साथ में पुजारी प्रविष्ट होता है]

पुजारी :—उपाध्याय जी ! कैसे विलम्ब हो गया आपको ?

उपाध्याय :-मैंने छात्रों को नियुक्त कर दिया है। शिवरात्रि की पूजा सामग्री की सज्जा के लिए।

पुजारी :—[बीच में ही] क्यों जी ? हमारी पूजा की सामग्री व्यवस्था तो कर दी है कि नहीं ?

उपाध्यायः-कथमेतद् विस्मरिष्यामि ?विशेषत ईदृशे महोत्सवे ?

[इति कक्षतो भगपोट्टलिकां निःसारयति]

पूजकः—समीहितं नः आगच्छतु पूर्वं विजया पीत्वा पश्चात् मिष्टान्नेन निजोदरसौहित्यं कुर्वः ।

उपाध्यायः-यथेच्छति भवान् ।

[आसने स्थित्वा पूजको विजयां घोटयति]

पूजकः—[घोटयन्] भो उपाध्याय ! श्रावय, श्रावय विजया-पुराणमाहात्म्यम् ।

उपाध्यायः—[विहसन्] अहो ! पारेगिरां महिमा विजयायाः येन नास्वादिता स जीवन्नेव मृतः !

पश्यः-

दृष्ट्वैव मोहयति कर्षति दूरतोऽपि
हर्षप्रकर्षमभिवर्षति सङ्गकाले ।
वामाङ्गनेव कमनीयकलावतार
मारारिमानसहरा विजया मनोज्ञा"॥८॥

अपि च, सैव-

'दधाति सरसं मनः प्रचुरहर्षसंवर्धने.
करोति मृदुरञ्जनं नयनयो रसोल्लासितम् ।
सुखं किमपि सस्मितं वहति वीतशोकागमं
विलासरसमन्थरा जगति सादरं जीवतु ॥९॥

पूजकः—अहो ! पल्लवितं माहात्म्येन मम हृदयेनाऽपि ! भो ! घोटिता मया विजया, विधीयतां मिश्रण, अहमपि गत्वा गृहाभ्यन्तर पयः समानयामि ।

(इति गतः)

पथिक :—हाय रे ! इन लोगों का कितना खोटा काम है ? आश्चर्य है, इस भङ्ग के रसिक पण्डित महाराज ने तो विजया गौरव का पिटारा ही खोलकर रख दिया है। ऐसे शुभ पत्र पर भी तो मादक द्रव्य नहीं छोड़ते !!

"शैथिल्योद्भवकारण प्रमदधी, पानान्तर प्रायशः,
चित्तानन्द विनाशिनी प्रतिपल प्रज्ञाबलध्वंसिनी।
हा हा ही करती सदा विकलता सम्बर्द्धिनी सौख्यहा,
मूढाङ्गीकृतभगवारवनितायक्ष्माभमोद्भासिनी ॥ ८॥

धिक्कार है ऐसे विशिष्ट विचक्षण विविध वेद वेदाङ्गों के तथाकथित विद्वानो को, दाम्भिकों को, सदाचार विमुखों को !

उपाध्याय :—[भांग मिलाता हुआ चारों ओर निहार कर] अहा ! कितना सुन्दर मनोनयन-हर रूप है इसका।

क्योंकि :—

"जब जब नाम सुना विजया का,
महादेव शिव ने प्रियतर का।
तभी-तभी मुद मोद भरे शिव,
अन्य तरुणियों के अभिलापी ॥९॥

"ऐसा विचार प्रणयाभिरामा
प्राचीन नाम त्यज के स्वकीय।
शैलेन्द्रजा शङ्कर वञ्चनार्थ,
है धारती ये विजयाभिधान" ॥१०॥

[इतने में पुजारी प्रवेश करता है]

पुजारी :—उपाध्याय जी ! लीजिये जल, मैं धर्मशाला के द्वार बढाकर आता हूं, फिर होगा आनन्द से विजया पान-महोत्सव।

[वह द्वार के निकट जाता है]

(उपाध्यायः मिश्रणं करोति)

पथिकः—हन्त, भो! कीदृशोऽमीषां वामाचारः। आश्चर्यम्। अनेन विजयोन्मादिना पण्डितेन माहात्म्यश्लोकपरिपाटी-पेटिका समुद्घाटिता। ईदृशेऽपि वासरे न मादकद्रव्यं जहीत।

'शैथिल्यं जनयत्यमन्दमभितः स्वादावसाने पुन-
र्जीवग्राहमपाकरोति निखिलं सत्त्वं ततः कर्षति।
वैक्लव्यं विदधाति कारयति या हीहीति मूर्छायितं
वेश्येव क्षयकारिणीह विजयाऽऽनन्दाय मन्दैर्मता"॥१०॥

धिक् तानधिगतशास्त्ररहस्यानपि प्रतिहतसदाचारान् दाम्भिकान्।

उपाध्यायः—[मिश्रणं कृत्वा विलोक्य] अहो! नयनानन्दजननं रूपमस्याः।

यतः खलु—

"यदा यदाऽयं विजयाभिधानं
शृणोति शम्भुः प्रणयाभिरामम्।
तदा तदा मोदयुतः समन्तात्
गवेषयत्येष विशेषवामाम्"॥११॥

"इत्थं विचिन्त्य प्रणयाभिरामा
पुरातनं नाम निजं विहाय।
गिरीन्द्रजा शङ्करवञ्चनाय
दधौ नवीनं विजयेति नाम"॥१२॥

[ततः प्रविशति पूजकः]

पुजारी :-[पथिक को देखकर] अजी कौन हो तुम ?
पथिक :—महाशय ! परदेशी हूं।
पुजारी :—तो यहां क्यो आये हो ?
पथिक :—धर्मशाला जानकर ठहरने के लिए।
पुजारी :-यह धर्मशाला नही है; अच्छा यहां रहने का स्थान किसने दिया है ?
पथिक :—आपकी ही कन्या ने ?
पुजारी :—अरे मूर्ख ! कहा है मेरी कन्या ?
पथिक:—क्रोध न करें, वह आपको आता हुआ देखकर घर चली गयी है।
पुजारी :—छी· छो., पत्नी को कन्या मान रहा है ?

[इस प्रकार मुंह बिगाड़ता है]

पथिक :-क्षमा करें महाराज ! आयु देखकर मुझे कन्या का भ्रम हो गया !
पुजारी :—कहां से आ रहे हो ?
पथिक :—सिद्धपुर से ।
पुजारी :—हूं ! सिद्धपुर से !
पथिक :—हां जी ! महाशय जी !

[नेपथ्य में]

"अरे विद्यार्थियो ! मैं सब जगह उपाध्याय जी को खोज चुका हूं। अब पुजारी जी के घर चलता हूं। आप सब विद्यालय चलें।"
उपाध्याय :—ओ पुजारी जी ! जल्दी कर जल्दी, मेरा कोई छात्र आ रहा है।

[इतने में मूलशंकर प्रवेश करता है]

पूजकः—उपाध्याय ! गृह्णातु पयः, अहं धर्मशालाया द्वारं पिधायागच्छामि येन विश्रब्धं भवेद् विजयापानमहोत्सवः ।

[इति द्वारसमीपं गच्छति]

पूजकः—[पथिकं विलोक्य] कस्त्वं भोः ?

पथिकः—महाभाग ! वैदेशिकोऽस्मि ।

पूजकः—तत्कथमत्रागतः ?

पथिकः—धर्मशालेति मत्वा समाश्रयाय ।

पूजकः-अरे ! नेयं धर्मशाला, भवतु, अत्र केन दत्तो निवासपरिग्रहः?

पथिकः—भवत एव कन्यकया ।

पूजकः—अरे । मूढ ! क्वास्ति मे कन्या ?

पथिकः—मा कुप्य, इयं सा भवन्तमागतं विलोक्य गृहं गता ।

पूजकः—धिक् त्वां, पत्नीं कन्येति मन्यसे ?

[इति विकृतिं दर्शयति]

पथिकः-क्षम्यतां महाभाग ! मया वयसा सा भवत्कन्येति संभाविता ।

पूजकः—अरे ! कस्मादागम्यते ?

पथिकः—सिद्धपुरात् ।

पूजकः—हुं . सिद्धपुरात् ?

पथिकः—आम् महाराज !

[नेपथ्ये]

"भो भो विद्यार्थिनः, अन्वेषिता मया सर्वत्रोपाध्यायपादाः सम्प्रति पूजकगृहं गच्छामि । गच्छन्तु भवन्तः पाठशालाम् ।

उपाध्याय—भो भो ! पूजारे ! शीघ्रं शीघ्रं कश्चिन् मदीयश्छात्रः समागच्छति ।

[ततः प्रविशति मूलशङ्करः]

मूलशंकर -[प्रविष्ट होकर] अहो ! उपाध्याय जी को सर्वत्र देख लिया। अब पुजारी जी के घर में देखता हूं। [देखकर] अब इस घर मे प्रवेश करता हूं। अच्छा, विजया महोत्सव का आनन्द मनाया जा रहा है। रहने दूं, या विघ्न खड़ा करूं ? नहीं नहीं, व्यर्थ में बुरा भला कह देंगे क्रोधी गुरुजी ! नहीं जाता अन्दर। यही खड़ा रहूंगा।

[वह धर्मशाला के पथिक वाले कोने की ओर जाता है]

[देखकर] ओहो ! यहां पर तो कोई मुसाफिर दीख रहा है। [सोचकर] अच्छा चलो उसी के साथ कुछ परदेश की बातों से मनोविनोद कर लूं [पथिक से]

भगवन् ! नमस्ते !

पथिक :—नमस्ते ब्रह्मचारिन् !

मलशंकर :—मुझे तो आप पथिक से लग रहे हैं।

पथिक :—ठीक समझा है।

मूलशंकर :—आप किस नाम को सुशोभित करते हैं ?

पथिक :—चन्द्रशेखर।

मूलशंकर :—तो इस ग्राम में आपका परिचय नहीं है ?

पथिक :—ब्राह्मण कुमार ! नहीं तो।

मूलशंकर :—[सादर] तो चलिये, मेरे घर को पवित्र कीजिये आप।

पथिक :—[स्वगत] अहो ! ऐसा सुन्दर शील एवं सौजन्य तो आकस्मिक सम्बन्ध होने पर भी मन को खींच लेते हैं। यह बालक तो महापुरुषों सा विनीत है। अवश्य ही इसका शील अभिजात वंश के समान ही है। क्योंकि :—

"सौजन्य प्रतिकार्यशील विनय प्रख्यात वंशक्रम,
स्नेह प्रांजल भावनादर कथा प्रज्ञान पूर्णाशय।
वाणी सत्य सुधाभरी, रसमयी प्यारी मनोहारिणी
सारेपुण्यसमूहसंभृतगुणव्याख्यानसद्वंशके ॥११॥

मूलशङ्करः–[प्रविश्य] अहो ! सर्वत्रान्वेषिता उपाध्यायाः। साम्प्रतं पूजकस्य गृहं प्रविशामि । [विलोक्य] एतद् गृहम्, प्रविशामि । अहो ! अनुभूयते विजयामहोत्सवानन्दः ! भवतु, विघ्नमुत्पादयामि अथवा अपलप्स्यते वृथारोपिणाऽनेन, अतो न गच्छामि । इत एव तिष्ठामि ।

[इति धर्मशालायाः पथिकाश्रितकोणे व्रजति]

[विलोक्य] अहो ! पथिक इवात्र कोऽपि लक्ष्यते । [विचिन्त्य] भवतु, तावत्तेन सम वैदेशिकचर्चा विनोदयामि । [पथिकं] भगवन् ! नमस्ते ।

पथिक :–नमस्ते ब्रह्मचारिन् !

मूलशङ्कर :–आर्य ! पथिकमिव मन्ये भवन्तम् ।

पथिक :–सम्यगवबुद्धम् ।

मूलशङ्करः–किमभिधानमलङ्क्रियते तत्र भवद्भिः ?

पथिकः–चन्द्रशेखर इति ।

मूलशंकरः–किं नास्ति तदस्मिन्ग्रामे परिचयः श्रीमतः ?

पथिकः–नहि विप्रबटो !

मूलशंकरः–[सप्रश्रयम्] तन्मदीयं गृहं पावयिष्यन्ति भवन्तः ?

पथिक–[स्वगतं] अहो ! ईदृशं शील सौजन्य च आकस्मिकेनाऽपि सम्बन्धेन मनः समाकर्षति महापुरुषविनयोचितोऽयं बालः नूनं अभिजातवंशोचितं शीलमस्य । तथा हि–

"सौजन्यं शुभशीलपेशलतरं मानोन्नता नम्रता
स्नेहः सुन्दरभावनादरकथोपन्यासपूर्वः सदा ।
वाणी सत्यसुधान्विता रसमयी चेतश्चमत्कारिणी
सर्वं पुण्यनिकायसंभृतगुणं धन्यं कुलं शंसति" ॥१२॥

[प्रकाश में] प्रियवर! यह भी स्थान अच्छा है।

मूलशंकर —क्यों बहका रहे हैं आप!

पथिक :—इसमें बहकाने की बात कहां है? मैं तो तुम्हारे प्रेमार्द्र व्यवहार से ही तृप्त हो गया हूं।

मूलशंकर :—अच्छा अभी मैं उपाध्याय जी के पास जा रहा हू। फिर आपके दर्शन करूंगा।

[चला जाता है]

मूलशंकर :—[पास में जाकर] गुरुदेव! नमस्ते!

उपाध्याय :—क्यों मूलशंकर! पुत्र! कैसे आये?

पुजारी :—[बीच मे] विजया-पान के लिए। क्या गुरु शिष्य को छोड देता है?

मूलशंकर :—महाब्राह्मण! यह सब आपको समर्पित है। गुरुवर नगर श्रेष्ठी को निमन्त्रण देकर घर चले गये है।

पुजारी :—जय जय विजये! अजी उपाध्याय जी! गरीब को न भुला देना। [भांग पीता है]

मूलशंकर :—गुरुदेव! सन्ध्यावन्दन के लिए जा रहा हूं।

उपाध्याय :—[भांग का नशा दिखाता हुआ] मू ल... श...क...र!...तू कहां .. जा रहा?

मूलशंकर :—भांग ने गुरु जी को घर दबोचा है तो अब इनके सामने नहीं रहूंगा, [इतना कहकर पथिक को लेकर चला गया]

उपाध्याय :—पुजारीजी! आप...पाठशाला आ...इ...ये...मैं ले.. ता.. हू।

पुजारी :—हाँ, हां, बिना अभ्यास के बेचारे गुरु जी का बुरा हाल हो गया, मैं भी घर चलूं और शिवपूजा की सज्जा करलूं, जय! जय! विजया देवी तेरी जय हो!

[सब चले गये]

[प्रकाश] भद्र ! समीचीनमिदं स्थानम् ।

मूलशंकरः—किं विकल्प्यते श्रीमता ?

पथिकः—कुतो विकल्पनावकाशः, तव प्रणयरसेनैवाप्यायितोऽहम् ।

मूलशंकरः—अस्तु, सम्प्रति उपाध्यायसमीपं गच्छामि, ततो युष्मद्दर्शनं विधास्यामि । [इति गच्छति]

मूलशंकरः—[उपगम्य] उपाध्याय ! नमस्ते ।

उपाध्यायः—कथं मूलशङ्करः ! कथामागतोऽसि वत्स !

पूजारिः—[मध्ये] विजयापानाय, ननु गुरुणा शिष्यो न परिहीयते ।

मूलशङ्करः—महाब्राह्मण ! समर्पितं भवेत सर्वम् । गुरो ! नगर-श्रेष्ठी निमन्त्रणं दत्त्वा गृहं गतः ।

पूजकः—जय विजयादेवी ! जय ! भो ! उपाध्याय ! न विस्मर्तव्योऽयं दीनः ! [इति विजयां पिबति]

मूलशङ्करः—गुरो ! सन्ध्यावन्दनाय गच्छामि ।

उपाध्यायः [विजयामदं दर्शयित्वा] मू ··· लश ··· ङ्······ ······क······क······ र ! त्व ·· त्वया

क्व क्व···गम्यते ?

मूलशंकरः—आलिङ्गितः खलु विजयया गुरुः । तत्र स्थातव्य-मस्यात्रे ।

[इति पथिकमादाय निष्क्रान्तः]

उपाध्यायः—पूजक ! भ ····भ ··· वता······पा··· पा ····—पाठशालाय ····मा ···· मा···ग ···ग·····न्त ····· ·· क्य··· म् ···· ·· । अहं ···· ग ·····ग····· · च्छामि ।

पूजकः—अरे ! अनभ्यासादुल्लङ्घितो विजयया वराकः; अहमपि गृहं गत्वा शिवपूजनसामग्रीं संपादयामि । जय ! जय ! विजयादेवि जय ! !

[इति निष्क्रान्ताः सर्व]

[स्थल टंकारा का शिवालय; समय : शिवरात्रि की रात]

[चारों ओर देखते हुए पथिक प्रवेश करता है]

पथिक :—[चारों ओर देखकर] ओहो ! बहुत बढ़िया काम कर दिया है इस मूलशकर ने; जो शिवालय मे मेरे निवास की व्यवस्था कर दी है। अच्छा तो चलूं बाहर मण्डप के चबूतरे पर बैठ जाऊं ! नही तो जनता की भीड़ बढ़ जायेगी। [बाहर जाकर] हाय रे ! कितनी काली रात है ? फैला हुआ अपना हाथ भी नही सूझता ! [सोचकर] ओहो !

'ये खद्योतजले परन्तु इनसे क्या ध्वान्तका नाश हो,
ये नक्षत्र अशक्त हैं तिमिर के विध्वंस में सर्वदा।
ये भी तीक्ष्ण कराशुसूर्य जबलो भूमिघ्र कोनिम्नता,
होता ना गत पद्म फुल्लकरता ज्योंही न वे सत्वर॥१॥

[अच्छा तो यही पर बैठ जाऊं]

[इतने मे भारी भीड़ और पिता के साथ मूलशंकर प्रविष्ट होता है]

[प्रवेश करके]

सब :—हर हर महादेव ! हर शम्भो ! हर कैलाशपते ! शिवशङ्कर हर हर !

[तब सभी शिवलिङ्ग को नमन करते हैं]

करसनजी :-मूलशकर ! पुत्र प्रणाम करो देवाधिदेव भगवान् भवानीशङ्कर को, ये ही हैं सब मय हारी और मङ्गलकारी देव !

'ब्रह्मा वर्जित शम्भु ने जगत् का निर्माण छोड़ा स्वयं,
श्रौतस्मार्तविगीत विश्वसबका जो बीजहेतु स्वयम्।
जो सम्बद्ध युत प्रकर्ष बलवान् चित्तेन्द्रियों से परे,
सूर्याकारजलस्थबिम्ब समभा ध्याये महादेव को॥२॥

[स्थलं, टङ्काराशिवालयः, समयः शिवरात्र्याः]

[ततः प्रविशति पथिकः सर्वत्रावलोकयन्]

पथिकः–[सर्वतो विलोक्य] अहो !. समीचीन व्यवसितं मूलशङ्करेण शिवालये वासं मम कल्पयता, भवतु, इतो बहिर्गत्वा मण्डप श्रये चत्वरम् , नोचेत् नागरिकाणां भविता संबाधः [बहिर्गत्वा] अहो ! भीषणं निशाकृतं तमः प्रसारितः स्वकरोऽपि न दृश्यते ।

[निर्वर्ण्य] अहो !

खद्योतालिरिह प्रकाशमयते नश्येत्तमः किं तया
नक्षत्राणि न सन्ति केवलमलं छेत्तुं तमोवल्लरीम् ।
चन्द्ररश्मि खराङ्कुशेन परितो नोचीकृतोर्वीधर,
यावन्नोदयते विकासितजगन्मार्तण्डबिम्बं क्षणात् ॥१॥

[भवतु इत एव आसनपरिग्रहं करोमि]

[ततः प्रविशति जनसंदोहेन समं सजनकः मूलशंकर]

[प्रविश्य]

सर्वे:—हर हर महादेव ! हर, शम्भो ! हर ! कैलासपते ! शिव, शङ्कर ! हर !

[ततः सर्वे प्रणमन्ति]

करसनजीः–मूलशंकर ! वत्स, प्रणम भगवन्तं भवभयहारिणं मङ्गलकारिणं भवानीरमणम् ।

यः सृष्टिं न ससर्ज वर्जितविधिर्ब्रह्माण्डभाण्डोदरीं
बीजं किन्तु तदादिकारणकलावल्ल्याः श्रुतियं जगौ ।
यः सम्बन्धमथापितोऽपि करणैर्भिन्नोऽतिमात्रप्रभ–
स्तोयेविम्बमिवारणस्वहृदये तं शङ्करं धीमहि ॥२॥

[मूलशंकर प्रणाम करता है]

मूलशंकर :-पिताजी ! आज के इस उपवास और व्रत से मुझे क्या लाभ होगा ?

करसनजी:—पुत्र ! क्या कहूं ! सुन ले तो फिर !

'अनेक उपभोगों से भक्तिमान् मानवोत्तम ।
शम्भु के उपवासों से भक्तिमुक्ति फलाजिता' ॥३॥

[मूलशंकर कुतूहल पूर्वक देखता है]

पथिक—[स्वगत । वाहरे ! पिता की बात सुनकर भी तो यह किशोर देव नमन करने में कुछ भी तत्परता नहीं दिखा रहा । तभी तो:—

'पूजाविनष्ट महदाश शुभान्तराल,
शम्भुपदस्य कर मौक्तिक माल शोभी ।
भक्ति प्रसादन परा सरणि प्रशस्ता,
तुल्या, निमीलित शुभाक्षिशिशुत्व बोधी ।
ध्यानस्थ बालक महा मुदमोदकारी,
साक्षात् यही प्रकट है शुचि शांति पूत' ॥४॥

अहो ! कितना सद्भाव और कुतूहल है इसमें—

'ज्ञानाज्ञान विवेक शून्यमन से प्राप्त पर्याप्ति पर्यावृता,
शुद्धात्यन्त कला शुभाविभ्रमयी बाल्यत्व चिताह्लदा ।
चन्द्रांकस्यकलाममान शिशुओं का मान जो दीखता,
छायातुल्य पुरातनी फलयुत प्राकर्षता-वाप्ति में ।
सस्काराश्रित कर्म मात्र नरके प्रत्यक्ष वे आगये,
प्रायः यह मन की दशा नमन में विघ्नप्रदा आज है' ॥५॥

वैसे तो सभी ने भगवान् आशुतोष महादेव बाबा की पूजा कर ही ली है । सब स्थान भी स्वच्छ बना दिया है तो मैं भी यहीं बैठे जाता हूँ ।

[पूजा समाप्ति के बाद एकांकी]

[मूलशङ्कर: प्रणमति]

मूलशङ्कर:–तात ! अद्य कृतेन विधिनोपवासेन किं मे साध्य भविष्यति ?

करसनजी.–वत्स ! किं वणयामि ? शृणु !

अनेनैकोपवासेन मानवो भक्तिसयुतः।
भक्ति मुक्ति सदा शम्भोरुपवासमुपार्जति ॥३॥

[मूलशङ्कर: सकौतुक वीक्षते]

पथिक.–[स्वगत] अहो ! बालकौतुकम् ! जनकेन निवेदितोऽपि नमनाय न मनाङ्मनो दशयति। तथा हि–

समर्चाविद्धाश: सुभगहृदय: शङ्करमना:,
करे माला मुञ्चते: सरणिमिव भक्तिप्रणयिनीम्।
दधानो ध्यानेन स्तिमितनयन: शैशववशा–
दयसाक्षाच्छान्तिस्नपित इव माङ्गल्यमहिमा ॥४॥

अहो, निरतिशय सौहार्दं कुतूहल च–

ज्ञानाज्ञानविवेकवृत्तिरहिता प्राप्तेऽप्यपर्यावृता,
शुद्धा चन्द्रकलेव शैशववशाद् संविन्मनोनन्दिनी।
बालानां प्रतिबिंबितेषु सहसा तस्यां पुराकर्मणां
संस्कारेषु यत: पुरातनपरिष्कारान समुज्जृम्भते ॥५॥

भवतु मयादिना समस्तै: सपर्या भगवत: सदाशिवस्य। अहो ! स्थानमपि निखिलं परिष्कृतम्। भवतु अहमपि तावदित्रैव तिष्ठामि।

[पूजाविजनान्ते एकाकी]

मूलशंकर–(चारों ओर देखकर)

अरे ! यह क्या सभी की आंखें नींद से भर गयी है ! सचमुच शिवजी को पा गये हैं ये ! और पिताजी तो कहते थे कि भगवान शिव के दर्शन होंगे, पर वे स्वयं क्यों सो गये है ? हां, हां, यह खूब लड्डू उड़ाने वाला पेटू पुजारी भी तो हाथ पैर फैलाकर कैसे आनन्द से सो रहा है ? कितना प्रगाढ़ अन्धकार है ? ये तेलहीन दीपक भी सोते हुए इन भक्तों की नासिका के वायु से कैसे कांप रहे है ?

क्यों अरे यह पथिक भी तो सो गया है ? क्या ऐसी भक्ति से कल्याण मिलता है ? हैं ! हैं ! कौन खडखड़ा रहा है यह ? यह तो चूहों की फौज है क्या यह सेना पेटू पुजारी के मालमलीदे मोदक भरी उदर गुहा में आहार ढूंढने आये हैं ! (नींद जताता हुआ) यह नींद तो मुझे भी सता रही है। क्या सो जाऊं मैं भी; नहीं। शिवरात्रि का उपवास टूट जायेगा (शिवलिंग को देखकर) भगवान् ! देवाधिदेव ! परमेश्वर ! कर दो कृपा दर्शन दान से कृतार्थ कर दो शिव शम्भो ! क्या जाता है तेरा भोले ! मुझे दे दे मुक्ति ! इस बालक पर कृपा कर दो विभो ! मैं अकिञ्चन हूं तेरा शरणागत हूं कैलाश पते ! मेरी रक्षा कर दो दीनबन्धो !

"बच्चा हो यदि हो युवागुरुजन प्रज्ञानवान् सज्जन,
छोटा हो वरमुग्ध मंजुलसुधी हो वंचक व्याल-सा।
या हो सूर्य:समान तेज जग के आलोककारी शुभ,
हे ! हे! ईश्वरसर्वतुल्यवतही, सर्वगता है कहां ॥१७॥

प्रभो ! जगत्पते ! शङ्कर भोले! प्रसन्न हो जाओ देव ! ध्यान करता है तभी एक चूहा शिव लिङ्ग पर चढ़े- प्रसाद अक्षतों को खाने लग जाता है। (भक्षण की कुट कुट की सुन कर आश्चर्य पूर्वक देखकर) हाय रे ! यह क्या ? जड़ जङ्गम के स्वामी महादेव जी के ऊपर ये चूहे की लातें ?

मूलशंकर.–(सर्वतो विलोक्य)

अहो ! किमिद, सर्वेऽपि निद्राविघूर्णितनयना:, सत्य शिवसामीप्यमुपागता:, ननु तातेन प्रतिपादित तावत् भविता भवसन्निधि. तत्कथ स्वयमपि निद्राति ? अहो, एष पूजकोऽपि कुक्षिभरि: मोदकसोदरोदर: प्रसार्य हस्तपाद प्रसरति । भीषण तम:, एते प्रदीपा अपि नि:स्नेहा पूजकनासामुखश्वासानिलप्रेरिता: कम्पन्ते. कथ पथिकेनापि निद्रावशभूय प्राप्तम् ? ननु कथमीदृशी भक्ति: श्रेय: साधयति ? अहो, एतत् किं ? केन खटखटाय्यते ? अहो, मूषकसमूह: किमेष पूजकस्योदरकुहरे पतित्वा निजमाहारान्वेषण कुरुते, निद्रां (नाटयन्) अहो एषा मामपि बाधते निद्रा, किं करोमि शयनम् ? न हि उपवासभङ्गः स्यात् [शिवलिङ्ग पश्यति] भगवन् । चन्द्रशेखर ! देहि दर्शनम्, विधेहि करुणाम् ! वितर सायुज्य ! प्रसीद परमेशान ! पाहि प्रभो ! मा शिशु मा निजकरुणया वञ्चित कुरुष्व,

बालो वा यदि वा युवा गुरुतर: पूज्योऽथवा सज्जनो
वर्षीयानपि मुग्धमञ्जुलमतिर्वामायया वञ्चक: ।
किंवा पङ्कजबान्धवस्य भुवनाभासाय भानोरिव,
वं ते जगदीश ! तुल्यमथवा सर्वेशता ते कुत: ॥६॥

प्रभो ! जगत्पते ! शङ्कर ! प्रसीद, [इति ध्यानं करोति, तत: कश्चिन्मूषक: शिवलिङ्गोपरिस्थितान् तण्डुलान् खादति, तस्य ध्वनि श्रुत्वा साश्चर्यं दृष्ट्वा] हन्त, भो ! एतत्, किं ? चराचररक्षणक्षमस्य शिवस्योपरि मूषकपादाहति: ?

क्यों, जो सबकी रक्षा करता है सबको विनष्ट करता है, क्या वह स्वपद की रक्षा भी नही कर सकता ? यह क्या बात है ? क्या रहस्य है ? पिताजी ! पिताजी ! देखिये-देखिये न ! यह क्या ? कोई भी तो नही उठता । यह चूहा भी बार-बार शिव-पिण्ड पर चढ़ा उतरी कर रहा है ! ना भी तो नही करता है शिव शङ्कर ! यह महादेव बाबा तो स्वयं की रक्षा भी नही कर सकते तो दर्शन देकर हमारी रक्षा कैसे करेंगे ? इस बात पर विश्वास नही जमता ! लगता है पिताजी ने मुझे बहका दिया है; यह कैसा भगवान् है ? यह ससार रक्षक शिव-त्रिशूल पाणि नही हो सकता ! यह सम्पूर्ण पापो को कैसे दूर कर सकते हैं; नही यह परमात्मा नही हो सकता, यह तो भ्रम है, भ्रांति है ।

[सोचने लगता है]

हां, हां, समझ मे आ गयी बात ! यह रहस्य सुलझ गया । यह शिव शकर परमेश्वर नही है; किन्तु दर्शन-हीनों की भ्रांति है । जो भगवान् चराचर विश्व का सर्जक है, पालक, नाशक है, जीवात्माओ को सुख-दुःख मय फल देता है, जो किसी के वश मे नही आता, बन्धन हीन है, असीम है; जिसके आलोक से समस्त जग का कण-कण चमकता है, जो घट घट वासी जर-जर्रे में समाया है, सबका स्वामी है, वह इस पाषाण प्रतिमा मे कहाँ बंधता है? वह तो स्थावर जगम का सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नियामक है :—

'ऐसा ईश्वर रक्षणाक्षम करे रक्षा हमारी कहाँ ?
श्रद्धा क्यो करते मनुष्य इस पे ? वेदोक्तपन्था नहीं ।
ओम् ही व्यापक सर्वथा; जनु नही लेता कही भी कभी,
आद्यन्तायुतदेव मूर्ति रहित क्यो पूजता है जगत्' ? ।।१८।।

किं यः सर्वं पाति, नाशयति स स्वमपि न रक्षति ? किमिदं तत्त्वम् ? तात, तात ! पश्य, पश्य ! किमिदं ? कोऽपि न जागर्ति ? अहो ! एषोऽपि पुनः पुनरारोहति शिवस्योपरि मूषकः ! न किमपि भणति शिवः ? किमेष एव स्वरक्षणाक्षमः प्रकटीभूय दर्शनं दत्वाऽस्मान् पास्यति ? न श्रद्धेयमिदं न श्रद्धेयम् ! आः वञ्चितोऽस्मि सर्वथा तातेन नायं जगदेकबान्धवः शिवः, नायं सकलदुरितनिराकरणपरायणः परमात्मा, व्यामोहः खल्वेष ।

[इति ध्यानं नाटयति]

हन्त, अवगतं तत्त्वम् । प्रतीतं रहस्यम् । नास्ति सर्वथाऽयं परमात्मा, किन्तु मूढमनसां व्यामोहविजृम्भणम् । यः स्वशक्त्या जगदुत्पादयति पालयति, नाशयति, सर्वदाऽनुग्रहनिग्रहे निवेशयति जनान्, न यं कोऽपि वशीकर्तुं शक्तः, यस्य भासा विभाति जगदखिलं, यः सर्वव्यापकः परमेश्वरः, सर्वेश्वरः–हन्त नायं पाषाणपिण्डाकृतिः स चैतन्यसिन्धुश्चराचरबन्धुः—

अस्मान्पास्यति रक्षणाक्षम इति श्रद्धेयमित्थं कथं
वेदेऽचक्षुरपाणिरप्रतिकृतिर्मिथ्यैव किं गीयते ? ।
आश्चैतन्यमहोदधिः स भगवानन्यः स्वयंभूः प्रभुः
पाषाणे प्रभुरस्ति हन्त जगतां व्यामोहकोज्जृम्भणम् ॥७॥

मैंने अब पूर्ण निश्चय कर लिया है, वही, भगवान् संसार संरक्षण मे समर्थ है। यह पाषाणमय देव नही। देख ली इसकी पूजा करके ! उसी चिरन्तन सनातन अकाय सर्वव्यापी विभु की खोज करूंगा। (पिता से) पिता जी ! पिताजी ! उठिये, देख लीजिये अपने भगवान् शिवशंकर का अपमान और पराभव !

[करसन जी उठते हैं]

करसनजी—(आंखें मीचते हुए) क्या है ? क्यों डर रहा है ? मैं हूं न तेरे पास मे !

मूलशंकर—(मुस्कुरा कर) पिता जी ! मैं भयभीत थोडे ही हूं। मेरा भय तो चला गया है पर अपने भोले बाबा को तो बचा लो डर से !

करसनजी—(जागकर) क्या बात है बेटे ! तुझे डर लग रहा है ?

मूलशंकर—पिताजी ! मैं थोडे डर रहा हूं, डर तो शिवजी को लग रहा है ! आप ही देखिये न, यह चूहा शिवजीकी पिण्डी पर लातें मार रहा है और शिवजी पादप्रहार सह रहे हैं कुछ बोलते भी तो नही है ! और क्या यही शिव दूसरो की रक्षा करते है जिससे स्वय की रक्षा नहीं होती ?

करसनजी—बेटा ! पागल हो गया है तू, तभी तो ऐसी ऊट-पटाग बातें कह रहा है। यह तो चूहो का स्वभाव हो गया

कृतो मया निश्चयः, स एव भगवान् भवरक्षणक्षमः, कृतमस्य पूजया, तमेव गवेषयिष्यामि (तात प्रति) तात तात ! उत्थीयताम्, पश्यन्तु भवतां भगवतः पराभव शिवापमानम् !

[पिता उत्तिष्ठति]

पिता —[नेत्रे प्रमृज्य] किमस्ति ? मा भयं कुरु, मा भयं कुरु अहमस्मि तव समीपे ।

मूलशंकरः –(हास्य विधाय) तात ! न भीतोऽस्मि । गतं मे भयं, किन्तु भयात्त्रायस्व शिव, शिवम् ।

पिता—(बोधं प्राप्य) किं भणसि वत्स ? त्वां भय बाधते ?

मूलशंकर.—तात ! न मां; शिवमेव, पश्यन्तु भवन्तः, एष मूषकः शिवस्य शिरसि पादप्रहार करोति, न किमपि तथापि भणति शिवः, किमयमेव रक्षति सर्वं स्वरक्षाव्याकुलः ?

पिता—वत्स ! मुग्धोऽसि, प्रलपसि कथम् ?

एष मूषकस्य स्वभावः, यः सर्वदा मूषकः शिवस्य शिरसि तण्डुलान् भक्षयति, तत किं प्रलपसि ?

मूलशंकर :—किं सर्वदा, तथापि नैष निवारयति ?

पिता—वत्स ! एषा जडा प्रकृतिप्रतिमा न किमपि करोति, तदलं विचारितेन विकल्पेन ।

है, जो चूहे शिवलिङ्ग पर सवार होकर प्रसाद भक्षण करते हैं, उन्हें कैसे हटायेंगे शिव शंकर? छोड़ दे ऐसी व्यर्थ की बातें।

मूलशकर—पिताजी! क्या सदा ऐसा ही होता है, और भोले बाबा कुछ भी नही कहते हैं इन्हे?

करसनजी—पुत्र! यह जड़ पाषाण प्रतिमा कुछ थोड़े ही करती है। इसलिए व्यर्थ का सोच मत कर!

मूलशकर—पूजनीय! इस समय तो मेरा मन संकल्प विकल्प मयी बुद्धि का शिकार हो चुका है। आप सुनते हैं न, यह सर्वव्यापक परमात्मा नही है; हमे ठगा जा रहा है। यह स्वय की तो रक्षा नही कर सकता। परमेश्वर तो कोई और ही है, उसी की उपासना करनी चाहिये; यह सद्विचार इस मूर्ति मय शिव की दुर्दशा से उत्पन्न हो रहा है मुझ मे।

करसनजी—नही नही पुत्र! हम कोई इसी प्रतिमा की पूजा थोड़े ही करते हैं? हम तो भवानी पति, कामदेव भस्मकारी, त्रिपुरासुरनाशी, पिनाक परिशोभी, कैलासवासी शंकर

मूलशङ्करः—पूज्य ! साम्प्रतं मानस मम विकल्पनाकलतिशेमुषीम् । आकर्णन्तु भवन्तः । नायं भगवान् परमेश्वरः, सर्वथा वयं वञ्चिताः, यः स्वमपि न रक्षति । अस्ति कोऽपि परः परमात्मा स एव सेव्यः । कृतं पाषाणपिण्डमदनेन ।

पिता—ननु प्रिय वत्स ! नास्माभिरियमेव प्रतिमा सेव्यते, किन्तु भवानीरमणः स्मरदहनकरः त्रिपुरासुरविमर्दनपिनाकपरिशोभमानः कैलासवासी शङ्करः सेव्यते । यः श्रूयते पुराणेषु जेता यमस्य; नेता भुवनस्य; विनेता रक्षसाम्; प्रणेता श्रेयसाम्; भर्ता भवस्य; कर्ता जगताम्; हर्ता दुरितानाम् स एव सेव्यते वत्स !

मूलशङ्करः—पूज्यतात ! ततः कथं न स आविर्भवति गृहीत्वा भयकरं त्रिशूलम् ?

पिता—ननु आविर्भवति भगवान् भक्त्या ।

मूलशङ्करः—(विहस्य) एवं, यथा युष्माभिः कृता भक्तिरद्य ?

पिताः—[लज्जामभिनीय] वत्स ! दुर्लभो महिमा भवस्य; न जानाति कोऽपि तस्य माहात्म्यम्, इति श्रुत्वा जनैरुपास्यते पाषाणखण्डे प्रभुः मा विकल्पं विधेहि ।

मूलशङ्करः—तात ! किमिद तत्त्वं नावधारयामि ?

[इति विचिन्तयति]

पिता—[स्वगतम्] किमिदं शृणोमि ? अहो, एतादृशो वाक्यं पुरा न निःसृत वत्सस्य मुखात् । वचोऽपि विशदं सर्वथा सत्यमिव प्रतिभाति ।

की पूजा करते हैं। पुराणों में जिस देवाधिदेव को यम विजेता के रूप में, चराचर के अधिपति के रूप मे, राक्षसो के विजयी श्रेयस के सर्जक, भव के स्वामी, लोक-लोकान्तरो के विधाता, दुःख दुरितों के विनाशक शिवशकर की ही तो पूजा की जाती है बेटे !

मूलशंकर—तो पिता जी ! वह त्रिशूलधारी महादेव प्रकट क्यो नही हो जाता ?

करसनजी—भक्ति भाव से प्रकट हुआ करता है वह शिव कैलास पति।

मूलशंकर—(हंसता हुआ) ऐसी ही भक्ति से जैसी आपने की थी अभी ?

करसनजी—(लजा करके) वत्स ! उस भवानी पति की महिमा असीम है; कौन जान पाया है इसकी माया को। तभी तो कोटि कोटिजन रहस्यमय देव की पाषाण मूर्ति के रूप में पूजा किया करते है। इसमें विकल्प करना पाप है पाप !

मूलशंकर—पिताजी ! मेरी बुद्धि मे तो कुछ नही आ रहा है।

[विचार करने लग जाता है]

करसनजी—(मन मे विचारता हुआ) मैं यह क्या सुन रहा हू ? ऐसी बात आज तक पुत्र के मुख से कभी नही निकली थी। और बात भी स्पष्ट और सत्य लग रही है।

मूलशङ्करः—[तातं प्रति] पूज्य ! किमस्यैव पाषाणस्य विहितं पूजने प्रसीदति परेशः, नान्यस्य ?

पिता:—अथ किम् ? एतल्लिङ्ग माहात्म्यमाविर्भावयति भगवतः, पुनरपि कथं शङ्काकुलः ?

मूलशङ्करः—आर्य ! न मे मानसशुद्धिः, न केवलं महिमानं द्योतयति पिष्टपाषाणखण्डः- शृण्वन्तु भवन्तः—

> "सूर्याचन्द्रमसाविमौ भगवतो विश्वम्भरा भारती
> स्वःपीयूषकराणि कालकलनज्योतींषि दिङ्मण्डलम् ।
> शैलाः किञ्च निकुञ्जपुञ्जमधुरा नद्यस्तथा केतवः,
> सर्वं न प्रथयत्यहो भगवतो माहात्म्यमीशस्य किम् ?॥८॥

पिता:-बाल ! सत्यं, तथापि न जानासि शास्त्ररहस्यं खलु खलरवं शिवविडम्बना । (स्वगतं) अहो ! नूतनं तेजः, अस्य नयनयोः शैशवादज्ञातशास्त्ररहस्योऽपि विमलां प्रतिभां विस्तारयति । (प्रकाशं) वत्स ! सत्यमिदं तथापि लोककथेयं यद् भगवान् पाषाणप्रतिमापूजनेन प्रसीदति ।

मूलशंकरः-भवन्तोऽपि तथा कुर्वन्ति ? न मेऽन्तरात्मा प्रसीदति । यतः—

मूलशंकर—[पिता से] पिताजी ! क्या इसी शिलाखण्ड के पूजन से प्रसन्न होते हैं शिव भगवान्, दूसरे के नही ?

करसनजी—और क्या ? यही शिव लिङ्ग तो भगवान् शिव के गौरव को प्रकट करता है, तुम्हे फिर भी शका ने आ घेरा ?

मूलशकर—पूजनीय ! मेरे मन मे इससे शाति नही हो रही है। क्या इतना विराट् जगत् भगवान् के गौरव को नही बताता—जो यह छोटा सा शिलाखण्ड बता रहा है ?

सुनिये तो—

"सूर्य चन्द्रमा और धरा यह अन्नफलो फूलो वाली,
निज अमृतकी किरणोसे भी प्रभुकी कीर्ति सुनाने वाली।
ये असख्य ग्रहउपग्रह सारे ज्योतिर्मयदिग्भागविशाल,
हिममण्डित पर्वत की चोटी वनउपवन सरितासरताल।
उत्तालतरङ्गो से उद्वेलितसागर, मरुभूमि, मरुबाग,
है सशक्त परमेश्वर की महिमा-भाव गुंजानेराग" ॥८॥

करसनजी—पुत्र ! बात तो ठीक है यह पर, तुझे पता नही है कि शिव-निन्दा कितनी अशास्त्रीय है और पाप हेतु है ? [मन मे] ओहो ! इस बच्चे की आँखो मे तो नवीन तीव्र तेज झांक रहा है। भले ही यह शैशव काल मे है और शास्त्रीय रहस्यो से अपरिचित है। [प्रकाश मे] वत्स ! तेरी बात बुद्धि मे तो आ रही है, किन्तु लोक वार्ता यही है कि भगवान् शिव मूर्ति पूजा से भक्तो पर प्रसन्न होते हैं।

मूलशंकर—आप ऐसा करे, किन्तु मेरा अन्तरात्मा तो इससे प्रसन्न नही होता। क्योकि :—

मूलशङ्करः—[तातं प्रति] पूज्य ! किमस्यैस्य पाषाणस्य विहितं पूजने प्रसीदति परेशः, नान्यस्य ?

पिताः—अथ किम् ? एतल्लिङ्ग माहात्म्यमाविर्भावयति भगवतः, पुनरपि कथं शङ्काकुलः ?

मूलशङ्करः—आर्य ! न मे मानसशुद्धिः, न केवलं महिमानं द्योतयति पिष्टपाषाणखण्डः– शृण्वन्तु भवन्तः—

"सूर्याचन्द्रमसाविमौ भगवतौ विश्वम्भरा भारती
स्वःपीयूषकराणि कालकलनज्योतींषि दिङ्मण्डलम् ।
शैलाः किञ्च निकुञ्जपुञ्जमधुरा नद्यस्तथा केतवः,
सर्वं न प्रथयन्त्यहो भगवतो माहात्म्यमीशस्य किम् ?।८॥

पिताः–बाल ! सत्यं, तथापि न जानासि शास्त्ररहस्यं खलु खलत्वं शिवविडम्बना । (स्वगतं) अहो ! नूतनं तेजः, अस्य नयनयोः शैशवादज्ञातशास्त्ररहस्योऽपि विमलां प्रतिभां विस्तारयति । (प्रकाशं) वत्स ! सत्यमिदं तथापि लोककथेयं यद् भगवान् पाषाणप्रतिमापूजनेन प्रसीदति ।

मूलशंकरः–भवन्तोऽपि तथा कुर्वन्ति ? न मेऽन्तरात्मा प्रसीदति । यतः—

मूलशंकर—[पिता से] पिताजी ! क्या इसी शिलाखण्ड के पूजन से प्रसन्न होते हैं शिव भगवान्, दूसरे के नहीं ?

करसनजी—और क्या ? यही शिव लिङ्ग तो भगवान् शिव के गौरव को प्रकट करता है, तुम्हें फिर भी शंका ने आ घेरा ?

मूलशंकर—पूजनीय ! मेरे मन में इससे शांति नहीं हो रही है। क्या इतना विराट् जगत् भगवान् के गौरव को नहीं बताता—जो यह छोटा सा शिलाखण्ड बता रहा है ?

सुनिये तो—

"सूर्य चन्द्रमा और धरा यह अन्नफलों फूलों वाली,
निज अमृतकी किरणोंसे भी प्रभुकी कीर्ति सुनाने वाली।
ये असख्य ग्रहउपग्रह सारे ज्योतिर्मयदिग्भागविशाल,
हिममण्डित पर्वत की चोटी वनउपवन सरितासरताल।
उत्तालतरङ्गों से उद्वेलितसागर, मरुभूमि, मरुबाग,
हैं सशक्त परमेश्वर की महिमा-भाव गुंजानेराग" ॥८॥

करसनजी—पुत्र ! बात तो ठीक है यह पर, तुझे पता नहीं है कि शिव-निन्दा कितनी अशास्त्रीय है और पाप हेतु है ? [मन में] ओहो ! इस बच्चे की आँखों में तो नवीन तीव्र तेज झांक रहा है। भले ही यह शैशव काल में है और शास्त्रीय रहस्यों से अपरिचित है। [प्रकाश में] वत्स ! तेरी बात बुद्धि मे तो आ रही है, किन्तु लोक वार्ता यही है कि भगवान् शिव मूर्ति पूजा से भक्तों पर प्रसन्न होते हैं।

मूलशंकर—आप ऐसा करें, किन्तु मेरा अन्तरात्मा तो इससे प्रसन्न नहीं होता। क्योंकि :—

"केय लोककथा यथागमपथप्रासाय पापप्रथा-
न्यासाय श्रितसत्यदैवतपरीहासाय सजृम्भते ।
या वेदाशयवेद्यमद्भुतगुण तत्त्व पर वैभव
नि शङ्क ग्रसते घनाघनघटा बिम्ब सुधाशोर्यथा ॥९॥

तात –[सक्रोध] वाचाल ! न शृणोषि किमपि ? प्रलाप करोषि? न जानासि मूढ तत्त्वम् ।

(इति ताडयितु त्वरते, तदा स पथिक कोलाहल श्रुत्वा सहसा आगच्छति)

पथिक –अहो ! कथ जायते कोलाहल ? [विलोक्य] हन्त ! मूलशङ्कर तातेन सह विवदते । हन्त ! किमेतत् ताडयति त तात: कथम् ? [गत्वा] मषय ! भगवन् ! कोऽस्य प्रमाद: शिशो ?

तात –[विलोक्य] ननु, महाभाग ! एष मूढ: कथयति, न प्रभु: शिव शकर: प्रतिमायाम् !

पथिक –आर्य ! बाल एष यथास्थित वदति तत्कोऽस्य विधि ? [मूलशङ्कर प्रति] ब्रह्मचारिन् ! क एष विवाद: ?

मूलशकर –[पथिक] महोदय ! नास्ति विवाद. किन्तु तातात् जानामि सत्यस्य शिवस्य स्वरूपम् !

पथिक –[स्वगत] अहो ! ताडघमानोऽपि बाल नैसर्गिकी स्वभावशुद्धि न जहाति, सर्वथा महापुरुषोचित कर्म शैशवेऽपि ।

तात –[मूलश कर प्रति] किं निश्चित त्वया ?

मूलशकर –आर्य, तात ! तदेव, अन्य: परमात्मा इति ।

•ऐसी लोककथा अमान्य जग मे वेदोक्त जो भी न हो,
पाप प्ररक पुण्य नाश निरता, सत्याथ शीला न हो,
वेदाथ प्रतिपादनाक्षम मति भ्रातिकरी त्याज्य है
चन्द्रकारपयोदछाद्यभगवन् ! वेदोक्तियाँ मान्य हैं ॥९॥

करसनजो.—[क्रोध से] वाचाल ! तू कुछ नही सुनता, व्यथ मे प्रलाप करता जाता है ! मूख ! शास्त्र रहस्य क्या जानता है तू ?

[मारना चाहता है कि तभी कोलाहल सुनकर पथिक आ जाता है]

पथिकः—यह होहल्ला क्यो हो रहा है ? [देखकर] हायरे ! मूलशकर का पिता के साथ झगडा हो रहा है। अरे ! पिता तो इसे मारने भी लगा। क्या बात होगी ! [पास मे जाकर] - महाराज ! क्षमा कीजिये न ! क्या गलती हो गयी है इससे।

करसनजोः—[देखकर] अजी महोदय ! यह मूख कह रहा है कि भगवान् शिव केवल इस पाषाण मूर्ति मे नही हैं।

पथिकः—भगवन् यह तो ठीक ही कह रहा है। पर यह भी क्या ढग है आपका ? [मूलशकर से] ब्रह्मचारिन्। क्या विवाद है यह ?

मूलशकरः—[पथिक से] कोई विवाद नही है महाराज। मैं तो पिताजी से शिव का वास्तविक रूप जानना चाहता हू।

पथिक —[मन मे] देखो न, पिटने पर भी यह बालक अपनी स्वाभाविक सूझबूझ को नही छोड पाया। बचपन मे भी इसमे महापुरुषो के समान लक्षण दीख रहे हैं।

करसनजो—[मूलशंकर से] बोल, क्या सोचा है तूने !

मूलशकर—पूजनीय पिता श्री ! यही कि मूर्ति से भिन्न ही परमात्मा है !!

तात.—आः अद्यापि न जहासि दुराग्रहम्? पुराणगीतः स शिवः स्पर्ध्यते त्वया, मूढ ! शृणु—

"शुद्धे जगत्साक्षिणि देवदेवे
संविन्मनोऽगम्यनिसर्गतत्त्वे।
केषा प्रमाण विमते परस्मिन्—
स्वभावभूयानवबोधमास्ते ॥१०॥

पथिकः—ननु, उन्मदायितमनेन। सर्वथा क्रोधेन परित्यक्तं सामञ्जस्यम् [प्रकाश] महाराज, भूदेव ! किमेव प्रतिपाद्यते भवता ?

'देवे जगत्कर्मकलापसूत्रे
विशिष्य सशास्तितरि प्रसिद्धे।
अशेषमाङ्गल्यमहर्षिगीता
श्रुतिः प्रमाण परमेकमास्ते ॥११॥

अथवा श्रुतिप्रमाणमन्तरेण क्वावकाशः पुराणस्य ? [मूलशङ्कर प्रति] बाल ! त्वमपि निजाग्रह विहाय स्वस्थीभूयाः।

मूलशङ्करः—महाभाग ! नास्ति दुराग्रहः किन्तु सत्य ब्रवीमि। यतः—।

तातः—मूढ ! पुनरपि वाचालतां वहसि ? गच्छ गृह, मा कलुषीकुरु मन्दिरमेतद्भवस्य।

"गुरोरनुज्ञाऽनवधानमंहः
प्रधानानिन्दाश्रवण पुरारेः।
दुरात्मनां संगतिरात्मवादः
सतां हि चेतः कलुषीकरोति ॥१२॥

पथिक.—महाराज ! क्षमा विधीयताम्, एवं प्रभातप्राया विभावरी। पश्य—

करसनजी—अभी तक भी तू दुराग्रह नहीं छोड़ता ! क्यों रे मूढ़ ! तू पुराण पूजित शिव भगवान् से स्पर्धा कर रहा है ? सुन—

'सभी विश्व है साक्ष्य परमात्माका,
वही शुद्ध है मात्र, ससार कर्ता।
स्वय सिद्ध भगवान् की मूर्ति सारी,
प्रकृति है, शिला भी उसी की कहानी ॥१०॥

पथिक—[मन मे] ओहो ! इनके मन में तो पागलपन छा गया है क्रोध के कारण। [प्रकाश मे] महाशय ! भूमिदेव ! आप किस तत्व का प्रतिपादन करना चाहते हैं ?

"समस्त ससार सदा सजाता,
वही बनाता वही मिटाता।
अमूर्त है वेद विधान सिद्ध,
शिला न परमेश्वर है प्रसिद्ध"॥११॥

और श्रीमान् ! वेदों के सामने पुराण का महत्व क्या है ? [मूलशकर से] 'वत्स ! तुझे भी तो आग्रह छोड़कर स्वस्थ रहना चाहिये।'

मूलशंकर—'महाशय ! मैं आग्रह का वशीभूत नहीं हूं, मैं तो यथार्थ कह रहा हूँ।

करसनजी—अच्छा, मूर्ख ! अब भी बकवास किये जा रहा है। चला जा सीधे घर को। इस शिव मन्दिर को अशान्त और अपवित्र मत बना। क्योंकि—

'आज्ञोल्लघन तो गुरुओं के करने से,
निन्दा ईश्वर रूप शम्भुशिव की सुनने से।
दुर्जन सगति, आत्मगान से, गुरु निन्दा से,
चित्त सज्जनों के कलुषित हों, अघसेवन से' ॥१२॥

पथिक—भगवन् क्षमा कीजिये, प्रात.काल होने लगा है अब ! देखिये न—

मूते प्रभातेऽथ निसर्गशुद्धे
तमिस्रलेखा न जहाति वृत्तिम् ।
जाते प्रबोधे विशदे विकार
सीमेव नैसर्गङ्कुराग्रहस्य ॥१३॥

मूलशङ्कर :– [स्वगत] कथमाक्षेपपरं वचः ?

तातः—एवं, साम्प्रतं पूजावसरः मूलशङ्कर ! गच्छ गृहं, अथवा तिष्ठ, समं गमिष्यामः उत्थापय सर्वान् पूजां निर्वर्तयामः ।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति यथाविध पूजां कुर्वन्ति)

(एकान्ते पथिकेन सह मूलशंकरस्य विवादः)

मूलशंकरः—महाभाग ! अस्मिन् दिनेऽपि भवता स्थातव्यम् ।

पथिकः—वत्स ! नहि, अहं गमिष्यामि, पुनरपि भगवत्प्रसादेन भविष्यति संगतिः, किन्तु अह तव प्रतिभां स्वभावशुद्धि विलोक्य सतुष्टोऽस्मि । अह सिद्धपुरे वसामि, यदि विद्याध्ययनार्थं भवेदागमनं, तदा पवित्राकरणीयं मे गृहम् । तत्र सिद्धपुरे भविष्यति भवतो मनोरथसिद्धिः ! किं कथयामि ब्रह्मचारिन् ! भवेद् भाग्य भारतस्य तदा, ज्योतिर्भगवत आविर्भवेत् । अतीव समुत्कण्ठितं चेतः—शृणु भूतार्थम्

"पाषाणी प्रतिमा प्रयास्यति लयं, संविन्मयी भास्यति
भस्मस्मेरललाटपुङ्कपदे ज्योतिस्त्रयी स्यास्यति ।
मालाकाष्ठमयी गमिष्यति क्षयं, कण्ठे च वेदध्वनिः
चित्ते ते भगवाननुदेष्यति विभुः सौभाग्यभाग्योदयः ॥१४॥

नमस्ते ब्रह्मचारिन् । गच्छामि, दूरे गन्तव्यं मया, नमस्ते ।

स्वाभाविकाग्रह समान निसर्ग शुद्ध,
पुण्य प्रभात घननाशन में अबद्ध।
सजात बोध फिर भी अविनष्ट ध्वान्त,
सर्वत्र मोदमुद कारक भी अशान्त ॥१३॥

मूलशंकर—[मन में] कितना आक्षेप है इस वचन में ?

करसनजी—अच्छा ! मूलशकर ! यह पूजावेला आ गयी है। घर चला जा, या फिर साथ में चलेंगे। जगादे सबको, पूजा समाप्त कर लेवें।

(सब जगते हैं और विधि पूर्वक पूजा करते हैं।)

(एकान्त मे मूलशकर और पथिक का विवाद)

मूलशंकर—महाभाग ! आज के दिन आप और ठहर जाइये।

पथिक—[मन में] पुत्र ! नही नही, मैं नही ठहर सकता, प्रभु की कृपा से फिर साक्षात्कार होगा। परन्तु मैं तुम्हारी प्रतिभा एवं स्वभाव शुचिता देखकर बहुत प्रसन्न हूँ। यदि विद्याध्ययन के लिए सिद्धपुर आओ तो मेरी कुटिया को भी अपने चरण रज से पवित्र करना। सिद्धपुर में तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि होगी। ब्रह्मचारिन् ! यदि भारत के भाग्य अच्छे होंगे तो तुम जैसे ईश्वरीय आलोक का आविर्भाव अवश्य होगा, मेरा मन बड़ा ही समुत्कण्ठित हो रहा है। सुन तो सही—

"पाषाण पूजन विनाश, प्रकाश होगा,
विज्ञान ज्ञान रवि का नितरां महात्मन्।
भस्मत्रिपुण्ड मिट के सुतरां ललाट
ज्योति त्रयीमय विराज उठे विराट।
रुद्राक्षमाल शतधाहत, वेद शास्त्र,
पाये प्रचार विभु के सुअशीष मित्र ॥१४॥

पथिक की आवाज भर्रायी थी वह हाथ जोड़े सिर नवाये

[इति निष्क्रान्त.]

[सव पूजा कुवन्ति]

मूलशङ्कर — भवतु कुवन्तु सर्वे पाषाणपूजाम् । कीदृशो मनिमतामपि मोहः ! जानन्तोऽपि रहस्य, न त्यजन्ति स्वाभिमत लोकाचारम । हन्त ! सवत्र अव्यवस्था । खलु कः श्रद्धास्यति भूतार्थम् ? अस्तु । गतः पथिकमहाशयः । अहो ! सिद्धपुरमिति नाम हृदयानन्द वितरति, अपि नाम भाग्य फलिष्यति । (विलोक्य) अहो ! घण्टारव कर्णशूल करोति हन्त—

"दाता लोकसृजननियमे कर्मणां य फलानां
पारे वाचां निखिलजगतामप्रमेयस्वरूप ।
सोऽय देवस्त्रिभुवनगुरुर्ज्ञानगम्य परेशो
मूढैर्न्यस्त सकलनिलय पिण्डपाषाणखण्डे ॥१५॥

आ सिद्धपुरम् ! किं नाम भविष्यति गमनम् ? (विचिन्त्य) अहो ! को मा प्रेरयति मनोरथाय ? अहो ! सिद्ध न समीहितम्—

"कामं हि मे कुप्यतु पूज्यतात
तिरस्करोतु क्षणमात्र माता ।
विगर्हिता वाचमुपैतु लोकः
सत्याच्चलिष्यामि पथ पर न" ॥१६॥

(इति सर्वैः साकं निर्गच्छति)

इति शिवरात्र्युत्सवो नाम

प्रथमोऽङ्कः समाप्त ।

ब्रह्मचारी को नमस्ते करता हुआ दूर चला गया और आँखों से ओझल हो गया। [सब पूजा करने लगते हैं]

मूलशंकर—अच्छा, भले ही ये सब पाषाण पूजा करें। हाय रे! विद्वानों को भी कितना मोह है इस पूजा का? रहस्य एवं सत्य जानते हुये भी तो कहाँ छोड़ते हैं परम्परागत अभीष्ट लोकाचार को! ओहो! सर्वत्र अव्यवस्था हो रही है, कौन श्रद्धा करायेगा सत्यार्थ पर? अब कोई बात नहीं, वह पथिक महाशय तो चला गया है। यह सिद्धपुर नाम से मन मेरा आनन्द से भर-भर जाता है, लगता है कि भाग्य से यह नाम फलवान् होगा। (देखकर) यह घण्टा घड़ियाल का सम्मिलित शब्द कानों के पर्दे फाड़े डालता है। हाय रे—

"जो ईश विश्व रचना नियमानुकूल,
कर्ता अवामघफल-प्रसम-प्रदाता।
वाणी अगम्य असमान भवार्थता से,
वोही महाभुगुरु-गम्य सुबोधिता से।
ऐसा अलौकिक विभु प्रतिमा-निबद्ध,
धृत्यादि रुद्ध लघु बुद्धि जवा विरुद्ध।
ओहो! सिद्धपुर! कब देखूँगा तुझे" ॥१५॥

(सोचकर) हैं, कौन दे रहा है मुझे प्रेरणा मनोरथ पूर्ति के लिए? लग रहा है कि मेरी मनोरथ सिद्धि होकर रहेगी।

मेरे पिता कुपित हों तब भी न चिन्ता,
माता अनादर करे फिर भी न चिन्ता।
लोकोक्तियाँ फलवती मम गर्हणा से,
हूँगा न सत्य पथ से चलितान्तरात्मा ॥१६॥

(इस प्रकार कहकर सबके साथ मन्दिर से बाहर चला जाता है)

इति शिवरात्रि उत्सव नामक
प्रथम अंक समाप्त

॥ ओ३म् ॥

द्वितीयोऽङ्कः

तमसो मा ज्योतिर्गमय

[स्थानं सिद्धपुरम्, प्रभातसमयः, गुणेन्दुः विद्यार्थिनश्च]

गुणेन्दुः—(प्रविश्य) हन्त भोः फलिताः मे मनोरथसिद्धिः, यद्यपि दुःखाकरं विदेशाश्रयणं, तथापि निर्यन्त्रणं स्वातन्त्र्यं महती प्रीतिं पुष्णाति, विशेषतः सरस्वतीसमाराधनं न विदेशव्यासङ्गमन्तरेण सदनैकलालितस्य कूपकूर्मकल्पस्य सजाघटीति। मया हि नाम समागत्य स्थानेस्मिन् किं किं नानुभूतं, किं किं नो दृष्टमदृष्टचरम्, इदमपि पुनराश्चर्यं यन्मदीयं बालचाञ्चल्यमपि प्रयातमिव मन्ये महानुभावसंसर्गात्–अहो! विदेशाश्रयेण गरीयसी गुणपरिपाटी प्रादुर्भवति—

"स्वातन्त्र्यं परिवर्धते सहधिया स्वच्छदसंचारतो
वैशद्यं मतिरेति विश्वकलनाव्यापारसंमिश्रिता।
औद्धत्यं व्रजतीव निःस्पृहतया सारः स्वरः स्वप्रोगाश्रयः
सारासारविवेचनाचतुरिमा सर्वाङ्गमालिङ्गति ॥१॥

॥ श्रीः ॥

द्वितीयोऽङ्कः

यवनिका पतन

समय—प्रभात वेला, स्थान—सिद्धपुर, विद्यार्थियों के साथ में गुणेन्दु)

गुणेन्दु : (प्रवेशकरके) ओहो ! मेरी मनोरथ की सिद्धि तो हो गई है। भले ही विदेशों मे निवास से दुःख मिलता है, तो भी, नियन्त्रित स्वतन्त्रता से बड़ी सुखदायिनी होती है। और विशेषकर तो सरस्वती की आराधना, बिना विदेश में रहे, घर के अशान्त वातावरण मे कहा होती है ? इस स्थान पर आकर मुझे क्या क्या अनुभव नही हुए ? मैंने यहा पर क्या क्या नही देखा ? और तो और, महानुभाव गुरुजनों के सम्पर्क से मेरे बचपन की चञ्चलता भी जाती रही है, निस्सन्देह विदेश से ही मनुष्यों मे गुणों का प्रादुर्भाव होता है—

"स्वातन्त्र्य भाव बढता सह बुद्धियों से,
स्वच्छन्दता विशदता भर वाहिनी हो।
बुद्धि प्रगल्भ बनती भवकार्य मिश्रा,
उद्दण्डता न रहती निज लम्बना धी,
होती समस्त गुण हैं परदेश वासे,
चातुर्य तत्व सब सस्थित हैं इसी में ॥१॥

आदिष्टोऽस्मि मातुलेन वेदविद्यालयं गन्तुम् । अद्य प्रातरेव तत्र गत्वा मुख्याधिकारिण. सांनिधः कर्तव्यः । तत् क्व भविष्यति वेदविद्यालय ? (सर्वतो विलोक्य) 'अहा ! हृदयानन्दसन्दोह-हर्षिणी प्रभातकमनीयता सिद्धपुरस्य !! अहो ! मोदते मानसं मनोमोहिनीमुद्वीक्ष्य वासरसुषमा सरस्वतीतीर्थस्य, ननु पश्यामि किं राममीयकम् । [विचार्य] नेद समुचितम्, पुन: समागत्य नयनगोचरी करिष्यामि समस्तम्(परिक्रम्य) हन्त भोः! अयमेव विद्यालयस्य पन्था:। तथा हि व्रजन्ति यथाऽनेन त्वरितगतयः स्नानशीला: सुरभिचन्दनकलिततिलकक्रिया ब्रह्मचारिणः—

"एते बालकुतूहलैकवशिन. शास्त्रस्पृहामञ्जुला
हस्तन्यस्तविभक्तपुस्तकचया. श्रीशारदासेविन. ।
ओंकारं रसना, मन.परतरं ज्योतिर्वपु शीलतां
येषामाश्रयते निसर्गमधुरं पुण्यार्जवं शेमुषी" ॥२॥

अहो ! अमीषा विद्याव्यासङ्ग —

"अमी विशुद्धाशयमावहन्त.
स्वप्नेऽपि सत्यागममालपन्त ।
जानन्ति तत्त्वं न परं कदाचित्
सरस्वतीसेवनमन्तरेण ॥३॥

भवतु, आह्वयामि छात्रान् । भो भोः! विद्यार्थिनः! समादिशन्तु वेदविद्यालयस्य पन्थानम् ।

(सर्वे प्रविशन्ति)

एक:—किं न पश्यसि ? अयमेव मार्ग. ।

द्वितीयः—अये ब्रह्मबटुरिव लक्ष्यते ।

गुणेन्दु:—सखे ! अहमपि विद्यालयेऽध्येतुं समागतः । तत् क्वास्ति युष्माकं मुख्यसपादक: ?

मामाजी ने मुझे वेद विद्यालय मे पठन के लिए कहा है। अभी प्रात. काल ही मुख्याधिकारी के निकट जाऊँगा। कहाँ पर होगा यह वेदविद्यालय (चारो ओर देखकर) यह सिद्धपुर भी कितना मनोहर हो जाता है पुनीत प्रभात वेला मे ? इस सरस्वती तीर्थ की दिनोदय काल मे बढती हुई मन्जुल सुन्दरता कितनी कमनीय है ? पर देखूंगा तो सही इस स्थान में क्या-क्या सुन्दरता है ? (सोचकर) यह ठीक नही है पुन. आकर देखूंगा इसको। (परिक्रमा करके) यही तो विद्यालय मार्ग तभी तो इसी मार्ग से चले जा रहे हैं ये त्वरित गति धोल लिप्त, सुगन्धित चन्दन मूर्धा स्नान करके लौटने वाले ये ब्रह्मचारी—

'ये बालवृन्द, शिशुखेल निसर्ग बद्ध,
शास्त्र स्पृहालु कर नीत समस्त पाठय।
सारस्वतप्रथित भक्ति गुरु प्रियाढय,
ओंकार पाठन पर प्रकटात्म बोध।
सज्ज्ञान दीप बहुशोभित पुष्ट देही,
बुद्धि प्रगल्भ इनसे परमार्थ वर्ती ॥२॥

ओ हो ! कितना प्रेम है विद्या के लिए इनमें !

'ये छात्र शुद्धाशय पूर्ण चेता,
न स्वप्न मे सत्यविरुद्ध वनता।
न जानते सार हैं ये कदाचित,
सरस्वती सेवन छोड अन्यत् ॥३॥

अच्छा, इन छात्रों से पूछ देखूं। अरे! अरे! विद्यार्थियो! वेदविद्यालय का मार्ग बता दीजिये।

(सब प्रवेश करते हैं)

प्रथम—क्या नही देखते, यही तो है मार्ग !

द्वितीय—यह तो ब्राह्मण पुत्र सा लगता है।

गुणेन्दु—मित्र ! मैं भी विद्यालय मे अध्ययन करने आया हूं। बताइये कहा हैं आपके मुख्याध्यापक ?

एक—अरे ! अपेहि अपेहि पठित त्वया ! न लक्ष्यते ते पुनराकृति रध्ययनस्य ।

गुणेन्दु :—(सक्रोध) अरे मूढ ! कि असम्बद्ध प्रलपसि ? किं जानासि रे ?

द्वितीयः - (दृष्ट्वा स्वगत) अये अमर्पण खल्वेष, अस्ति च प्रचण्डबाहुदण्डस्तद् यदि चपेटाचपेटि करिष्यति तदा न वय एकामपि चपेटा सोढु समर्था । (प्रकाश) ननु महाभाग ! उपहासः खलु, एहि नयामस्त्वा विद्यालयम् ।

गुणेन्दु —(स्वगत) हु. सम्प्रति समीचीनं सत्योऽय जनप्रवादः 'चमत्कारेण नमस्कार'' इति । (प्रकाश) भवतु, एष आगच्छामि । (ततः सर्वे विद्यालय गच्छति)। (तत प्रथम प्रविशति मुख्याधिष्ठाता, पश्चात् छात्राः)

चन्द्रशेखर —मुख्याधिष्ठाता—अहो . चेतस स्वाभिनिवेश नाद्यापि विस्मरामि मूलशकरम् । अहो क्व ग्रामग्रामणीसन्निकाय, क्व च विशदमानस शिशु, अहो शिवरात्रिसमये जनकेन सम विश्वजनीन सविनय श्रुत्वा विवादार्थं मानस मे समुत्कण्ठते । अपिनाम सम्पत्स्यते हृदयानुरूपम्, (दक्षिणाक्षिसकोच सूचयित्वा) किमिद स्फुरति दक्षिण नयन, अहो भगवन् । सफलय विद्यालय पल्लवय सौभाग्यकल्पलतिका पूरय च विश्वबन्धो ! मनोरथम् ।

एक.—(प्रविश्य) भगवन् ! अभिवादये ।

द्वितीयः—नमो नमः ।

गुणेन्दु —महाभाग ! नमस्ते ।

मुख्याधिष्ठाता—(दृष्ट्वा स्वगत) कोऽयं अपरिचित, नायं श्रीस्थलीय ? (प्रकाश) कुतः समागम्यते ?

प्रथम—अरे! जा जा यहाँ से पढ लिया तूने? तेरी सूरत ही नही है पढने की।

गुणेन्दु—(क्रोध से अरे मूर्ख! क्या बकवास करता है? तू क्या जानता है?

द्वितीय—देखकर मन ही मन) अरे! यह तो बडा असहनशील है और है भी तो इसके लम्बे बलवान भुजदण्ड! यदि यह मारने लगेगा तो हमारे वश की नही है एव थप्पड खाना भी। (प्रकट) हा हाँ श्रीमन्महाभाग! यह तो मजाक था आइये ले चलते हैं आपको विद्यालय।

गणेन्दु (मन मे) हु इस समय तो यह लोकोक्ति सचमुच सत्य हो रही है कि "चमत्कार को नमस्कार है।" (प्रकाश मे) होने दो यह मैं भी आया। सब विद्यालय जाते हैं। (फिर सर्व प्रथम मुख्याधिष्ठाता प्रवेश करता है पुन छात्रगण)

चन्द्रशेखर-मुख्याधिष्ठाता महोदय! अजी चित की महिमा का क्या कहना? अभी तक भी मन से मूलशकर नही निकल पाया। कहाँ ग्रामीणो का अटपटा जमघट और कहाँ मूलशकर का विशुद्ध बाल हृदय! शिवरात्रि के पर्व पर पिता के साथ विश्व हित के लिए उठाये गये विवाद को सुनने के लिए मन व्याकुल हुआ जा रहा है। क्या मेर मन की बात हो जायेगी? (दाहिनी आँख का फडकना बताकर) यह दाहिनी आँख क्यो फडक रही है मेर भगवान! विद्यालय को सफल कर, सौभाग्य की कल्पलता को पल्लवित कर दे देव! मेर मनोरथ को पूरा कर दे!

प्रथम—(प्रविष्ट होकर) भगवान्! नमस्कार करता हू।

द्वितीय—नमोनम महाराज!

गुणेन्दु—महाशय नमस्ते!

मुख्याधिष्ठाता—(देखकर मन मे) यह अपरिचित कौन है? यह ओस्थल का निवासी तो नहीं लग रहा? (प्रकट मे) हाँ भाई। कहाँ से आ रहे हो?

गुणेन्दु—भगवन् ! सौराष्ट्रमण्डलात् । अस्माच्च, मम मातुलेन श्रीमद्विद्यालये सम्पादयितु शास्त्राभिरुचिं साम्प्रतमादिष्टोऽस्मि ।

मुख्याधिष्ठाता—(सहर्षं) ननु किं टङ्कारास्थानतः, ननु त्वमेव गुणेन्दु किमु ?

गुणेन्दु—ओं भगवन् !

पथिक,—(जानन्तिकं) भो ! किमिदं समुज्जृंभितम् ?

अपरः—मूषिकाप्रवेशेन मुसलप्रवेशः !!

मुख्याधिष्ठाता—एहि एहि कथय, अपि जानासि मूलशंकरम् ?

गुणेन्दु—आम्, कथं न जानामि ? ननु श्रीमता कथं परिचीयते ?

मुख्याधिष्ठाता—सौभाग्यवशादहं तत्रागमम्, तत्र जातः परिचयः । गुणन्दो, अपिनाम रज्यते शास्त्रचर्चासु तस्य मानसम् ?

गुणेन्दु—(स्वगत) अहो इयान् यशोविस्तारस्तस्य ? (प्रकाशं) मान्य ! बालचापलात् न जानामि तस्य रहस्य तथापि प्रथमतमः स सर्वापेक्षया ।

मुख्याधिष्ठाता—सन्तुष्टोऽस्मि तस्य गुणश्रवणामृतपानेन । गुणेन्दो ! तव मातुलस्य पत्रेण विदितं मया, त्वयाऽत्र स्थातव्यं, किन्तु विद्यादीक्षां प्रतिपालयन्; मा प्रमादमवलम्बेथा ।

एक—पूज्य ! किमयं पठिष्यति ? गेहं गच्छतु महाभाग ।

मुख्याधिष्ठाता—मैवं विद्वेषाभिनिवेशिमलीमसं मानसं कुरुष्व ।

> 'गुरोर्निन्दा श्रुतेर्हासः परीवादवचस्तथा ।
> असूया श्रद्धानेषु शारदाकोपकारणम्' ॥४॥

तद् गच्छ चारुदत्त ! दर्शय श्रीस्थलस्य प्रसिद्धस्थानसौन्दर्यं गुणेन्दुम् ।

गुणेन्दु—भगवन् ! सौराष्ट्र से । और मेरे मामाने आपके विद्या-
लय मे आकर विद्या पढने का आदेश दिया है।

मुख्याधिष्ठाता—(सहर्ष) अरे भाई ! क्या टकारा से आ रहे हो ?
क्या तुम्हारा ही नाम गुणेन्दु ?

गुणेन्दु—हाँ जी !

प्रथम—(दूसरों से) यह क्या बोल रहा है ?

दूसरा—सुई प्रवेश के बाद मूसल का प्रवेश—

मुख्याधिष्ठाता—यहाँ आ, यहाँ आ, क्या तू मूलशकर को
जानता है ?

गुणेन्दु—हाँ जी, क्यो नही जानूगा ? परन्तु आप उससे कैसे
परिचित है ?

मुख्याधिष्ठाता—सौभाग्य से मैं टकारा गया था । वही परि-
चय हो गया गुणेन्दु ! क्या मूलशकर का मन शास्त्र चर्चा
मे लगता है ?

गुणेन्दु—(मन मे) अहो ! यहाँ तक मूलशकर की कीर्ति फैल
गयी ? (प्रकाश मे) महाभाग ! बचपन के कारण उसका
रहस्य तो नही जानता हू, परन्तु है वह सर्व प्रथम ही ।

मुख्याधिष्ठाता—सन्तुष्ट हो गया हू मैं उसके गुण श्रवणरूपी
अमृतपान से । गुणेन्दु ! मुझे तुम्हारे मामा जी के पत्र से
ज्ञात हो चुका है । तुम यहाँ पर रहो, विद्याध्ययन करो,
किन्तु इसमे प्रमाद न करना ।

प्रथम—पूजनीय ! यह क्या पढेगा ? आप घर जाइये न !

मुख्याधिष्ठाता—इस प्रकार द्वेष से मन को मलिन मत करो,

"गुरु निन्दा तथा वेद शास्त्र गर्हा कटूक्तियां ।
श्रद्धास्पदो मे अश्रद्धा शारदा कोपकारण ॥४॥"

तो चारुदत्त जाओ एव गुणेन्दु को सिद्धपुर के सुन्दर स्थलों
का दर्शन कराओ ।

एक —यदादिशति महामान्य ।

मुख्याधिष्ठाता-(सस्नेह) कुमार ! आत्मीय स्थानमिद मन्यस्व ।

"सरस्वतीतीरनिवेशभाजा-
मुपास्य वाणी विमलां द्विजानम् ।
श्रद्धानुविद हृदयं विधाय
सरस्वतीसेवनमारभस्व" ।।५।।

(इति निष्क्रान्त.)

(तत प्रविशत. गुणेन्दुचारुदत्तौ) ;

चारुदत्त —वयस्य गुणेन्दो ! इत प्रभृति भवान् परस्परोपकार मित्र मम, तन्मया पूर्वाचरित त्वद्विरुद्धाचार क्षमस्व ।

गुणेन्दु —मित्र ! मैव, न मे विप्रतीपमाचरित भवता, अथवा प्रागल्भ्यमपि शोभते शैशवे ।

चारुदत्त —वयस्य ! सन्तुष्टोऽस्मि तव परिचयेन । अथवा सर्वमेव विद्यार्थिवृन्द स्वभावसरला शेमुपी समीक्ष्य मोदतेतराम् ।

गुणेन्दु —सखे ! तत्राऽपि युष्माक पुण्यपरिपाक., योऽहं स्वल्पवासरविरचितसस्तवोऽपि सर्वेषा हृदयमिव सवृत्त. ।

चारुदत्त —नर्ह्यकिवक्तव्य "गुणै सर्वत्र पद निधीयते," विशेपत. तस्मिन्नवकाशेऽस्माक मुख्यमपादकेन सह रहसि प्रवर्तमाना विविधरसमिश्रिता देशोदयस्य, वैदिकधर्मस्य, भारतीयगौरवस्य च कल्याणसवित्री तव विवेचनसरणि शीलयित्वा विशेपागमरहस्यरहितस्यापि परमार्थदर्शिनस्ते हृदयङ्गमया मनीपया मुदितमानसा: सर्वे एव वेदविद्यालयवासिनो विद्यार्थिन ।

गुणेन्दुः-अस्तु अस्ति तत्रापि पुण्यातिरेकलब्धस्य पवित्रपरिचयस्य निदानम् ।

प्रथम—जैसे आपका आदेश !

मठाधिष्ठाता—(सस्नेह) कुमार इस स्थान को अपना ही समझो !

"सरस्वती तट निवासि महाशयो के,
विद्वज्जनाग्र पदश्रित पण्डितों के।
पाद स्थित प्रणत चित्र बनो प्रसन्न,
आशीष लाभ कर शास्त्र वरिष्ठ गण्य ॥५॥

(गुणन्दु और चारुदत्त प्रवेश करते हैं)

चारुदत्त —मित्र गुणन्दु! अब से तुम मेरे सुख-दुःख के साथी मित्र हो गये हो। मुझसे जो अनजाने मे अपराध हो गया है उसे भूल जाना भाई!

गुणेन्दु —भैय्या ! ऐसा मत कहो तुमने मुझे कहाँ सताया है ? और यह तो बचपन का गुण भी होता है चञ्चलता !

चारुदत्त —तुमसे परिचय पाकर बडा सन्तोष मिला मुझे। और सभी छात्रो की स्वाभाविक चपलता भरी बुद्धि देख कर तो मैं मस्ती म आ जाता हू ।

गुणेन्दु ,—हा, हा मित्र! इसमे भी तुम्हारा ही पुण्य प्रताप है जो थोडे समय मे मुझे साथियो की प्रशसा प्राप्त हो गई है और मैं सब के लिए हृदय जसा बन गया हूँ।

चारुदत्त —इसमे कुछ भी कहने की आवश्यकता है ? 'सर्वत्र ही गुण स्वय चमके धरा मे।' सच्ची बात तो यह है कि तुमने जिस प्रकार से वैदिक-धर्म, भारतीय सस्कृति, सम्यता, देशोद्धार, को सभी छात्रों के मनो में बिठा दिया इससे तुम्हारी सहज योग्यता का आभास मिल गया है। भले ही तुम अभी तक वेद शास्त्रो के परम्परागत पण्डित नहीं बने।

गुणेन्दु —इसमें भी तुम्हारे ही पुण्य परिचय को श्रेय मिलता है।

चारुदत्तः—बन्धो ! वयं तु सततं विलष्टव्याकरणव्यवहारिणः कर्कशतर्कचक्रा भ्रमितचेतसो न जातुचित् एवंविधां नवीनां-म्बुदयभावनां शृणुमः, किन्तु न भवता परिशीलितं धर्मशास्त्र न वा समधिगत श्रुतिरहस्यं, नवानुभूत च भारतीयसाहित्य-परिशीलनसौभाग्यं परमार्थतस्तस्यापि भूतार्थं विवेचयसि, तत्कस्य महात्मनः सहवाससन्तानकस्य फलम् ? विशेष-तस्तादृक्षे विद्याव्यासंगवञ्चिते देशे स्थितस्य ते महदिदमा-श्चर्यम्।।

गुणेन्दुः—सत्यं, तथापि भनीदृशोऽयं परिणामः सौजन्यभूमेः। अस्ति मदीयः सहचरो मूलशङ्करः, स शास्त्रविशेषविधुरोऽपि नित्यमेवंविधां दर्शयन्।परमार्थप्रसिद्धिं, मामपि स्वकीय-भावनाभाजनमकरोत्।

चारुदत्तः—सत् किं तस्यापि महानुभावस्य नैसर्गिकीयं मनीषा !

गुणेन्दुः—अथ किम् ? उत्तरोत्तरं परिवर्धते च मन्ये तस्यापि समागमनमत्र सम्भवेत् तदा सौभाग्यमस्माकम्।

चारुदत्तः–(सेर्ष्यं किञ्चित्) अतिमुग्धोऽसि, किं न वयं निखिलाः सत्यसनातनपथमवलम्बमानाः सरस्वतीसारवेदिनः ?

गुणेन्दुः—सखे ! इत्थमहं न जाने निगूढगाम्भीर्य किन्तु परस्पर कलहायमानानां नानाविधानां शास्त्रव्यपदेशव्यायतानां धर्माणां श्रुतिरेव परम प्रमाणम्—

> विश्वक्षेमकरीमनन्तमहसः कल्याणपारंपरी-
> खेलन्निर्झरिणीं पवित्रतरणिं संसारवारानिधेः।
> भव्यां भानुविभामिव श्रुतिमघध्वंसाय संजाग्रतीं
> पुण्यां प्राणभृतां गतिं मुनिवरैराधितां दध्महे ॥६॥

चारुदत्त:– बन्धो ! हम तो नीरस अकोमल व्याकरण शास्त्र एवं कर्कश तर्कशास्त्र से भ्रान्तहृदय बन चुके है। इस लिए ऐसी तीक्ष्ण अनुभूति हममे होती ही नही है। तो भी यह आश्चर्य की बात है कि बिना वेद धर्म एवं दर्शन शास्त्र पढे भी तुममे इतनी प्रतिभा भरी है कि तुम जो कहते हो, उसमे चमत्कार भरा होता है। किस महापुरुष के सम्पर्क से तुम्हे यह योग्यता प्राप्त हुई है ऐसे प्रदेशमे जहाँ पर विद्या व्यसनी विद्वानो का दर्शन भी दुर्लभ है।

गुणेन्दु:– सचमुच यही बात है। तो भी यह सब मेरे साथी मूलशङ्कर की पुनीत प्रतिभा का परिणाम है, भले ही उसने वेद शास्त्र नहो पढे हैं तो भी उसकी परमार्थ सिद्ध वृत्ति का मुझमे भी प्रवेश हो गया है।

चारुदत्त:–तो क्या उस महानुभाव की भी ऐसी पुण्य बुद्धि प्राकृतिक ही है ?

गुणन्दु:–और क्यो ? उसकी बुद्धि तो उत्तरोत्तर बढ रही है। चाहता हू कि किसी प्रकार उसका आगमन यहाँ हो जाय तो बडा लाभ हो हमारा।

चारुदत्त –(थोडी सी ईर्ष्या करता हुआ) क्या हम सभी लोग सत्यसनातन मार्ग पर चलने वाले शास्त्रो का सार नहीं जानते ?

गुणेन्दु –सखे ! इतनी गम्भीर बात तो मैं नहीं जानता, किन्तु विभिन्न मतभेदो को व्यक्त करनेवाले परस्पर विरोधी शास्त्रो मे वेद ही सबसे अधिक पूज्य हैं और स्वत: प्रमाण हैं—
'विश्वक्षेमकरी, सुगौरवमयी ! कल्याण संचारिणी,
ससाराम्बुधितारिणी, सुखभरानौका जगद्भासिनी।
लोकाज्ञान निवारिणी रविविभाभव्या अघध्वंसिनी,
विद्वद्वृन्दसुसेविताश्रुति हमे सन्मार्गसदेशिनी॥ ६॥

चारुदत्तः—सत्य तथापि विश्वेषां निःश्रेयसे साधीयसी न केवलं श्रुतिसरस्वती, तदभिमतानामपि तन्त्राणां अविरोधसामान्येन प्रामाण्यमादरणीयम्।

गुणेन्दुः—मित्र ! तारतम्यं न जानामि, किन्तु मदीयस्तु दृढोऽयं निश्चयः सर्वथा श्रुतिरेव प्रामाणपदवीमारोहति। अथ सोऽपि मामेकदा व्याहरत्—

निःशङ्कं परिभूय पङ्कजभुवो वंश विशिष्टं विधिः
कौतस्त्यः कलिकालकल्मषमपोव्यामिश्रतामश्नुते।
यत्र धौतपथा मलीमसतमैः कोर्णा विभिन्नागमैः
क्लिष्टाः शिष्टधियः प्रनष्टगतयः विष्टात्मनां पांसुलैः॥७॥

चारुदत्तः—(स्वगतं) अहो ! भूतार्थव्याहृतिः (प्रकाश) सखे ! नमस्तस्मै देशाय यत्र जगन्मङ्गलस्य सम्भवः वृथा खलु देशविदेशगौरवम्। (सर्वतो विलोक्य) अतिवेला व्यतीता, तद् आगच्छतु श्रीस्थलविहारमनुभूय त्वरित प्रतिगच्छावः।

गुणेन्दुः—एवं सखे ! सत्यमिदं श्रीस्थलम्।

चारुदत्तः—एवं गुर्जरदेशतिलकायमान स्थानमिदन्। अत्र—

चारुदत्त :—यह बात यथार्थ है, तो भी वेदानुकूल सभी तन्त्र-शास्त्रादि भी तो हमारे प्रमाणभूत पूजनीय हैं।

गुणेन्दु :—भ्रातः ! तारतम्य तो मैं नहीं जानता, मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि वेद ही एक मात्र प्रमाण ग्रन्थ हैं। मूलशकर ने भी एक बार मुझे कहा था—

"निर्शंक हो विधि पितामह पद्मनाभि,
सन्देह भावभरता, कलिकाल आधि।
वेद प्रभाव रहित प्रतिपक्ष वक्ता,
नाना पुराण वर पुस्तक का नियोक्ता—
सर्वेष्ट विश्व सुख साधन भूतदिव्य,
संसार सागर सुतारण में प्रसिद्ध।
वेदामृत प्रबल शक्त समस्त मेल—
प्रक्षालनामित बल प्रतिबोधशील—
लाभार्थ विश्वजन के यह देववाणी,
है सर्व शांतिसुख सम्पद भव्यदानी,
सर्वात्मना तज समस्त पुराण पन्थ,
वेदोक्त मार्ग गहना परमार्थ सन्थ॥७॥

चारुदत्त :—(मन में) ओ हो प्राणियों की हित वार्ता है यह तो (प्रकाश में) सुदृढ़ जहां पर विश्व कल्याण का सर्जन जगता है। उस दिव्य देश को सहस्र नमन हैं, देश देशान्तर गमन तो इस भूमि के सामने तुच्छ है। (चारों ओर देखकर) बहुत समय बीत गया, तो चलो सिद्धपुर विहार का सुखद अनुभव करके शीघ्र ही लौट आवें।

गुणेन्दु :—अच्छा मित्र ! बड़ा पवित्र स्थान है यह ?

चारुदत्त :—हां, हां, महान् गुजरात का शिरोमुकुट स्थान है यह—यहां पर—

श्रीमद्गुर्जरभारतीप्रणयिनीश्रीखण्डचर्चाकरः
सोलङ्कीक्षितिपालनन्दनयशःसन्तानसन्तानकः ।
उद्दण्डारिनिकायमुग्धवनितावक्षःशिलापाटन-
प्रोद्भतप्रसरत् प्रतापदहनः श्रीसिद्धराजोऽभवत् ॥८॥

अत्राशेषविभूतिहासविलसत्सौन्दर्यसारैः कृत
भव्यं धाम गिरीन्द्रजाप्रणयिनः श्रीरुद्रमाला भिधन्।
यस्यायं गलितस्य विष्वकुहरे कालाहिना दृश्यते
खण्डः खेलितलोकसकुलयशः स्तंभायतेऽद्यावधि ॥९॥

गुणेन्दुः—अहो ! परमरामणीयकम् ! इतिहास प्रसिद्ध स्थलमेतत् सिद्धराजनाम्ना परिवर्तितम् । खलु तस्य महासत्त्वस्य—

विलासिनः शारदाया सरागं
श्रिया सहासञ्च कटाक्षितस्य ।
द्वयं प्रियं तस्य धराधिपस्य
शशाङ्कमौलेः शरणं रणं वा ॥१०॥

चारुदत्तः-(अन्यत्प्रदर्श्य) पश्यतु सरसगभीरनीरां विराजिततरलतुरङ्गतरङ्गां दुरितभङ्गापदानविलसत्प्रसंगां सरस्वतीम् ।

गुणेन्दुः—अहो ! पङ्कजासनतनया नयनानन्द कंदलयति ।

हंसावली मण्डितमध्यभागा
सरोरुहश्रेणिविलोलवेणी ।
सरस्वती भूतलमीक्षमाणा
व्रजत्यसौ मुग्धपतिंवरेव ॥११

चारुदत्तः—पश्य—

तीरे तीरे विबुधसरितः स्वर्गनिश्रेणिकाया
ब्रह्मध्यानक्षपितदुरिताः सज्जनाः कल्पकल्पाः ।

"श्रीमान् गुर्जर भारती प्रणयिनि श्रीखण्ड चक्रालय,
सोलंकी नृप लोकवल्लभ महान् कीर्ति प्रकर्षाश्रय,
स्त्रीयाऽसीमितशौर्य दर्शक सदा शत्रुप्रणाश स्वभु,
धिज्ञाधार हुआ यही नरपति श्रीसिद्धराज प्रभु, ॥
आत्मक्षेप समृद्धदीप्ति करण प्रख्यात सिद्धागम,
सौन्दर्याश्रित दर्शित प्रथमता दुर्गादि निर्माणमें।
ऐसे भूपति वर्य के दिख रहे ये ध्वस्त ही कोट के,
कोर्भीराज शिरोमणि यश यहाँ सच्छ है आज लौ ॥११॥

गुणेन्दु :—वाह रे वाह ! क्या बढ़िया दर्शनीय स्थान बनाया है महाराजाधिराज सिद्धराज ने। तभी तो उस महा-राज के—

"सरस्वती सेवा श्री इस भूपति की,
सदैव सेवारत हो चुकी थी,
इमे यही दो प्रिय थे धरा पै,
शिवस्तुति या रिपु सर्वनाश ॥१२॥

चारुदत्त :—(और दिखाता हुआ) देखो देखो सलिल सुखद पापपुंज बिनाशिनी भगवती सरस्वती को।

गुणेन्दु :—हाँ, हाँ, यह चतुरानन सुपुत्री सरस्वती का सहज सौन्दर्य कितना नयनानन्दकारी लग रहा है ?

"हंसश्रेणी सुशोभितासुसलिला अम्भोजराजीशुभा,
भक्तानन्दकरी मनोहर तटा, सत्संगसन्तोषदा,
पापध्वंसरता सरस्वती सुसरिता पृथ्वीगता दीखती,
जाती है, पतिकामनावशमुदा, कन्यासलज्जायुता ॥१४॥

चारुदत्त :—देखो—

इस दिव्यदेव सरितातट के निवासी,
त्यागे गृहस्थजन की सब सौख्यराशि।

येषां पुन्या प्रणयमधुरा भक्तिमुक्तिप्रदाना
पापं तापं श्रवणसुभगा शास्त्रचर्या निहन्ति ॥२॥

गुणेन्दुः—अहो ! इतोऽपि पर मानसमोहावह कमनीयकेलि[illegible]
कलकव मरालविलास विलोकयतु महाभागः—

लीलाखेलं ललितकमलामोदाय पक्षै-
भूदेवानामपहृतपरध्यानमभ्युक्षितानाम ।
मंत्रारभं करविहरणैरेकतान समेत्य
मन्द मन्द मुदितमनस. पश्य नृत्यन्ति हसा. ॥३॥

चारुदत्त—एवमेव, इतः श्रद्धावबद्धसमाधय. परमपदनिर्दे-
विशदधियः कलिकलुषविदशमनुजविपदपनयनपरमन-
विषयः श्रुतिस्मृतिनिनाद वाचालितभुवनविवरा, प[illegible]-
पावना निखिलमनुजवृन्दवन्दनीयचरणारविदद्वन्द्वा ब्राह्मणा
सन्ध्याविधिवैयुष्ट्यं विदधते । इतोऽपि नियमानिरंतर
मानतो नगरनिलयजननिकायः प्रणतिप्रवणः परमया भक्त्या
परमात्मान नि ध्यायते । इयमपि करुणाशरीर सरा
सारस्वती जननीव निरन्तरं पावयति पुरवासिन. ।

एषा सुधासाररसा जगन्ति
नि.शेषपुण्यप्रसरा पुनाना ।
षट्पदी भूमिसुरोपसेव्या
सारस[illegible]

ईशार्पित प्रसभनष्टकृताघ पुंज,
है शोभते नित अहो भव मार्यलंज ॥१५॥
श्रद्धाधृतप्रतिदिन प्रथतितायभाव,
आते अनेक जन दुःख निपात चित्त,
किन्तु श्रुतिस्मृतिमयी रुचिरामनोज्ञा,
वाणी विनाशन प्रभु पीडितों की ॥१६॥

मृगेन्दु :—ओहो ! यहीं दूर से ही आप मन को मुग्ध करनेवाले कमनीय क्रीड़ा निरत मस्त मराल के विलास को देखिये ।

'पंखों से ये ललित कमलों की सुगन्ध प्रसारे,
पुण्य ध्यानादृत द्विजवरों को सदा जो रिझावें।
मन्त्रोच्चाराहृति नियत हो आह्लकी की रचावें,
धीमे धीमे मुदित मन से नाचते हंस देखो ॥१७॥"

चारुदत्त :—है तो ऐसा ही देखो न श्रद्धा बद्धसमाधिशील, परम पावन पद प्रतिनिहित बुद्धिधनी, कलिकलुषविवश मनुष्य-विपद अपनयनशील, श्रुतिस्मृति प्रगति नियमों से चतुर्दश भुवनो को मुखरित करने वाले, पंक्तिबद्ध बैठे थे मानव मण्डली के मूर्धन्य मुक्तामणि ये भूमिदेव, ब्रह्मयज्ञों में तल्लीन कैसे शोभायमान लग रहे हैं ? यहाँ पर अन्य भी अनेक आस्तिकजन स्नानादि से निवृत होकर बड़ी भारी संख्या में अभिवादन भावाभिभूत होकर ये महती श्रद्धा से भगवान् की भक्ति में डूब गये है ! और यह भगवती परम-पावनी सरस्वती सरिता भी तो प्रतिपल पुरवासियों को पवित्र करती ही रहती है ।

"होती प्रवाहित नदी यह पुण्यशीला,
दैवी सरस्वती सभी प्रतिवेल दिव्य ।
भूदेव पूजित समस्त अघौघ नाशी,
पीयूष शुद्ध सलिला हृदय प्रकाशी ॥१४॥

अपिच—

विधित्सवः श्रौतविधिं विधानतः
प्रपित्सवः पावनधामवैभवम्।
करिष्णवो विश्वजनीनमाशय
भविष्णवः सर्वहितैषिणश्च ॥ १५ ॥

चारुदत्तः—(विलोक्य) सखे! एतत्पवित्रतम बिन्दुसरः पुराण प्रसिद्ध यत्र भगवता महामुनिना कपिलेन स्वमातुः देवहूत्याः शोकशङ्कुरुन्मूलितः, अत्रैव पुराणप्रख्यापित भवति मातृश्राद्धमपुनर्भवाय।

गुणेन्दुः—नमस्ते! भगवते सकललोककल्याणकारिणे जगज्जीवातवे महामुनये कपिलाय। यः किल—

शोकनाशाय लोकानां तापत्रितयभेषजम्।
आदिविद्वान् जगद्वन्द्यः साङ्ख्यशास्त्र प्रणीतवान् ॥१६॥

(सर्वत्र दृष्ट्वा) वयस्य! ललाटतपस्तापः तत्साम्प्रत निवर्तावहे। पुनरपि यथाप्रसङ्ग आगमिष्यावः।

चारुदत्तः—यदादिशति वयस्यः।

उभौ—नमः परमर्षये दिव्यचक्षुषे कपिलाय!

(इति निष्क्रान्तौ)

(स्थानं सिद्धपुरम्, सरस्वतीमन्दिरम्, करसनजी सौमित्रश्च)

करसनजीः—सौमित्र! अपि वर्तते काचिदुपलब्धिर्मूलशङ्करस्य!

सौमित्रः—(सखेद) महाराज! सर्वतः स गवेषितः, नास्ति क्वापि प्राप्तिनिदानम्; अद्य मयाऽत्र सिद्धपुरे समधिगता प्रवृत्तिः अस्ति च मदीयो मानससंकल्पः नियतमत्र विद्याधिगमाय कृतागमनः मूलशङ्करः।

यह भी देखिये :—

'वेदोक्त कर्म निपुण व्रतशील विप्र,
पुण्याम्बु पान-रसिक प्रणतात्म भाव।
सर्वार्थलाभ हित बद्ध उदात्तचित्त,
हैं धन्य भूमिसुर ये जनमान्यभूता ॥१५॥'

चारुदत्त :—(देखकर) मित्र! यह रहा वह पुराण प्रसिद्ध बिन्दु सरोवर जिसके निर्मल कूल पर बैठकर महर्षि कपिल ने निज माता देवहूती के शोक शकुओं को निकाला था। इस स्थान पर पुराणोक्त मातृश्राद्ध किये जाते हैं, मोक्ष प्राप्ति के लिये।

गुणेन्दु :—समस्त ससार के श्रेय साधक विश्वबन्धु भगवान् महामुनि कपिल को शत सहस्र नमन हो। क्योंकि ये ही हैं—

"लोकके दु.ख विध्वस्ता, तीन सन्ताप नाशक,
सांख्य शास्त्र विधाता हैं, जगद्‌बन्धु बुधाग्रज ॥१६॥'

(सबको देखकर) सखे! अब तो सिर पर प्रबल ताप पड़ने लगा है, चलो लौट चलें अब! समय आने पर फिर कभी आयेंगे।

चारुदत्त :—जैसा आप कहे मित्र!

दोनो :—परमदिव्य महर्षि दिव्यद्रष्टा कपिल भगवान्‌के चरणोमे प्रणाम हो।

(दोनो चले जाते है)

स्थान :—सिद्धपुर का सरस्वती मन्दिर, करसनजी और सौमित्र)

करसनजी:-सौमित्र! कहीं कुछ पता भी चला है मूलशकर का?

सौमित्र :—(दु.ख के साथ) महाराज! सभी जगह ढूंढ लिया है खूब, पर कही भी सुराग नही चला! आज ही सिद्धपुर मे पता चला है। मेरे मन में भी संकल्प विकल्प हो रहे हैं कि मूलशङ्कर विद्याध्ययन के लिये यहाँ पर आया हुआ है।

करसनजी:—(सनि:श्वासम्) वञ्चितोऽस्मि दैवेन, सौमित्र ! कम्पते मे हृदयं, इतः परं न भविष्यति तनयमुखदर्शनम्, हा ! हतभाग्योऽस्मि । निरालम्बोऽस्मि सर्वतः ! प्रभो, प्रभो !! किमिदमेकपदे वशविप्लवकारणं समुपस्थितम् ?

सौमित्र:—महाराज ! समाश्वसिहि, पर्यवस्थापयात्मानम् । न दैवं दुर्लङ्घनीयं; कं न विषमदशापरिणतिराकुली करोति ? न तावदस्ति दुःखाकरं तनयवियोगादन्यन्नाम । तथापि धैर्यं धार्यताम् । अतिक्रान्ते किं परिदेवनैः ? अस्मिन् महोत्सवेऽवश्यं भविष्यति मूलशङ्करस्य प्राप्तिः ।

करसनजी:—(सखेदं)

निःसीमशोकजलधौ पितरं गतस्य
स्नेहाकुलां च जननीं बत मज्जयित्वा ।
चेतो न निश्चयमुपैति, जहाति धैर्यं
स्मृत्वा विपर्ययमिमं कुलपांसुलस्य ॥१७॥

अरेरे ! कति न जायन्ते जननीगर्भभारभूताः पापकारिणो निरुपकारिणः कुलकलङ्काः ?

आजन्मजीवनरसेन वपुर्व्ययेन
संवर्धितेषु हृदयार्पणलालितेषु ।
हा ! हा ! जहत्सु पितरं कुटिलेषु तेषु
पुत्रेषु कुण्ठितगतिर्भगवन् कृतान्त ! १८॥

करसनजी —(आह भर कर) भाग्य ने धोखा दिया है सोमित्र मुझे ! मेरा मन बुझा जा रहा है; लगता है पुत्र के मुख दर्शन नही हो सकेंगे अब ! मैं बड़ा अभागा हूं, मैं तो सर्वथा लुट गया हूं । अब मेरा सहारा ही कौन है ? विभो परमेश्वर ! यह क्या कर दिया तुमने ? एक साथ ही इतनी मुसीबतें गिरा दी हैं मुझपर । मेरा तो वंश नाश ही हो गया है यह तो !

सोमित्र :—भगवन् ! धैर्य धरिये, घबराइये नही; आत्मा में शांति रखिये ! दैव को कौन मात दे सकता है ससार में ? कौन है ऐसा मनुष्य जिसको विपदाएं नही सताती ? पुत्र विरह से अधिक ससार में और कोई दुःख नही है । तो भी धीरज थोड़े त्याग देना चाहिये ? व्यर्थ की हाय मे क्या रखा है ? मूलशंकर इस महोत्सव में कहीं न कहीं अवश्य होगा ।

करसनजी:—(दुखित हुए)

"माता और पिता दोनो को, शोक सिन्धु में मग्न किया ।
हम दोनों के स्नेह पास को झुठलाकर अवसन्न किया ।।
मन तो नही मानता यह भी, धैर्य गया तज आज हमें,
बारम्बार स्मरण करने से, सब विरुद्ध यह हाय हमें ।
उस सुतेजधारी व्रतधारी, श्रेष्ठ पुत्र का भाव हमें,
महाअशुभ वन रुला रहा है, हृदय अशांत हमें ।।१७।।

वैसे तो लाखों करोड़ों ही पैदा हो जाते हैं. संसार में जननी-यौवनहारिणी दुष्ट सन्तानें यहाँ पर—

"जीवन भर निज सर्वशक्ति से,
जिनका पोषण करते हम ।
क्षण भर भी कुछ दुःख न मानें
पुत्र प्रेम में रञ्जित हम ।
ऐसे ही यदि शत्रु कुटिल बन,
माता-पिता को छोड़ चलें ।
फिर तो निश्चित पितृजनों के,
बली हृदय भी घोर जलें ।।१८।।

(इति मूर्च्छति)

सोमित्रः—अरे कथं मूर्च्छितः पुत्रवत्सलः ? महाभागः ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि । ननु कथयामि नियतमत्र भविता सुतसंगमः ।

करसनजी.—किं करोमि सौमित्र ? सर्वथा निःशरणोऽस्मि यदि अद्य न मनोरथसिद्धिस्तदागन्तव्यमेव गृहे सर्वथा तिलाञ्जलिं वितीर्य; अरे । तस्य अपि मन्दभाग्याया अमृताया[1]—मूलशङ्करजनन्याः कीदृशी परिणतिः ? धिक्कष्टम् !

सौमित्रः—ननु विवेदयामि तत्र भवन्तं धैर्यं कृत्वा विवेकालम्बनं विदधातु । अहं सर्वत्र गत्वाऽस्मिन् जनसनिकाये गवेषयिष्यामि । भवान् अत्र सरस्वतीमन्दिरे करोतु स्थितिं, अहं सरस्वतीस्नानं परिसमाप्य यावत् प्रतिनिवर्ते ।

करसनजीः—अहमपि विधास्यामि स्नानम् ।

सौमित्रः-नहि भगवन् ! बहुलायासपीडितं ते शरीरं, व्यतीतानि त्रीणि दिनानि श्रीमता पानीयं विहाय न किञ्चिदपि भुक्तम् । तत्र युज्यते पीडयितुमात्मानं सचनेन, अन्यथा पुनः कष्टमापतेत् ।

करसनजीः— एवं, यथा भवदभिमतम् । गच्छ स्नानाय तत्रापि घेट्ट जीर्णे देवालये द्रष्टव्यं, तावदहमपि सरस्वतीमन्दिरे प्रतिपालयामि भवन्तं, साधय । (इति मन्दिरं गच्छति)

सौमित्रः—हन्त भोः ! कीदृशोऽयं दशाविपर्ययः ? न चेतनामञ्चति चेतः । अप्रतिविधाना विपत्परंपरा, यदि नाम तेन विद्याधिगमाय कृत्यमाचरितमिदं तदा न दोषावहं वा

१. अम्बाशङ्कर इत्यपरनाम ।

(इतना कहकर करसनजी मूर्छित हो जाते हैं)

सौमित्रः–ओ हो ! पुत्र प्रेम में तो आप मूर्छित भी हो गये ? धीरज रखिये भगवान् ! मैं कह रहा हूं कि यहां पर पिता-पुत्र की भेंट अवश्य होगी।

करसनजीः–भैय्या सौमित्र ! तू ही बता अब मैं क्या करूं ? मैं तो सर्वथा लुट गया हूं, यदि आज मूलशंकर न मिला तो मैं टङ्कारा लौट जाऊंगा सदा के लिये मूलशंकर के नाम पर तिलाञ्जलि देकर ! अरे ! उस बेचारी अमृतबाई का, मूलशंकर की मां का तो और भी बुरा हाल हो गया है, कितनी अभागिनी है वह ?

सौमित्रः–मैं बारबार यही निवेदन कर रहा हूं कि आप धैर्यावलम्बन कर विवेक से काम लें। अभी आप सरस्वती मंदिर में विश्राम करें और मैं सरस्वती मे पुण्य स्नान करके अभी लौट आता हू। मैं इस मेले मे कही न कही ढूंढ ही लूंगा मूलशंकर को आज।

करसनजीः–मुझे भी स्नान करना है।

सौमित्रः–नही महाराज ! शरीर को अधिक कष्ट मत दीजिये इस समय ! तीन दिनो से आपने कुछ खाया पीया भी नही इसलिये स्नान करके शरीर को और कष्ट मत दीजिये। अब तो कही कोई रोग न दबा ले कोमल शरीर को।'

करसनजीः–अच्छा, जैसा तुम कहो। अच्छा, स्नान कर आओ और घाट पर पुराने मन्दिर में देख लेना, लोगो से पूछ लेना, तब तक मैं सरस्वती मन्दिर मे तुम्हारी बाट देखता रहूगा ! जाओ तो फिर (करसनजी मन्दिर की ओर जाते हैं।)

सौमित्र–हाय रे ! क्या दशा हो गयी है यह ? मन मे चेतना ही नही रही, विपदाओ की परम्परा कही टूटने का नाम भी तो नही लेती ! यदि मूलशंकर ने विद्याध्ययन के लिये ही

पितृपरित्यागप्रत्यवायपांसुल प्रत्युत विद्यासंपादनाय विदेशाश्रयणेन गृहत्यागं विधित्सवः पुण्यशालिनः शिशवः सर्वदा सौभाग्यमावहन्ति सर्वेषाम् । कल्याणाभिनिवेशिनस्ते हि न केवल कुलस्य स्वदेशस्यापि गौरवं विदधता जगन्मङ्गलं जायते जन्म ।

महाभागस्तावत्तिलकयति वश कृतमति-
र्यदीयः सर्वार्थ. सुभगयति विश्वं गुणगण. ।
अटन्तस्त्रैसन्ध विविधविधिना कुक्षिभृतये
न वा के जायन्ते जनकजननीक्लेशकृमयः ॥१९॥

तथा च—

विद्याविवेकविकला ननु सन्तु पुत्राः—
स्तारागणैरिव पितुर्विविधैः किमेतैः ।
धन्यः स एव परमाभ्युदयी कलावान्
यो हर्षवर्धवसतिर्विधुवत् पयोधे. ॥२०॥

व्यामोह एव विद्यार्जनेगृहत्यागमनुशोचता स्नेहपरवशानां गुरूणाम् । लोकाभ्युदयकरी सतानस्य सती गुणग्रहण-कुतूहलिनी प्रवृत्तिः न निरोद्धव्या गुरुभि॰, सर्वथा मूलशकरस्यापि तथा सवृत्तम् । यदि नाम न स्यात् सद्मनि तादृशविशिष्टगुणव्यासगस्तदा विदेशाश्रये को दोषः ?

गृहत्याग किया है तो इसमें पाप की बात ही नही है, माता पिता को कष्ट पहुंचाने की बात ही नही उठती है ! विद्या ग्रहण के लिये गृहत्याग करने वाले बालक बड़े पुण्य-शील महात्मा कहलाते है, आगे चलकर। ऐसे सुपुत्रो से वश ग्राम, जनपद और जननी जन्मभूमियाँ प्रशस्त तथा धन्य बनते हैं। ये ही बालक जगत् के मङ्गल जनक होते हैं।

इन्ही वंश दीपों से कुल दीपता है,
इन्ही से सदन कीर्तियाँ जीतता है,
इन्ही के ही शुभकर्म जगको सजाते,
इन्ही कों चरणधूलि शिर पर चढ़ाते।
पिता और माता इन्होंके विनय से,
सुकृत से बहुत दूर ये हैं अनय से।
सफल कोख होती है माँ की इन्ही से,
विफल कोख है दुर्नयी बालकों से" ॥१९॥

और भी तो—

"ऐसे कुपुत्र भव में बहुमारकों से,
तारा समूह सम वे नभ में चमकते,
वे ध्वात गाढ़ हरते कब चन्द्रमा से
है धन्य तात जननी शुभ शावकों से" ॥२०॥

शुभ विद्याभ्यास के लिये गृह त्याग करने वाले सुपुत्रो के कारण शोक करना तो माता-पिता की लिप्सा का ही द्योतक होता है। गुरुजनो-पितरो को ऐसे भव्य बालकों की गुणग्राहकवती प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना चाहिये, न कि विरोध, लगता है मूलशकर भी इसी भावना का शिकार हुआ है। जब घर ग्राम मे विद्याग्रहण की सुविधा न हो तो विदेश जाने में क्या दोष है ?

हन्त भोः । सरस्वतीविभ्रमजन्मभूमिः प्रतिसदनं सर्वशिक्षावदात धाम मनोपमण्डित सकलकलानिकेतनमादिजन्मकन्दः प्रकृतिलतायाः निःशेषदेशसमाश्रित यद् भारत वर्ष तत्र विद्याकणिकाभिपासवो भारतीयपुत्रा, हा हन्तः ! विहीनगेहबान्धवाः पयटन्ति परितः —

मध्ये महान्वयमुदन्नदशावलम्बी
पात्रस्थितस्तिमिरमन्धमपाकरोति ।
सूते न कल्मषमशेषदिगन्तदीपो
धन्यः स एव कुलमङ्गलदीपकल्पः॥२१॥

तथापि गरीयसी स्नेहवृत्तिः—

यस्याप्तये विविधधर्मविधानवंति
कर्माणि कष्टकलितानि करोति लोकः ।
अङ्कस्थितस्य तनयस्य च विप्रयोगात्
कस्य क्षणं न हृदय शतधा प्रयाति ? ॥२२॥

भवतु, सरस्वतीस्नानमनुभूय मार्गणं कर्तव्यं मूलशंकरस्य । तद्गच्छामि, अथवा स्नानावकाश सुख पृच्छामि । (दृष्ट्वा) एष कोऽपि समायाति ।

(ततः प्रविशति चन्द्रशेखरः)

चन्द्रशेखरः—(सोत्कण्ठं) अहो ! किमिद सत्य गुणेन्दुना निवदित अत्र समागतो मूलशङ्कर इति ?

सौमित्रः—(समीप गत्वा) महाभाग ! निवेदय स्नानावकाश घट्टम्—

चन्द्रशेखरः—महाभाग ! कुतःसमागम्यते ?

सौमित्रः—अह सौराष्ट्रदेशात् टङ्काराभिधानात् ग्रामात आगतोऽस्मि ।

हाय रे ! आज भारत की कितनी दुर्दशा हो गयी है? कभी यह देश था जिसके घर घर द्वार द्वार में भगवती सरस्वती की कीर्ति पताकाएँ फहराया करती थी, ग्राम ग्राम, नगर नगर, विद्वन्मण्डली विभूषित थे, परमपावन पुण्य वेदमन्त्री से जनपद समलकृत और मुखरित थे, उसी देश के विद्याभिलपी शावक भूख प्यास से व्याकुल, अर्धनग्न विद्या की खोज में दर दर मारे मारे फिर रहे हैं-घरबार भाई बन्धुओं को छोड़कर।

" वे दीप धन्य उसकी शुभ ज्योति धन्या,
जो दूर शाश्वत करे घन अन्धकार।
सन्तान-दीपक यशोनिधि धन्य, धन्य,
आलोक जो भर रहा जग में नवीन" ॥२१॥

तो भी स्नेहभावना कहाँ बुझती है मानव की ?
स्वभाविक जो ठहरी यहीं।

"पुत्रार्थ सर्वविध कर्म करे मनुष्य,
कष्टातिष्कट सहता सुतदर्शनार्थ।
सौख्याश्रयी तनय के गृह त्यागने से,
है कौन जो व्यथित पीड़ित,
होगा न कौन जन दुःखित मग्न चेता" ॥२२॥

अच्छा प्रथम, सरस्वती में स्नान करलूं, फिर चलूंगा मूलशंकर को ढूंढने। नहीं तो पहले ढूंढ ही लूं उसे! फिर आराम से नहा लूंगा। (देखकर) यह कौन आ रहा है ?

(इतने में चन्द्रशेखर आता है)

चन्द्रशेखरः—(उत्सुकता से) क्यों भाई ! यह सच है कि गुणेन्दु के कहने से मूलशंकर यहाँ आया हुआ है ?

सोमित्रः—(पास में जाकर) हाँ स्नान करने के लिये अच्छा सा घाटतो बताइये।

चन्द्रशेखरः—कहाँ से आ रहे हैं आप ?

सोमित्रः—मैं सौराष्ट्र के टंकारा नामक गाँव से आया हूं।

चन्द्रशेखरः—(स्वगत) हन्त ! सत्य सत्य मूलशङ्करगवेषणमेव निदानम् . (प्रकाश) ननु तर्हि यात्रिकः खलु महाभागः ?

सौमित्रः—नहि भूदेवदेव ! अस्माकं वयस्यस्य करसनजीविप्रवर्यस्य पुत्रः एकोनविंशवर्षदेशीयः गृह परित्यज्य निर्गतः, तज्जनकेन सम समागतः ।

चन्द्रशेखरः—किमस्ति तस्योपलब्धिबीजम् ?

सौमित्रः—आम् अस्ति ।

चन्द्रशेखर —(स्वगत) प्रभो ! वितर करुणाम् (प्रकाशं) ननु महाभाग ! तादृशाल्पवयस्कः स कथ गृह परित्यज्य निर्गतः ?

सौमित्रः—अस्ति विशाल रहस्य, स बाल एव विलक्षणमतिः प्रतिस्फुरदप्रतिमपाटव । शास्त्रव्यासगकुशलः सदाचारचर्चाचञ्चुरेकदा शिवरात्रिमहोत्सवे पूतात्मा कृतोपवासः सह तातेन वसन्, चन्द्रकलापस्य कुबेरशिवालयं विभावर्यां शिवलिङ्गोपरि तण्डुलकणभक्षणार्थं भ्रमन्त मूषिकं विलोक्य, समुत्पन्ना व्याहतज्योतिर्विवदमानस्तातेन तेन निबोधितोऽपि च मुहुर्मुहुरुपचितसदेहसदोहः 'तदेव न पिण्डपाषाणखण्डे परमात्मनो मूर्तिः, किन्तु पाषाणखण्डाद् विलक्षणः स परा-

चन्द्रशेखर:—(मन मे) हाँ, हाँ, मूलशकर की खोज ही इलाज है अब तो। (प्रकाश मे) तो आप लोग तीर्थयात्री है ?

सौमित्र·—नही ब्राह्मण देवता नही ! श्री करसन जी त्रवाडी महोदय का उन्नीस वर्ष का युवा पुत्र घरबार छोड़कर कही चला गया है। उसका पता लगाने के लिये ही मैं अपने मित्र के साथ यहाँ आया हू।

चन्द्रशेखर:—कही उसका कोई सुराग लगा ?

सौमित्रः—हाँ, लगा तो है।

चन्द्रशेखर:—(स्वगत—मन मे ही) विभो ! करुणाकर करुणा कीजिये। (प्रकाश मे) क्योंजी ! इतनी छोटी आयु मे वह घर छोड़कर कैसे भाग निकला है ?

सौमित्र: -इसमें बड़ा भारी रहस्य है भाई ? वह बालक बहुत ही अप्रतिम प्रतिभावान है शास्त्रार्थ ज्ञानार्थी है और सदाचार विचारो मे तो अनूठा ही है। एक दिन उसने महाशिवरात्रि के दिन उपवास रखा, शिवदर्शन एव रात्रि जागरण के लिये पिता तथा अनेक अन्य जनो के साथ घर के समीप ही एक शिवालय मे जा पहुचा, वहाँ सभी भक्त-जन तो भूख और आलस्य के मारे रात को अर्धरात्रि से पूर्व ही निद्रादेवी की गोदी मे जा विराजे, पर इसकी आँखो मे नींद का कही नामोनिशान भी था ? जैसे ही निशीथ वेला में रात के सन्नाटे मे गणेश वाहन मूषको ने शिव पण्ड पर चढे अक्षतो मेवा मिष्ठान्नों फल फूलो को खाना आरम्भ किया कि इस किशोर के मन मे विद्रोह के स्वर उठ पड़े· हैं ? यह भी कोई देव है, महादेव है दानव सहारक दनुज दलमंजक देवता हो सकता है जो अपने पिण्ड पर कूदते मचलते चूहों को भी नही हटा सकता और भक्ति भावना से भरे पुण्य प्रसाद को उच्छिष्ट होने दे रहा।' पिता को जगा कर पूछा तो यही उत्तर मिला: 'बेटा यह तो मूर्तिमात्र है, भगवान् शिवशकर तो इससे भिन्न हैं चराचर के स्वामी

चरनियामकः प्रभुरस्ति" इति चेतसि निवेशयन्, भव्याशयं सर्वदा तद्रहस्यान्वेषणाय रहसि विहितावसथः शैशववशा-दुन्नस्ताच्छन्दनिरर्गलस्वभावो न कुत्रचिन्मामसमरीरमत्।

चन्द्रशेखरः—(स्वगतं) फलित मनोरथसंतानकेन। (प्रकाश) ततः किं भूतम्?

सौमित्रः—तदेकदा सहोदरायां कालधर्ममुपागतायां संजातविश्व-निर्वेदः पुनरपि कियत्कालान्तरं पितृभ्रातृमरणमालोक्य सहसा समुद्वेल्लितः संकल्पसागरः।

चन्द्रशेखरः—ततस्ततः?

सौमित्रः—ततस्तद्दिने निर्वेदमापद्यमानं, लग्नशृङ्खलानिगडि-तोऽतोऽयं न चापलं दर्शयिष्यति इति बन्धुजनबोधनामनुरुध्य प्रणयपरवशेन तातेन विधित्स्यमाने वैवाहिकमङ्गले सहसा पलायितः, नाद्यापि तस्य समुपलब्धिः।

चन्द्रशेखरः—हन्त। महान् व्यवसायः, भवतु, समाचारस्तु नियम-विधिम्। कार्यातिपाताद् गच्छामि, एष पुरोवर्ती घट्टः खलु। (स्वगतं) किमिदं शृणोमि, यथा मया पूर्वसङ्कल्पत तथैव परिणतम्। अघटनापटीयसी विश्वनायकस्य क्रियापरिपाटी। (विचिन्त्य) भवतु, एवं करिष्यामि। साम्प्रतं गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः)

सौमित्रः—अहो। एषा पुण्यप्रवाहा सरस्वती। तत् प्रविशामि (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति सरस्वतीमन्दिराभ्यन्तरं मूलशंकरः सकाषायवसनः)

कैलाश पति परमेश्वर।' पर किशोर शंका समाहित न हुई वह बड़बड़ाता घर गया. भोजन किया और सच्चे कैलाश पति महादेव की खोज को मन विकल हो गया और कहीं लगता ही न था उसका मन।

चन्द्रशेखरः—(स्वगत) अच्छा तो फललाभ तो हो ही गया, (प्रकाश में) फिर क्या हुआ ?

सौमित्रः—फिर तो एक दिन इस किशोर की सहोदरा बहन का निधन हुआ, यह मृत्यु की पहेली सुलझाने में रह गया. कुछ समझ न पाया. आगे कुछ समय के पश्चात् इसके दादाजी का स्वर्गवास हो गया तो यह बहुतही दुःखी हो उठा। सब लोक इनको चाचा चाचा कहते थे पर ये ये दादा ही। पर मूलशंकर को ये बहुत बहुत प्यार करते थे। इस मृत्यु ने इस किशोर के उलझे विचारों में चिनगारी लगादी, यह संकल्पों के सागर में डूबने उतराने लग गया था।

चन्द्रशेखरः—आगे फिर क्या हुआ ?

सौमित्रः—तब उस दिन के बाद दुःखी मूलशङ्कर को विवाह की जञ्जीरों से बाँधने की तय्यारी होने लगी; सब सोचते थे कि विवाह बन्धन में बँधकर यह सारी चंचलताभूल जायगा पर इस घटना के साकार होने से पूर्व ही मूलशंकर तो घर से भाग निकला अभी तक नहीं मिल रहा है कहीं !

चन्द्रशेखरः—ओहो ! बड़ी विपदा आ पड़ी। यह तो ! अच्छा आप अपनी विधि निबटाइये। मुझे विशेष कार्यवश होकर जाना पड़ रहा है, यह सामने ही तो घाट है। (स्वगत) यह मैं क्या सुन रहा हूं जैसा मैंने सोचा वही तो होते रहा है सदा। विश्वविधता की विविधताएँ हैं। (सोचकर) रहने दो, ऐसा करूंगा, अभी तो चला चलता हूं। (चला जाता है)

सौमित्रः—कितनी पवित्र नदी है यह सरस्वती, तो नहा लूं अन्दर जाकर (चला जाता है)

(इतने में पीत वस्त्र पहने हुआ मूलशंकर सरस्वती के मन्दिर में प्रविष्ट होता है।)

मूलशङ्करः—जय जय विश्वनाथ ! जगत्पते !

> नमस्त्रयीवाङ्मयबोधिताय ते
> सनातनाय स्फुरदात्मसंविदे।
> जगत्त्रयस्थापितभिन्नमूर्तये
> नमः परस्मै परमात्मने नमः ॥ २३ ॥

समागतोऽस्मि सिद्धपुरं, अपि नाम दर्शयिष्यति फलं भूतभावनः। इमानि काषायवासांसि परिधाय मया नाम समञ्जस विहितम्। यदि अत्रानेकसिद्धसेविते स्थाने संप्राप्येत जनिमरणनिवारणाय सञ्जीवनौषधिस्तापत्रयोन्मूलनी ! भगवन् ! करुणां कुरुष्व । विधेहि साफल्यं जन्मनः (विलोक्य) अये ! एतत् सरस्वतीमन्दिरम्। अत्र गत्वा विलोकयामि यदि नाम भवेत् निवासयोग्यं स्थानं, अथवा कस्यापि महात्मनः संगतिः सम्भवेत् । (दृष्ट्वा) अहो विविक्तस्थान-मेतत्। सम्प्रति विश्रमाय निजासनपरिग्रहं करोमि ।

[इति तिष्ठति एकान्ते, ततः करसनजी प्रविशति]

करसनजी:—अहो चिरायितं सौमित्रेण, किं सवापि गतो भविष्यति ? कृतं पर्यन्वेषणेन । विपर्यस्ते दैवे को हि जन्तुः कृतकृत्यो भवति ? [विलोक्य] अहो! रमणीयं विशालं मन्दिरं तद् यावन्नागच्छति सौमित्रस्तावत् पर्यटामि ।

[ततः मूलशङ्करः श्लोकं पठति । पिता शृणोति]

मूलशङ्कर - जय जय विश्वनाथ ! जगत्पते !

'नमस्ते त्रयी वाङ्मयरूप को हो

अनन्तादि मध्यात्म शून्येश को हो

त्रिलोकीपते ! विश्व मूर्ते परेश !

शुभानन्द सन्तानकर्त्त ! महेश" ॥२३॥

सिद्धपुर तो आ गया है, यहाँ के आगमन का सुफल भी भगवान् शिवशंकर की कृपा से मिल ही जायगा। इन पीत वस्त्रों को पहनकर मैंने किया तो आश्चर्य ही है। हे प्रभो ! तुम्हारी कृपा से इसी पुण्य भूमि मे, सिद्धजन सुसेवित पुनीत धरती पर यदि जीवन मरण के बन्धनो को छुड़ाने वाली महौषधी मिल जावे तो ! भगवान् अनुग्रह कीजिये देवदया-निधे ! मेरे जन्म को सफल बना दीजिये (देखकर) अरे ! यह तो सरस्वती का मन्दिर है। इसमें जाकर देखूं–हो सकता है यहाँ निवास की व्यवस्था स्यात् हो जाय किसी साधु महात्मा की सत्संगति मिल जावे (निहार कर) वाह वाह ! यह तो बड़ा ही एकान्त स्थल है। अभी तो विश्राम करलूं यही पर।

एकान्त मे आसन बिछा लेता है, इतने में करसनजी प्रविष्ट होते हैं)

करसनजी:– भले आदमी सौमित्र ने तो देर लगा दी है। क्या और कही चला गया है ? नही कही ढूण्ढ रहा होगा। भाग्य के वाम होने पर किसको सुख मिला है ? (देखकर) यह मन्दिर तो बडा भारी है, जब तक सौमित्र नही लौट आता तब तक घूम ही लूं मन्दिर मे।

(तभी मूलशकर श्लोक पढता है और करसनजी सुनते हैं

मूलशङ्करः—*जय जय निखिलनायक ! जय !*

> नमस्ते देवदेवाय दिव्यधाम्ने महात्मने ।
> नमस्ते जगदानन्दहेतवे परमात्मने ।। २४ ।।

करसनजीः—[स्वगत] कस्याय स्वरसयोगः ? ननु खलु परिचित इव तर्कयामि । [विचार्य] आः ज्ञातं, मूलशङ्करेण भाव्यम् ।

[ततः मूलशङ्करसमीपं गच्छति । मूलशङ्करोऽपि तात पश्यति सभयम्]

करसनजी.—[दृष्ट्वा] वत्स मूलशकर !

मूलशङ्करः—[सभय] हा तात !

करसनजीः—[परिचित्य] हा पुत्र ! हा वत्स !!

[मूलशङ्करः पादयोः पतति]

करसनजीः—(कापायवसन विलोक्य, सक्रोध) आः पाप ! वंशविप्लावक ! कृतान्त ! पांसुल ! सूतापसद ! किमिद व्यवसितम् ? नृशस ! माता पितरौ जहतः क्रूरस्य करुणालेशोऽपि मास्पृशत्तव हृदयम् ? जाल्म ! किं दर्शयसि मुखम्? धिक् त्वादृशान् कुलकलङ्कभूतान् कुमार्गे पतितान् पुत्रकीटान् !

(इति शरीरात् वस्त्राणि उत्तारयति; मूलशशकरः पुनः पितुः पादयो. पतति)

मूलशङ्करः—तात, तात ! क्षमस्व क्षमस्व !! दयस्व ! मपय मे बालिशताम् !!

मूलशङ्करः-जय जय भवनायक ! जय जय !

'देवाधिदेव भवनाथ नमो नमस्ते !
ये दिव्य धाम ! परमेश्वर विश्वकर्ता
तू ही समस्त सुखकारण दुःखकर्ता !
आनन्द मङ्गल विधायक विश्वभर्ता ॥१४॥

करसनजी:—(स्वगत-मन में) यह किसकी स्वर लहरी है ? लगता तो है यह परिचित स्वर है (विचार करके) ओ समझ गया, यह मूलशकर है) वे मूलशकर के पास जाते है भय-भीत मूलशंकर पिता को देखता है)

करसनजी:—(देखकर) पुत्र ! मूलशंकर !

मूलशङ्करः—(डरकर) हाँ, पिता जी !

करसनजीः—(पहचान कर) हाँ बेटा ! हाँ, मेरे लाल !

(मूलशंकर चरणों में गिर पड़ता है)

करसनजी:—(पीत वस्त्रों को देखकर गुस्से में) अरे पापी ! विप्र वंश ध्वंस पतित ! कुपुत्र ! अरे निर्दयी ! यह क्या किया तूने ! पुरुषाधम ! माता पिता को छोड़ते हुए तेरे हृदय में थोड़ी सी भी करुणा नहीं जागी ? अनार्य ! जालिम ! क्यों दिखा रहा है अपना मुख ? तुझ से कुलकलंकी कुसन्तान को धिक्कार है, धिक्कार शतवार।

(इतना कहकर मूलशंकर के शरीर से पीत वस्त्र उतारते हैं, मूलशकर फिर से चरणों में लोट जाता है।

मूलशङ्करः—पूज्यपाद ! पितृचरण !! पितृचरण!!! क्षमा कर दीजिये एक बार प्रभो ? मेरी मूर्खता पर दया कीजिये पिताजी !

पापे निसर्गकुटिले मलिनस्वभावे
मुग्धे विवेकविकले विषमे विधेये।
कारुण्यलेशरहितेमयि मन्दभाग्ये
हा, तात, तात! करुणा कुरुष्व !! २५ ॥

करसनजी:—दूर व्रज दुरात्मन्! धमलुण्टाक!

(ततः प्रविशति सौमित्रः)

सौमित्रः—क्षमस्व, क्षकस्व; महाराज! वत्सस्य दोषम्।

करसनजी:—[विलोक्य] ननु एह्येहि सौमित्र! एव वतते। पश्य पापपासुलम्। [सक्रोध] पश्यति मूलशकरम्]

सौमित्रः—[स्वगत दृष्टवा] अहो! नैसर्गिकमूर्जस्वलं। [प्रकाश] भगवन्! क्षन्तव्योऽय शिशुः, न गतं शोचनीय, भवितव्यताक न खलीकरोति? निरवग्रहो विधिः सज्जनमपि विडम्बोयति। मूलशकर! न त्वया समीचीन व्यवसित, दुःखाकर हि तनयवियोगः; शैशव एव स्वाच्छन्द्य भाग्यवन्तमपि विनाशयति पुरुषम्।

मूलशङ्कर.—[सविनयम्] महाभाग! क्षन्तव्योऽस्मि।

करसनजी —धूर्त! ननु, पुनरपि गमिष्यसि?

[इति ताडयितु व्रजति, मध्ये]

सौमित्रः—भगवन् कोऽयं व्यामोहः?

[इति निवारयति]

करसनजी –[सौमित्र दृष्टवा]सौमित्र! अस्मात इन वय लक्ष्यसे!

सौमित्रः—अहमपि सरस्वतीतीरे कस्यचित् मुसलमूलशंकरस्या-त्रागमन विदित्वा प्रत्यावृत्तः।

"मैं पाप पंक गतदुर्मति पुण्य हीन'
सद्बुद्धि शून्य अघ मण्डित दीप्तिहीन।
मैं दु:ख पापमय मंगल भाव दीन!
हे तात! आप करिये करुणा प्रवीन ॥१५॥

करसनजी:—भाग न पापी यहाँ से धर्म लुटेरे!

(इतने में सौमित्र प्रविष्ट होता है)

सौमित्रः—महाराज। क्षमा कर दीजिये इसे, बालक ही तो है यह।

करसनजी:—(उसकी ओर देखकर) अरे भाई सौमित्र! यहाँ आ जाओ तुम मेरी ही पास; यह है वह कुल घातक देख लो इसे। (क्रोध से देखते हैं मुलशकर को)

सौमित्र:— (मन में ही देखकर) क्या बढ़िया है स्वाभाविक तेजस्विता इसमें। [प्रकाश] भगवान्। क्षमा दे दीजिए अब तो इसे। भवितव्यता किसको बुरा नहीं बना देती है? यह तो बच्चा जो ठहरा, विधाता पर किसका वश चलता है? यह तो सज्जनों को भी छिलां कर देता है। मूलशंकर। यह तुमने अच्छा नही किया; सन्तान का वियोग अति दु:सह होता है। शैशव की स्वच्छन्दता भाग्यशालियों को भी तोड़ मरोड़ कर रख देती है।

मूलशंकर —(हाथ जोड़कर) महाशय। पितृपाद। क्षमा चाहता हूं।

करसनजी:—धूर्त! नहीं तू फिर भी जायेगा? घर से फिर भागेगा?

(मुलशंकर को मारने दौड़ते हैं बीच में)

सौमित्रः—महानुभाव। यह क्या कर रहे हैं? (रोकता है)

करसनजी:—(सौमित्र को देखकर) क्यों सौमित्र! बिना स्नान किये ही लौट आये लगते हो तुम तो?

करसनजी:—भवतु, अद्य अत्र स्थित्वा सरस्वतीस्नानपुण्यमनुभूय विभावर्य्यां तीरोपकण्ठे पथिकाश्रमे स्थातव्यम्। [मूलशकरं प्रति] पुरतो भव। मूढ!

सौमित्र:—एहि मूलशकर! एहि!!

[इति सर्वे निष्क्रान्ता]

[स्थान पथिकाश्रम:, मध्यरात्रिसमय:, चन्द्रशेखर.]

चन्द्रशेखर.—[सवितर्कम्] सरस्वतीमन्दिरस्य नेदिष्ठे मूलशकर. सह जनकरक्षकाभ्यां रात्रिवासाय कृतस्थितिरिति गुणेन्दुना निवेदित; एष पथिकाश्रम:। अहो! एकतान विद्योपाजन मूलशंकरस्य महान् विनिपात: सम्प्रति। जनकगृहीतस्य तस्य न भविष्यति पुनर्मोक्ष:। अहो! तादृक्षाणा स्वयंस्फुरितशेमुषीणा गुणार्जनसमूर्जिताना निग्रहो नाम निदानमध:पातस्य। एवं न जाने कियन्तो भारतीपुत्रा अन्धतामिस्त्र चानुभवन्ति ... भवतु। तत्रैव गच्छामि। [विलोक्य] एतन्मन्दिर, इय धर्मशाला। प्रविशामि। कथ अपावृत द्वारम्? अहो! सर्वत्र बलीयानन्धकार, कथमुपलब्धिर्भवेत्? [आकर्ण्य] हन्त कस्यापि पदध्वनि: श्रूयते। जाने, इत एवागच्छति। [तूष्णीमास्ते]

[तत: प्रविशति मूलशकर]

मूलशङ्कर:—[सखेद] हा! धिक्! निगृहीतोऽस्मि तातेन। अवश्य नेष्यति गृहम्। किं करोमि? उन्मूलिता समुल दैवेन मे मनोरथलता। भग्न: समुत्साह.। भगवन्! दर्शय, दर्शय दयामय! पन्थान मे।

सौमित्र:---सरस्वती के तट पर मैंने मुलशंकर के यहाँ आने की बात सुनी तो विना नहाये ही लौट गया।

करसनजी:---अच्छा, चलो अभी तो सरस्वती के पुण्य सलिल में गोता लगा लें, और रात को सरितातीर की धर्मशाला में विश्राम करेंगे।

(मूलशंकर से) दुष्ट ! चल, आगे आगे !

सौमित्र:---इधर आ मूलशकर ! इधर आ।

(सब चले जाते है)

(स्थान धर्मशाला, आधी रात का समय और चन्द्रशेखर)

चन्द्रशेखर:---(सोचता हुआ) गुणेन्दु ने बताया था कि सरस्वती के तीर के निकट की धर्मशाला में ही मूलशंकर अपने पिता और रक्षक के साथ ठहरा हुआ है। यही तो है धर्मशाला ! अब तो वेचारे मूलशंकर का विद्योपार्जन की कामना समाप्त हो गयी ! पिता के बन्धन के क्या छूट पायेगा यह फिर से ? वस्तुतः ऐसे तेजस्वी पुरुषों का गृहस्थ बन्धन बड़ा ही पतन का कारण बन जाता है। इसी प्रकार से न जाने कितने कितने भारतीय सुपुत्र अन्धकार में भटकाये जाते हैं ! ------ अच्छा वहीं पर चला चलूं।

(देखता हुआ) यह तो मन्दिर है और यह रही धर्मशाला। अन्दर चलूँ। पर यह द्वार कैसे खुला है ? कितना घना अन्धकार है, कैसे मिला वह ? (सुनता हुआ) अरे ! यह तो किसी के पद चाप सुनायी पड़ रहे है। लगता है, इधर आ रहा है। चुपचाप खड़ा हो जाता है)

(मूलशंकर आता है)

मूलशंकर:---(दुखी होकर) क्या करूँ, अब तो पिताजी ने पकड़ लिया है, घर जाना ही होगा, भगवान् सारी योजना धूल में मिला दी हैं। उत्साह मिट चुका है। भगवान् मेरा मार्ग दर्शन कर !

[इति चिन्तयति]

चन्द्रशेखर :—कथं स एव स्वरसंयोग:, व्यक्त मूलशङ्कर एव। [समीपं गत्वा] शङ्कर ! मूलशंकर ! !

मूलशङ्कर :—[सभयं] ननु को नामाह्वयति माम् ? समुत्थित: किं तात: [विलोक्य] नहि, सौमित्रोऽपि निद्राति। कथं कोऽपि न दृश्यते ?

चन्द्रशखर :—मूलशंकर ! शंकर !

मूलशङ्कर :—हन्त । स एव शब्द:। को भविष्यति। ननु परिचितमेव मन्ये [प्रकाशं] कस्त्व ईदृशे समये मूलशंकरस्य श-कर: ?

चन्द्रशेखर :—[समीपं आगत्य] महाभाग ! अहमस्मि तव परिचित: पथिक: शिवरात्रिसमयस्य सिद्धपुरनिवासी।

मलशङ्कर :—कथं महामान्य: चन्द्रशेखर: किम् ?

चन्द्रशेखर :—अथ किम् ? वत्स !

मूलशङ्कर :—(सहर्षं) नमस्ते महात्मन् !

चन्द्रशेखर :—[ससभ्रमं] शंकर ! निश्चितं ब्रूहि। कस्ते व्यवसाय: ?

मूलशङ्कर :—[स्वागतं] विदितोऽनेन वृत्तान्त: [प्रकाशं] किं वदामि ? दोलायित मे मानस, न निश्चयमधिगच्छति। तत्त्वमेव दर्शय मार्गम्।

चन्द्रशेखर :—विश्वचक्षुर्भगवान् दर्शयिष्यति तव सरणिम्। [इति कर्त्तव्य चिन्तयति]

मूलशङ्कर :—[स्वगतं] हन्त ! अतिमुग्धोऽस्मि। किं करोमि ?

चन्द्रशेखर . यह तो वैसा ही स्वर लग रहा है मूलशकर जैसा (निकट जाकर) शकर ! मूलशकर !!

मूलशङ्कर : (भयभीत हुआ) कौन बुला रहा है मुझे ? पिता जी क्या जग गये हैं ? (देखकर) नही तो, सौमित्र भी तो खुर्राटे भर रहा है। क्यो दीख नही रहा कोई भी ?

चन्द्रशेखर : मूलशकर !

मूलशङ्कर · वैसा ही शब्द है यह, कौन होगा यह ? लगता तो कोई परिचित ही है। (प्रकाश मे) महाभाग कौन हैं आप ऐसे समय मे मुलशकर के कल्याण करने वाले ?

चन्द्रशेखर : (निकट जाकर) महाशय मैं हू तुम्हारा सिद्धपुर वासी परिचित पथिक जो शिवरात्रि के समय टकारा मे था।

मूलशङ्कर : क्या आप चन्द्रशेखर हैं ?

चन्द्रशेखर : और क्या पुत्र !

मूलशङ्कर : नमस्ते महाराज !

चन्द्रशेखर : (सावधानी पूर्वक) शकर ! क्या कर रहे हो तुम, सच सच बताओ ?

मूलशङ्कर : (मन मे) लगता है इनको समाचार ज्ञात हो गया है (प्रकाश पे) क्या बताऊं ? मेरा मन तो चचल हो उठा है। कही चैन नही मिल रहा, कृपया आप ही कोई मार्ग सुझाइये !

चन्द्रशेखर : विराट् पुरुष भगवान् ही तुम्हारा मार्ग दर्शन करेगे। (इस प्रकार कर्तव्य का चिन्तन करता है)

मूलशङ्कर : (स्वगत) हाय राम ! मै तो कुछ नही सोच सकता ! क्या करूं कहां जाऊं ?

अन्तस्तत्त्व कलयति महामोहमभ्येति चेतः
चिन्ताचक्रं श्रयति, सकलोन्मेषशून्यं च चक्षुः ।
प्रादुर्भावादुपहतविधेर्मुह्यतीवान्तरात्मा
प्रत्यालिङ्गत्यविरतमिद ज्योतिरात्मीयमन्तः ॥२६॥

[इति चिन्तयति]

चन्द्रशेखर :—[मूलशंकर विलोक्य स्वगतं] अहो ! कामं व्याकुलोऽयं शिशुः, अथवा किं करोतु मुग्धचेताः ? एकतो विनिपातः, परतः परमव्यामोहः ।

वारं वारं तिरयति मनस्येकतः स्नेहपाशः
संकल्पेन क्षिपति पटुतामन्यतः स्वात्मभावः ।
योगस्तावत्तरलघटनोद्बोधसर्वंकषोऽप्य
प्रत्यावृत्य प्रसरति वपुर्मन्दिमानं विधत्ते ॥ २७ ॥

[प्रकाशं] मूलशंकर ! ननु कां विकल्पनासोपानश्रेणिमारूढोऽसि ?

मूलशङ्कर :—किं भणामि ? महाभाग ! मम तावत्—

स्नेहाकुलः परमधर्मपरः पिता मे,
निस्पन्दिमानसमय ज्वलतीव कायः ।
वृत्तिर्विवेकविधुराऽम्बरचुम्बिनीव च
किं वा करोमि विषये ननु मन्दभाग्यः ॥२८॥

चन्द्रशेखर :—ननु द्रढीयान् संकल्पस्तव निजसाध्यसंपादनाय ?
मूलशङ्कर :—ओम् ।

'अन्तस्सार बता रहा सुपथ तो, मोहान्धहै मानस,
चिन्ताचक्र चलायमान बहुधा है आँख अपि रुद्धसी।
दुर्भाग्योदय हो रहा है नित ही, आत्मा हुआ मुग्धभी,
तो भी ज्योति उभार से भर रहा शुद्धांतरात्मा मम।'

(सोच मे पड़ जाता है)

चन्द्रशेखर : (मूलशकर को देखकर मन मे) ओहो ! यह किशोर तो बहुत ही व्याकुल हो रहा है। परन्तु कर भी क्या सकता है कोई आत्मा का मारा ? एक ओर से पतन है और दूसरी ओर से भयकर मोह।

स्नेह पाश बाँध रहा है बार बार इसके मन को,
सघन, विचार कथित करते है इस बालक के तनको
सकल स्वार्थ के भाव फँकता यत्न शक्ति यह कितना है ?
योग साधना निरत इसीका सिद्ध दशा मे कितना है ?
आगे पीछे गमन करके मन्दिता को बढ़ाता,
जाने क्या २ लिखित करता जा रहा है विधाता ॥२७॥

(प्रकाश मे) मूलशकर ! किन सोच विचारों के चक्कर मे फँस गये हो तुम ?

मूलशङ्कर : क्या कहू श्रीमान् ? मेरा तो—

"स्नेहाधीन परार्थभाव मन मे मेरे पिता के बमा,
मेरा देह सदैव अन्य सुख के हेत्वर्थ सन्नद्धसा।
प्राय: वृत्ति शुभापरार्थ-घटिका विज्ञान सद्भाविनी,
क्या बोलू तज मैं कहाँ अब चलू, दुर्भावविध्वंसिनी ॥२८॥

चन्द्रशेखर : क्यो तुम्हारा सकल्प साध्य प्राप्ति के लिये सुदृढ है न ?

चन्द्रशेखर :–ततः सर्वथा शिवतातिः, कल्याणं करिष्यति जगन्नायकः; सम्प्रति विहाय पितरं मया सह समागच्छ। फलिष्यति ते मनोरथः।

मूलशङ्कर :–ननु वञ्चनाप्रत्यवायः।

चन्द्रशेखर :–मा मोहमावह। नास्ति प्रत्यवायः सत्यपथपथिकस्य ते, तत त्वरितमेहि; आगच्छ।

मूलशङ्कर :–क्व नेष्यति भवान् माम्?

चन्द्रशेखर :–ननु वत्स! सर्वं ज्ञास्यसि, अहं तथा करिष्ये यथा न त्वां पुनस्तातस्ते द्रक्ष्यति।

मूलशङ्कर :–[स्वगत]

किं गच्छामि विहाय पूज्यपितरं? स्नेहावबद्धं मनो-
ज्योतिः प्रेरयतीव पुण्यपदवीं, भोगेन किं भूयसा?
हेयं स्वार्थवशादिदं प्रणयिनां वृन्दं नृशंसात्मना।
स्थेयं वा किमु कुत्सितान्धतमसः पादेन भग्नात्मना॥२६॥

[प्रकाश] महाभाग! किं करोमि, मुग्धोऽस्मि।

[इति अश्रूणि पातयति]

चन्द्रशेखर :–वत्स! सर्वथा भव्यं विधास्यति भूतभावनः, कथं [illegible] मोहावसार एष ते? कथं न विविदिषा सत्यस्य [illegible] परात्मनः? स्मर स्मर, शिवरात्रिमहोत्सवम्।

मूलशङ्कर :–स्मरामि, स्मरामि, तदेव निदानं गृहत्यागस्य।

चन्द्रशेखर : तब तो भगवान् शिवशकर जगन्नाथ अवश्य ही तुम्हारा कल्याण करेंगे। चलो अभी मेरे साथ! पिता को छोड़ कर! तुम्हारा मनोरथ अवश्य फलेगा।

मूलशंकर : किन्तु विश्वासघात करना पाप जो लगेगा।

चन्द्रशेखर : मोह करने की आवश्यकता नहीं है। सन्मार्ग पर चलने वाले तुम्हे किसी प्रकार का पाप नहीं लगेगा। तो शीघ्रता करो, चले चलो मेरे साथ।

मूलशकर:—कहाँ ले जाओगे मुझे ?

चन्द्रशेखर:—देखो पुत्र मेरे साथ चल पड़ो, तुम स्वयं जान जाओगे कि तुम कहाँ जा रहे हो! मैं तुम्हें ऐसी जगह ले जाऊँगा जहाँ तुम्हारे पिता तुम्हें देख भी न सके।

मूलशंकर:—(स्वगत मन में)

क्या मैं छोड चलू, महाजनक को यों, तुच्छ सा आज ही।
मेरा तो मन मोहशील अति है, है प्रेरणा दीप्त हो।
भोगों से भव में न पुण्य मिलता, संत्याज्य है स्वार्थिता,
सच्ची केवल ईश लाभ करती, भव्यतार्थ तेजस्विता ॥२९॥

(प्रकाश मे) भगवान्! क्या करूं मोह, मेरा पिण्ड नही छोड़ता।

(ऐसा कह कर रोता है)

चन्द्रशेखर—वत्स! भगवान् कैलासपति महादेव सब कुछ शुभ करेंगे। ऐसे समय मोह करना उचित नही है। याद करो न शिवरात्रि की स्यायी निशा का। क्या सत्य शिवरात्रि की इच्छा नही है अब ?

मूलशकर:—खूब स्मरण है मुझे! तभी तो गृहत्याग किया मैंने!

अद्यापि तिष्ठति दृशोस्तदमेयरूप
ज्योति. पर चरमधाम मन.प्रविष्टम् ।
येन क्षण तिमिरपुञ्जमपास्य दिव्य
चैतन्यमर्पितमहो हृदये मदीये ।।३०।।

चन्द्रशेखर :–एहि, एहि । मा निश्चय जहीहि ।

मूलशङ्कर :–[चिन्तयित्वा] प्रभो ! चराचरात्मन् ! एप ते शिशोश्चरणावकाश: [तातं प्रति] पूज्य ! मर्पय, मर्पय वालिशस्यापराधम् । गच्छामि, प्रियतात ! एप ते शिशोः पश्चिमः प्रणामाञ्जलि:; नहि तेऽतः पर मूलशंकरस्य मुखदर्शनम् ! हा मात: ! अमृते ! स्नेहतरले ! जहामि त्वां मन्दभागिनीम्; [साश्रु:] आः भ्रमति मे चेतः !

चन्द्रशेखर :—एहि, वत्स ! एहि ।

मूलशकर :– एप आगच्छामि । नमः परमात्मने नमः ।

[इति निष्क्रान्तौ ।]

इति महाभिनिष्क्रमणं नाम द्वितीयांकः ।

"ज्योति: प्रविष्ट मम मसस में—
अभी वो, जो भासती मुखर-सी असमान दिव्य।
मेरे बुझे हृदय में इसने जलाई,
सत्यार्थ लौ न बुझती हठ सेसुभव्या ॥ ३० ॥

चन्द्रशेखर: – इधर आओ इधर आओ, अपने सुनिश्चय को मत छोड़ो !

मूलशंकर:—[विचार करके] हे विभो परमेश्वर चर अचर के स्वामिन् ! यह रहा मेरा शिर आपके चरणों में ! [पिता के प्रति] पूजनीय ! क्षमा कीजिये, मुझ अभागे बालक को अपराध को ! हे श्रद्धास्पद गुरुदेव ! पितृपद ! आज्ञा दीजिये, मैं आपके चरणो मे अन्तिम प्रमाण करता हूं। अब आपको मूलशकर का मुख फिर देखने को नही मिलेगा। हाय री माँ ! पीयूषमयि ! स्नेहपूरित ! यह अभागा आपको भी छोड़कर जा रहा है।

आजा [आसू गिरते है] हाय रे ! मेरा मन चकरा रहा है।

चद्रशेखर:—इधर आओ इधर आओ पुत्र !

मूलाशकर:—यह आया प्रभो ! परमात्मा को शत सहस्र नमन हों !

[दोनों चले जाते हैं]

द्वितीय अंक समाप्त

तृतीयोऽङ्कः ।

॥ यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

(स्थानम्–नर्मदातीरम्, ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्यः । समयः प्रातः)

शुद्धचैतन्यः–(प्रविश्य) जय, जय विश्वम्भर ! जगन्नायक ! समागतोऽस्मि सिद्धपुरात् । तत्र भवतश्चन्द्रशेखरस्य वेदविद्यालयं विहाय तदनुमतः सांप्रतमत्र जनिमरणभयध्वंसिनीं सञ्जीवनौषधिं मृगयितुम् ।

श्रुतं मया कर्णपरंपरया यदत्र नर्मदातीरे प्रत्युत्पन्नविशुद्धधारणाः समाधिमन्तः समस्तयोगपरिकर्मपारदृश्वानः प्रतिवसन्ति । दुर्लभं ननु दर्शनं परमात्मतत्त्ववेदिनाम् । एतदर्थमेव मया निसर्गस्नेहबन्धुरबान्धवजनं परित्यज्य समादृतो महान् आयासः । अथवा किमतिक्रान्तस्मरणेन ? हन्त ! सर्वथा दुरुच्छेद्याः स्नेहपाशाः, येषु निगडितो जन्तुर्न जातु तस्मान्मोचयितुं प्रभवत्यात्मानम् । सांप्रतं मया समूलमुन्मूलनीयास्ते संस्काराः । यतस्ते स्मृता अनुशीलिता वा कर्षन्ति निजपादमूले ।

मान्या हि ते जनकजननीसोदरसुहृदः, परं न हि ते मदीयमानसशोकशल्यमुन्मूलयितुं समर्थाः । आः किमिदं विकल्पयामि ? यत्सर्वथा न शोचनीयं तदेव स्मृतिपथं समागत्य पुनः पुनर्मामाकुलयति । अहो परमं सौम्यमासीच्चन्द्रशेखरस्य विद्यालये । महानुभावः स महात्मा । न तादृशा निसर्गकरुणामृतनिधयः सर्वत्र जायन्ते । ननु तेनैव पुण्यात्मना प्रतिपदं पावनशिक्षामृतसेचनेन तस्मिन्नवसरे मन्दीभूतो मम मनोरथांकुरः प्रपोषितः । किन्तु तत्रापि

"यद् भद्रं तन्न आसुव"

स्थान—नर्मदा का शान्त तट, ब्रह्मचारी-शुद्ध चैतन्य बैठा हुआ, समय प्रातः ९ बजे

शुद्धचैतन्य : जय हो, जय हो भगवान् विश्वनाथ तेरी ! मैं सिद्धपुर से आ रहा हूं, आचार्य प्रवर चन्द्रशेखर के वेद विद्यालय को छोड़कर, उन्हीं की आज्ञा लेकर अभी अभी तो चला आ रहा हूं, मैं जन्म मरण के सुदढ पाशों को काटने वाली सजीवनी सुधा को खोजने के लिए यहां भगवती नर्मदा के पुनीत तट पर।

मैंने भी तो कर्ण परम्परा से वह सुन ही रखा है कि पतित पावनी भगवती नर्मदा के कान्तकूलो पर निवास करते है समाधि सिद्ध योगिराज ! ऐसे महात्माओ के दर्शन अति दुलभ है, इसी लिए तो मुझे अपने भरे पूरे परिवार को सदा के लिये अन्तिम नमस्कार करना पड़ा है। वैसे तो अब लाभ ही क्या है इस अतीत के स्मरण से ? सांसारिक मोहपाशो मे मनुष्य इतना सुदृढ बंधा हुआ है कि छोड ही नही पाता अपने जन्म जन्मान्तरों के बन्धनो को, अब तो मुझसे ये मोहमाया के बन्धन नही सहे जाते।

माता पिता भाई बहन सगे सम्बन्धी सब हैं तो पूजनीय पर, मैं क्या करूं ? ये मेरे मानसशल्य को नही निकाल सके है। छी, मैं भी कहां कहां भटकने लग लया ? मुझे क्या लेना है इन सबसे अब ! छोड़ दिया। ओ हो ! सिद्धपुर मे गुरुदेव चन्द्रशेखर के विद्यालय में बड़ा आनन्द आ रहा था, वे तो बड़े ही भले थे, ऐसे महानुभाव सर्वत्र कहां मिलते हैं ? ये ही तो थे महाशय, जिनकी महती कृपा से मेरा अध्यात्मोन्मुख मन अंकुर

दुर्घटः खलु परमात्मविद्यालाभः। अतस्तमपि विहाय पर्यटामि वात्ययेव जीर्णपत्रमहम्। भवतु गच्छामि नर्मदातीरम्। (दृष्ट्वा) मन्ये, दूरात् कोऽपि सन्यासीव दृश्यते।

शुद्धचैतन्य :–ॐ नमो नारायणाय।

संन्यासी–नारायण ! ब्रह्मचारिन् ! कस्मिन् मठे वससि ?

शुद्धचैतन्य:–भगवन् ! आगन्तुकोऽहं नाहमत्र वसामि।

सन्यासी–किमागन्तुकः ! कस्ते योगपटः ?

शुद्धचैतन्य :–शुद्धचैतन्य इति।

संन्यासी–अपि नाम कृतश्रमोऽसि शास्त्रे ?

शुद्धचैतन्य :–तिमहाराज ! जाने यथामति। अत. परं वर्तते विविदिषा परमात्मतत्त्वस्य येनाहममृतं स्याम्।

सन्यासी–आम्, अमृताय समुत्कण्ठते चेतस्ते ! ब्रह्मचारिन् ! अवाङ्मनसगोचरं तत्तत्त्वम्। तत्प्राप्तये परमकुशला अपि खलायन्ते, मेधाविनोऽपि मन्दायन्ते, धर्मधुरधरा अपि कुण्ठितायन्ते। ततः का कथा परेषां मन्दमनीषिणाम् ?

[शुद्धचैतन्यः तूष्णी भवति]

शुद्धचैतन्य ! क्व ते मातापितरौ ?

शुद्धचैतन्य :–सौराष्ट्रे।

सूखकर भी हरा भरा हुआ था, परन्तु उनके पास लौकिक विद्या तो थी किन्तु परमात्म-विद्या नही थी। अब तो मैं उन्हे छोडकर वैसे ही घूम रहा हूं इधर जैसे आधी के झकोरे से पुराने पत्ते। अच्छा, सीधें नर्मदा के तीर पर चलूं, (देखकर) लगता है, दूरी पर कोई सन्यासी महात्मा है।

शुद्धचैतन्य : (प्रणाम करता हुआ ॐ नमो नरायणाय।

सन्यासी : नारायण! नारायण ब्रह्मचारिन्! कौन से मठ मे निवास करते हो?

शुद्धचैतन्य : महाराज! मैं तो प्रवासी यात्री हूं अभी आया हू यहां पर।

संन्यासी आगन्तुक हो! तुम्हारा गुरुप्रदत्त नाम क्या है?

शुद्धचैतन्य : भगवन्! शुद्धचैतन्य है।

सन्यासी : शास्त्राध्ययन तो किया होगा?

शुद्धचैतन्य : थोडा बहुता, बुद्धि के अनुसार, अब तो एक ही जिज्ञासा है कि परमात्म-तत्व का बोध हो जाय, जिससे मैं अमृत बन जाऊं स्वामिन!

सन्यासी : ब्रह्मचारिन्! तुम्हारा मन अमृत-पान के लिए विकल हो रहा है। यह परमात्म-तत्व तो इन्द्रिया-गोचर है, ईश्वर प्राप्ति मे तो बडे बड़े पथ भ्रष्ट हो जाते हैं, बुद्धिमान् भी विमूढ बन जाते हैं, धर्म-धुरीण भी कुंठित हो उठते हैं। फिर सर्व-साधारण की तो बात ही क्या है?
(शुद्धचैतन्य चुप हो जाता है)
शुद्धचैतन्य? तुम्हारे माता पिता कहा रहते हैं?

शुद्धचैतन्य : सौराष्ट्र मे।

संन्यासी–[स्वगतम्] दृढग्रहाः सौराष्ट्रवासिनः [प्रकाशम्]
अस्ति नवात्र परिचयः ?

शुद्धचैतन्य :–न हि ।

संन्यासी–[विचिन्त्य] ततस्त्वं नर्मदातटनिवासिनां तत्रभवत॰ श्रीपूर्णानन्दसरस्वतीनां शरणमेहि । ते हि महात्मानो वेदान्तविज्ञानां प्रवीणाः परमात्मतत्वं तावद् नोपदेक्ष्यन्ति, यावत् त्वदीयं हृदयं तत्र तादृशां परेषामपि पूतात्मनां संगतो विरजी भविष्यति । यथाऽहं मन्ये तथा सर्वमपि ते फलिष्यति । किन्तु...

शुद्धचैतन्य :–ननु आज्ञापयितव्यः ।

संन्यासी–तदेव यदि भवान् संन्यासदीक्षामङ्गीकुर्यात् ।

शुद्धचैतन्य :–अस्ति ममाऽपि वृत्तिर्भगवन् ! कर्त्तव्यमेव प्रेरितोस्मि । ननु क्वास्ति तेषां मठः ?

संन्यासी–अनेन पथा गच्छता दक्षिणहस्तरथ्यातिक्रमणेन गन्तव्यं भवता, निवासस्थान खलु प्रसिद्धं तेषाम् ।

शुद्धचैतन्यः–अनुगृहीतोऽस्मि । ननु पृच्छामि तत्रभवतां भवतामपि कस्मिन्प्रदेशे निवासः ?

संन्यासी-[विहस्य] वत्स, अहमपि तमेव भगवन्तं सेवे । सांप्रत कार्यान्तर साधयितुं गच्छामि । त्वमपि तत्र व्रज । नारायण नारायण ! [इति गतः]

संन्यासी : (स्वगत) सौराष्ट्र निवासी होते तो बड़े जिद्दी हैं (प्रकाश में) यहां तुम किसी को जानते हो ?

शुद्धचैतन्य : नहीं तो महाराज !

सन्यासी : (विचार कर) तो तुम नर्मदा तट पर योगाभ्यासी माननीय पूर्णानन्द सरस्वती के चरणों में जा रहो। ये प्रकांड विद्वान् हैं वेद वेदांग के ! ईश्वर विषयक उपदेश तब तक नहीं देते जब तक जिज्ञासु के समस्त दोष दूर नहीं हो जाते। मेरी इच्छा यही है कि तुम वहाँ जाकर अपनी मनः कामना पूर्ण करो। किन्तु—

शुद्धचैतन्य : कहिये, कहिये ! सेवक को आज्ञा प्रदान कीजिये न !

संन्यासी : यह तभी सम्भव है जब कि तुम सन्यासाश्रम में दीक्षित होना स्वीकार कर लोगे।

शुद्धचैतन्त : भगवन् ! मैं भी यही चाहता हूं। आपने मेरी ही बात मुझे सुनाई है महाराज ! बताइये तो कहां है उनका मठ ?

सन्यासी : सामने इस मार्ग से चलकर दाहिने हाथ को लांघ कर आगे चले जाना। उनका आश्रम सभी जानते हैं।

शुद्धचैतन्य : अनुगृहीत हो गया हूं महाराज मैं तो। मैं पूछ सकता हूं कि आपका मठ कहां है ?

संन्यासी : (हंस कर) वत्स ! मैं भी उन्हीं महाराज के चरणों में रहता हूं। कार्यवश थोड़ा बाहर जा रहा हूं। तुम वहीं चले जाओ, नारायण ! नारायण ! (संन्यासी चला जाता है)

शुद्धचैतन्यः-अस्तु, तत्रैव गमिष्यामि। [विचिन्त्य] अवश्य सन्यासदीक्षाग्रहण कर्त्तव्यम्। कष्टा ब्रह्मचर्यचर्या। विद्याव्यासग, स्वातन्त्र्य च तिरस्करोति। भवतु। तत्रैव गच्छामि। जय भगवन्! जय!!

[इति निष्क्रान्तः]

[ततः प्रविशति श्रीपूर्णानन्द. सशिष्यः]

पूर्णानंद.—यस्मिन् व्योममरुन्महारसधराभूतात्मकं भूरिश.
सत्ताहीनमदोविवर्तमखिलं ह्याभासिकं दृश्यते।
तत्त्व भाति समस्तभेदरहित मायापरं पावनं
ब्रह्मेति प्रविदा पर परतर सत्यं सदा धीमहि ॥१॥

पण्डित —ॐ नमो नारायण.।

पूर्णानन्द :-नारायण, पण्डितराज! कथ चिरायितम्?

पण्डितः-स शुद्धचैतन्यः सम्प्रत्येव गतो मत्पार्श्वत.। भगवन्, पिपासु. स विज्ञानामृत, प्रतिदिनमभिरुचिस्तस्य वर्धते। अथवा जन्मान्तरीयमान्तर ज्योतिः शतश· सरुध्यमानमपि प्रज्वलति। को हि नाम निरवग्रहगरिमाण निवारयति?

कश्चित्-पण्डितवर्य मयाऽप्यनुभूतम् न जातुचित् अस्मन्मण्डल· मध्ये तादृशः कोऽपि दृष्टचरः। प्रतिभाऽपि नवनवोन्मेष· शालिनी वेदान्त विज्ञानविचाररचनासु दुर्बोधास्वपि त्वरित शङ्काग्रन्थि मोचयति।

पूर्णानन्दः-सत्यम्। अल्पीयान् तस्य समय समागतस्य। इयत्ति समये मनीषिजनकष्टानि तेन तत्राणि स्वशेमुषी· प्रकाशेन विशदीकृतानि।

शुद्धचैतन्य अच्छा तो वही चला जाता हू। (सोचकर) सन्यास दीक्षा तो लेनी ही होगी। ब्रह्मचर्याश्रम की साधना तो बडी ही कठिन है। इस ब्रह्मचर्याश्रम से तो स्वाध्याय और स्वातन्त्र्य दोनो नष्ट हो रहे है। चला चलूं उसी ओर, भगवन् ! शत सहस्र नमन हो, नमन हो · ·

(चला जाता है)

[शिष्यो के साथ स्वामी पूर्णानन्द का प्रवेश]

पूर्णानन्दः—जो देव व्योमजल तेज मरुद् धरा के,
रूपस्थ है सकल विश्व विवर्तभावी।
पूतातिपूत परमेश विभेद हीन,
सत्य स्वरूप कवि वर्य नमोस्तु तुभ्यम्॥ १॥

पडित —ओम् नमो नारायण।

पूर्णानन्द:—नारायण नारायण ! पडित राज ! विलम्ब क्यो हो गया ?

पडित —वह शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी अभी अभी गया है मेरे पास से। भगवन् ! उसकी विज्ञानामृतपान की प्यास दिनोदिन बढ रही है।अथवा जन्म जन्मान्तर की आन्तरिक ज्योति कहाँ रुक पाती है शतसहस्र अवरोधो से भी ? कौन है ऐसा जो ऐसी वैराग्य भावना को रोक सके ?

एक पुरुष —पडितराज ! मेरा भी ऐसा अनुभव है। हमारी मण्डली मे ऐसा कोई प्रतिभावान् है नही और कोई। वेदात के कठिनतम शकाग्रन्थियो को भी बडी सरलता से खोल देता है यह तो !

पूर्णानन्द —सत्य है यह ! इसे आये हुये थोडा सा ही समय हुआ है, तो भी इस अवधि मे वे सभी तन्त्र ग्रथ बुद्धिगम्य कर लिये हैं, जिनके पढ़ाने मे विद्वानो के दाँत खट्टे हो जाते हैं।

पण्डितः–धन्यास्ते शिष्या येषु गुरवः संस्निह्यन्ति । ! भगवन् ! अपि तस्य प्रार्थना भवन्तमनुकूलयिष्यति ?

कश्चित्–को दोषस्तत्र ?

पूर्णानन्दः–महाभाग ! सर्वं जानामि । तथापीदानीतनानां *संन्यासमार्गप्रवृत्तानां संन्यासिनामुभयलोकगर्हितां* दशा-मालोक्य न समुत्सहे तमपि तत्र गर्ते पातयितुम् ।

[पण्डितस्तूष्णीं भवति]

महाशय ! शास्त्रव्यवहारविदूषकैः केवलमात्मभरिता-मात्रव्यापारपरायणैर्ज्ञानशून्यैः संन्यासिभिराकुलीकृतोऽय भारतदेशः ।

आदाय दण्डं परमार्थवृत्ति
ध्रुवं पदं प्रापयितार एते ।
संसारपाथोनिधिकर्णधारा-
स्त्व एव नावं च निमज्जयन्ति ॥२॥

कुक्षिंभरिभ्रष्टजनावकीर्णं
विज्ञानशून्यं धृतधर्मशीर्णम् ।
कर्मन्दिवृन्दं हतपापयुक्तं
वेदान्तशास्त्रं कलुषीकरोति ॥३॥

पण्डितः–सत्यं भगवन् ! सत्यम् । कष्टा दशा वर्तते ।

लोपं लोपं वैदिकादर्शमेव
भञ्जं भञ्जं वर्णनिष्ठानिदानम् ।
नानावेशा दूषिताश्चार्यकल्पा
देशे देशे भिक्षुकाः पर्यटन्ति ॥४॥

पडित —वे शिष्य भाग्यशाली हैं, जिन्हें गुरुजनों का प्रेम प्राप्त होता है। महाराज! आपने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है न?

एक पुरुष —क्या हानि है इसमें?

पूर्णानन्द —महाशय! मैं सब जानता हूं! तो भी वर्तमान समय में साधु-संन्यासियों की दुर्दशा देखकर मन नहीं होता कि इसे भी इसी गड्ढे में ढकेल दूं।

[पडित चुप हो जाता है]

श्रीमान्! शास्त्रीय व्यवहार शून्य हैं ये आधुनिक साधु सन्यासी वर्ग, किन्तु स्वार्थसाधन में पूरे पूरे निपुण हैं, इन लोगों ने भारत को बिगाड़कर रख दिया है स्वार्थ पूरकों ने आज तो।

'जो दण्डधारी परमार्थकारी,
मोक्षाधिकारी करते हमें थे।
संसार अम्भोधि से पारकारी,
वे ही डुबाते तरणी हमारी॥
वे आज उदरायं विभिन्न वृत्ति,
विज्ञान धर्मादि विहीन दम्भी।
उदात्त वेदान्त विकार हेतु,
पापिष्ठ हैं धूर्त विशिष्ट रम्भी॥

पंडित जी —यथार्थ कहते है भगवन् आप! बहुत बुरी हालत है।

घूम रहे हैं देश में ग्राम ग्राम में वंचक सारे,
भिन्न भिन्न रूपों में अगणित, राम शंभु के नाम पुकारे
दूषित चित्त मलिन विधिकारी,
वैदिक धर्म विनाशन—हारे।
वर्णाश्रम की प्रथा मिटाये,
कुक्षिम्भरि ये सांझ सकारे॥ ४॥

पूर्णानन्दः–एव सर्वेषामपि धर्माणां, लौकिकानां व्यवहाराणा च विपर्यस्तः पन्थाः ।

[ततः प्रविशति शुद्धचैतन्यः]

पण्डितः–भगवन् ! इत एवागच्छति सः ।

पूर्णानन्दः–आगच्छतु ।

शुद्धचैतन्यः–[प्रविश्य] ॐ नमो नारायणाय ! नमो वाम् ।

पूर्णानन्दः–नारायण ! वत्स ! विदित मया तवागमनप्रयोजनम् । परंतु तानि हीमानि दुरधिगमानि केवल निरनुबन्धप्रसृतानि स्वैराशयोत्तम्भितानि वचासि, वैषम्ये वा विषादगर्ते मानुषं पातयन्ति । वत्स ! क्षुरस्य धारेय सन्यासदीक्षा । अनया लधिमानमारोप्यते बलादबोधजन्तुः । सर्वथा कल्माणिना त्वयाऽनुगन्तव्या लोकवृत्तयः । ससार-धर्ममनुरुन्धानोऽपि नियमाभिनिवेशी परस्मै पदाय कल्पते । अथवा समये दीक्षाऽपि योग्या । [पण्डित प्रति] अथवा किं मन्यते भवान् ?

पण्डितः–किं वदामि ? शुद्धचैतन्यस्य हृदय मा ..

पूर्णानन्दः–[विचार्य] भवतु युष्माकमभिलषितम् । नास्ति ममाऽपि निर्बन्धः ।

शुद्धचैतन्य :–अनुगृहीतोऽस्मि ।

पूर्णानन्दः–वर्णिन् ? शुभे मुहूर्ते ग्रहणीया दीक्षा । आगच्छतु साम्प्रतमनुष्ठाननियममाराधयितुम् ।

पूर्णानन्द —हाँ, हाँ, यह दुर्दशा तो सर्वत्र हो रही है। क्या धर्म कम, क्या लौकिक वैदिक कर्म।

[इतने मे ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य प्रवेश करता है]

पंडित जी —महाराज वह तो इधर ही आ रहा है।

पूर्णानन्द—आने दीजिये उसे।

शुद्ध चतन्य—ओम् नमो नारायण, आप दोनो को प्रणाम हो।

पूर्णानन्द —नारायण ! नारायण पुत्र ! मुझे तुम्हारे आगमन का कारण ज्ञात हो चुका है। परन्तु केवल कारण विशेष से जन्मी वैराग्य-भावना मनुष्य को विचार भाववश, विषमता अथवा पतन के गर्त मे गिरादिया करती है, इसके कारण ही तो प्राय: लघुता का सचार हो जाता है अज्ञान मनुष्य में। तुम तो पवित्रहो, शुद्ध हो, विशुद्ध भावना को लेकर इस आश्रम मे प्रविष्ट हो रहे हो, गृहस्थाश्रम मे सासारिक व्यवहारों का परिचालन करते हुये भी परोपकार साधा जा सकता है। अथवा कोई हानि नही है, वैराग्यावस्था मे कभी भी सन्यास की शिक्षा दीक्षा ली जा सकती हैं। (पंडित जी से) आप की क्या मर्जी है ?

पंडित जी—क्या कहू स्वामी जी ! शुद्ध चैतन्य का हृदय तो मुझ··· · ···

पूर्णानन्द —(सोचकर) मुझे भी कोई आपत्ति नही है, आपकी इच्छा पूर्ण हो !

शुद्ध चतन्य —बडी कृपा है आपकी।

पूर्णानन्द —ब्रह्मचारिन् ! शुभ मुहूर्त मे ही दीक्षा दी जायेगी। अभी तो मेरे साथ चलो दीक्षा के नियमो का निर्धारण करलें।

[इति सर्वे गताः]

[स्थान हिमालय-टीहरी । शाक्तमन्दिर, सन्ध्यासमयः]

शिष्यः-[प्रविश्य] हन्त भोः, विलक्षणोऽयं शाक्तमार्गः । यत्र प्रत्यक्षसोऽप्यावगमः स्वर्गवासः । समदपूर्णा प्रथीयसी सर्वेन्द्रियाह्लादिनी निरायाससाधिका मुक्तिः । अहो, अस्मद्गुरोः प्रभावः । येन समस्ता धर्माः शाक्तशरणमुपगताः । क्षुद्रजनक्षुण्णाना गगनारविन्दसदृशाना पक्षाणा परेषा मोक्षोपदेशः क्षेपीयान् क्षयिष्ठफलप्रदो न जातु श्रेयसे क्षमते । परमः पन्थाः शाक्तस्य । यस्य महिमानमुदाहरन्ति हरिहरहंसवाहनादयः ।

[नेपथ्ये]

भो भोः शिष्याः ! एष नो गुरुः समादिशत्यद्यवार्षिको महोत्सवः शाक्ताना परमो धर्मः । तत्सर्वे सावधानाः—

विश्रब्धं रचयन्तु पुष्पितलतासंतानसमालिकां
सेकं चन्दनवारिणा च सरणि कुर्वाङ्गणे कौङ्कुमीम् ।
सोत्कर्षं प्रलपन्तु गर्वसहितं शास्त्रार्थवाद परे
मुह्येयुश्च निशम्य य परिगता दीक्षिष्यमाणा जनाः ॥१॥

शिष्यः-(निशम्य) साधु सुविधानकं प्रकल्पितम् । अयि भोः, किमस्माकं सत्यधर्मानुयायिनामाडम्बरप्रपञ्चेन, विशुद्धः सगृतो शाक्यसिद्धान्तः,

तथापि—

बुद्धे न सौगतसिद्धान्ते जनेन ...

(सबका प्रस्थान)

[स्थान —हिमालय का टिहरी नगर शाक्तमंदिर, सन्ध्याकाल]

शिष्य : [प्रविष्ट होकर] हाय रे ! यह शाक्त मत भी बड़ा ही विचित्र है, इस सम्प्रदाय मे ता स्वग सुख प्रत्यक्षीभूत ही है। कामुकता से भरी इन्द्रिय-लोलुपता से शक्ति मिल जाती इसमे, ओ हो ! हमारे गुरु का कितना प्रभाव है ? समस्त सम्प्रदायवादी विद्वान् इनके सामने निरस्त हो गये हैं। सभी तो परास्त हो कर शाक्तधर्म की शरण मे आ गये हैं। शाक्तधर्म के सामने इन सभी सम्प्रदायो की मुक्तियाँ आकाश कुसुम के समान ही क्षुद्र हो चुकी हैं। शाक्तधर्म का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी शक्तिधर्म की महिमाए हरिहर वामनादि गा रहे हैं।

(नेपथ्य मे)

अरे ! अरे ! शिष्यो ! भक्तजनो ! महाराज ने आदेश दिया है कि आज शाक्तो का वार्षिक परमपावन दिन है, काम महोत्सव है; सभी को सज्जित हो जाना चाहिये—

'मार्गों पर छिडकाव चतुर्दिश सभी,
कुसुमगन्ध से भर उठे कक्ष ये,
सभी माग चन्दन जलो मे भरा,
त्रिविधरग की पक्तियाँ शोभलें,
तुम्हे शास्त्रवादो की जीते मिलें,
नये भक्त हृदयो पै हो वन्दना,
मिटा दो तमस साधलो साधना' ॥५॥

शिष्य : (सुनकर) अच्छा आदेश दिया गुरु महराज ने ! क्यो भाई ! इस संसार मे सत्यधर्मानुयायी हमारे इन वाह्याडम्बरो से शाक्तमत का गौरव वढ गया है न ! तो भी—

'हो शुद्ध पन्थ फिर भी व्यवहारिता से,

युक्तं प्रपञ्चविधिना भवितव्यमत्र ।
मुग्धामहो कुलवधूं परिहाय लोको
वारांगनां व्रजति दृष्टकलावताराम् ॥६॥

अथवा पापाचार: परमपि पाप गणयति ।

यथा दृष्टं श्रुतं लोके, येन केनाऽपि वाभवत् ।
तथा मत्वा परं सत्य, लोकाचार: प्रवर्त्तते ॥७॥

(नेपथ्ये)

स्पष्टाष्टप्रतिमूर्तिवैंघवकलं नत्ये तवोच्चावच
ब्रह्माण्डप्रतिघातभीतदिविषज्जेगीयमानक्रमम् ।
अत्यन्तोर्जितसत्वभुग्नभुजगाधीशावलीढं मुहु-
र्मञ्जीरध्वनिमञ्जु देवि ! करुणापूर्ण पदं नोऽवतात् ॥८॥

शिष्य--(आकर्ण्य) अहो प्रवृत्तं भगवतीस्तोत्रम् । तथा चाद्यैव महोत्सव इति श्रुत्वा मोदते मन:,

अधुना--

रसाधीनान् मीनान् च्युतरसमदन्तश्च मदिरां
मुहुः पाय पाय मधुरबकुलामोदमुदिताम् ।
अपारव्यापारैंरशिथिलसमामर्दितकुच
प्रवेक्ष्याम: साकं युवतिभिरहो मोक्षनिलयम् ॥९॥

(इति गत:)

(तत: शैव: प्रविशति)

शैव:--भो भो जना: !

जहित जगत्परिचरण, शरणमुदार व्यथाजलधितरणम् ।
भजत पार्वतीरमणं शमितकृतान्तव्यलीकमहरणम् ॥१०॥

सारी प्रपचविधियां हित साधिकाएं।
रूपाढ्य मंजु वधुएं तजते कुचाली,
वारांगना निरत हो उनको निहाली' ॥६॥
अथवा पापी मनुष्य सभी को पापी समझने लगता है।
'जैसा देखा या सुना है किसी से,
सारे ही तो मानते सत्य ऐसा।
ये ही लोकाचार है, ग्राह्यभूत,
सत्थात्यन्ता धार सम्मान भूत,

[नेपथ्य में]

'देवि शक्ति सदाशुभाविजायिनी, दुःखादिसंहारिणा।
राखे भक्तजनोपसेवित दया अंबोधि सौख्याशया॥
ब्रह्मांडामितघातभीत जपनेच्छा पूरिता सगता,
मञ्जीर ध्वनि मंजु, नृत्यनिपुणा, शेषावलीढासदा' ॥८॥

शिष्य : (सुनकर] अच्छा हो गया है कि भगवती जगदम्बा का पूजा स्तोत्र गाया जाने लगा है। आज ही महोत्सव है यह जानकर बड़ा ही आनन्द हो रहा है मुझे।

इस समय तो—

'प्रवेशेंगे पी पी मधुर मदिरा आज हम भी,
मनोहारी योषायुवति जन के साथ मुदित,
स्तनाभाराक्रान्ता, नयन कमलाकर्षण शुभा,
महा निर्वाणाय विविध रति संभार सदने' ॥९॥

(चला जाता है)

शैव : अरे अरे। भाइयो !
'त्याग विश्व के सकल मोह पाशों को प्यारे !
'व्यथा जाल अमोनिधि के उस पार सिधारो।
भजो पार्वती ईश्वर को, यम भीति भय भंजनको।
पाप ताप के हरण हेतु, भक्ति भाव वश भवरंजन को ॥१०॥

(दृष्ट्वा) एष शिलापट्टः अत्रोपविशामि । (तथा करोति)

(ततः वैष्णवः प्रविशति)

वैष्णव–अरे पाखण्डबहुलं जगत्, यद् भगवन्तं चराचरनायकं कमलापतिं विहाय तदतिरिक्तं देवं भजन्ते जनाः।

नमः कमलसंभवस्तुतिजुषे जगद्व्यापिने
पयोधितनयापयोधरविहारिणे मायिने।
शिवङ्करपदाय ते शिवनुताय कल्याणिने
नमो व्रजविलासिनीवदननीरजातालये ॥११॥

हन्त, अस्मिन् जडताप्राये प्रस्तरप्रचुरे देशे न क्वाऽपि वैष्णवमतस्य गन्धोऽपि विद्यते। निरन्तरं पामरपशुभिः पूरितः प्रदेशः। यत्र तत्रपाशुपतमिश्रितः शाक्तधर्मः स्वानुकूलो हि पर्वतीयानां मधुमांसभोजिनां धर्मः। आगतोऽह पर्यटनाय। किन्तु यत्र यत्र गच्छामि तत्र तत्रोत्क्रामन्ति मे प्राणाः पूतिगन्धेन। अद्य विश्रामाय तदेकान्ते शिखरे वसतिं करिष्यामि। (विलोक्य) अयमत्रापि कोऽपि पाखण्डदण्डः। आः शैवः किमु? हन्त, बीभत्सं दर्शनं दोषावहं च। (विचिन्त्य) अथवा क्व गन्तव्यम्? अत्रैव स्थितिरेकदेशे कर्तव्या। (ततः शैवः पूजां कृत्वा वैष्णवं विलोक्य)

शैवः–भो जनार्दनप्रिय! इत एहि।

वैष्णवः–आः आह्वयति माम्? (तं प्रति) किमस्ति भो रुद्रप्रिय!

(देखकर) यह पत्थर पडा है, चलो इसी पर बैठ जाऊं। (पत्थर पर बैठता है)

(एक वैष्णव प्रवेश करता है)

वैष्णव·—ओ हो ! इस ससार मे कितना पाखंड भरा पडा है, मूढजन भगवान् चर-अचर के स्वामी कमलापति विष्णु को छोडकर, न जाने कितने कितने देवो की पूजा करते रहते हैं !

नमोनमः महान् पद्मापति भगवति देव को,
विश्व व्याप्त चर अचर वश किये रमापति देव को,
पयोधिसुतारमण को, समस्तमायानिधि उपेन्द्र को।
परमपदाभिलाषव्रजवनिताविलासलासकेंद्र को ।।११।।

हाय रे ! जडता से भरे मूर्ति बहुल प्रवेश मे तो कहीं भी वैष्णवो की गन्ध तक नही आती। सारे के सारे पामरो से भरा पडा है यह प्रदेश ! जहां देखो वही पर शैवधर्म से सम्पृक्त शाक्तमत का ही स्वानुकूल होने से प्रचुर प्रचार है पर्वतीयो मद्यमासादि भक्षको मे। मैं तो घूमने फिरने आया हू यहां पर। किन्तु जहां भी जाता हू वही से इतनी दुर्गन्धि आती है कि प्राण निकलने लगते हैं। आज के विश्राम के लिये तो वह एकात पर्वतशिखर ही ठीक रहेगा। (देखकर) यहां पर भी यह कोई पाखडी दडी दीख रहा है। क्या यह भी शैव ही हैं ? राम ! राम ! बडा बुरा दृष्य है पापजनक ! (सोचकर) अथवा जाऊं भी तो कहां ? यही वही ठहर जाऊंगा (पूजा से निवृत्त शैव वैष्णव को देखकर

शैव —अजी भगवान् विष्णु के भक्तराज ! इधर पधारिये।

वैष्णव —आप मुझे बुला रहे हैं ? कहिये महादेव भगवान् के भक्तराज !

शैवः-(स्वगतं) धिक्, सर्वदा परनिन्दाप्रवीणा वैष्णवाः (प्रकाश) ननु किमरे ! शिवनामग्रहणेन ते जिह्वादलनं भवति, येन भगवतः शङ्करस्य नामापि न गृह्णासि ?

वैष्णवः-पिशाचप्रणयी नाम्ना केवलं शोभनः शिवः ।
अनिष्टफलसंवायी यथा च मंगलो ग्रहः ! ॥१२॥

शैवः-(सक्रोधम) आः वञ्चकनन्दन ! पामरापसद ! करुणाकर शङ्करं निन्दसि ? पश्य-

सर्वदा मुक्तसंगोपि य. शास्त्रैकसुलक्षितः ।
कर्ता भर्ता तथा हर्ता त्रयाणां जगतां शिवः ॥१३॥

वैष्णव :-अरे पशो ! किमरे जल्पसि ? न नाम पीता विजया ? शृणु रे ! प्रेतबन्धो !

शिरो जटालं वृषभश्च यानं
वासः श्मशानं सुहृदः पिशाचाः ।
दिशोऽम्बरं भस्म शरीररागः
कथं शिवस्ते जगतां निदानम् ? ॥१४॥

शैव :-आः तिष्ठ रे ! पापिष्ठ ! तिष्ठ, दर्शयामि ।

(इति हन्तुं गच्छति)

(वैष्णवः पलायते)

सदा पालयत्यत्र विश्वं विकीर्णं
कथं भोगिभोगाधिरूढः स विष्णुः ।
परं वञ्चनानायकं कामिनीनां
अहो, साधु चित्रं चरित्रं पितुस्ते ! ॥१५॥

शैवः—(मन में विचार कर) धिक्कार है इन वैष्णवों को जब देखो तब दूसरों की निंदा ही किया करते हैं। (प्रकट में) क्यों रे ! भगवान् शिव के नाम लेने से तेरी जीभ कट जाती थी ? जो मुख से भगवान् शिव शब्द का नामोच्चारण भी नहीं कर रहा !

वैष्णवः—'पिशाच भूत प्रेतों का प्रेमी नाम्ना, हो शंकर,
मंगलग्रहवत् नाम्ना सदा दुष्फल दायक ॥ १२ ॥

शैव—(क्रोधी होकर) अरे पामराधम ! नीच कुत्ते ! भगवान् कैलासपति करुणामूर्ति शिवशंकर का अपमान कर रहा है, तू देख लेना इसका मजा !

सर्वदा मुक्त संसर्गी जो सत्शास्त्रत्वलक्षित,
कर्ता धर्ता संहर्ताशिव, तीन लोकों का रक्षित ॥१३॥

वैष्णव : ओ पशु ! क्या बकवास कर रहा है ? नहीं पी है न तूने भांग ! सुन रे सुन प्रेतात्मन् !

'जटाजूट शिर है, वृषभ यान जिसका,
श्मशानालयी मित्र बन्धू पिशाव,
दिशाए वसन, भस्म ही अंगराग
कहो यही विश्व का हेतु कैसे ? ॥१४॥

शैव : ठहर जा पापी, ऐसे दिखाता हूं तुझे,
(इस प्रकार मारने के लिये दौड़ता है वैष्णव भाग जाता है)

'सदा पालता है यहां सर्व जग को
समासीन है शेष पर कैसे विष्णू ?
अहो कामिनी भोग संसक्त देव,
तुम्हारा पिता कैसे आचारशील ॥१५॥

(नेपथ्ये)

गृह्णन्तु चन्दनरसं चषकेषु नव्यं
सभारमुत्तमजपाकुसुमानि केऽपि ।
शिष्यैः सम गुरुरुपार्जितदिव्यदीक्ष
एव त्रिवर्ग इव मूर्तिधरः समेति ॥१६॥

वैष्णव :–(आकर्ण्य सविनयम्) कथं कुपितो महाभागः ?

शैव :–नाहं कुपितः, त्वया कोपितः कालः ।

वैष्णव :–महाभाग ! क्षमस्व । अथवा नास्ति शिवगोविंदयोर्भेदः । एकतत्त्वमेव परमावसान भवतु । वयं धर्मबान्धवाः । भो किमयं कोलाहलः ?

शैव :-जाने, न भवतः संस्तवोऽत्रस्थितानां शाक्तानां मण्डलेन । शृणु—

आराधनाय जगतां जननीभवान्या
आबाधनाय जननीजनसूतिभीतेः ।
एते महोत्सवसुखं कलयन्ति शाक्ता
द्रष्टुं यदीच्छसि तदा सममेवमेहि ॥१७॥

वैष्णव –एव भवतु । एतदपि प्रत्यक्षीकरणीयं यदि न भवेदन्तरायः ।

शैव :–एहि, एहि ।

[इति गतौ]

[ततः प्रविशति दयानन्दः]

दयानन्द :–ओ३म् नमस्ते पावनाय परमात्मने । विलोकितः पार्वतीय-प्रदेशः । अहो अत्र नामापि न श्रूयते वैदिकधर्मस्य । सर्वतः सनाटीकते काकमण्डलीव वराकी मदिरा-

(नेपथ्य में)

नव चषकोमें लीजिये चन्दनाम्बु,
कुछ जन ले लो फूल हैं जो जपाके,
गुरुवर यह आते साथ ले शिष्यवर्ग,
त्रिगणसम समक्ष प्राप्त विघ प्रतिष्ठ ॥१६॥

वैष्णव : (सविनय सुनकर) महाराज, क्यों कुपित हैं ?

शैव : मैं थोड़े ही कुपित हूं ? कुपित तो तुमने किया है !

वैष्णव : महाभाग क्षमा करें, शिव विष्णु में कोई भेद नही है, दोनों का परमतत्व परमसमाप्ति में प्रतिष्ठित है, हम सब धर्मान्ध हो गये हैं, अरे, यह कोलाहल क्यों हो रहा है ?

शैव : लगता है आपका सम्बन्ध नहीं हो सका यहाँ के निवासी शाक्तों से, सुनिये—

आराधनार्थ जगकी जननी स्वरुपा
आराधनार्थ जननी जनसूनिभीति।
के हेतु शाक्तगण ऊत्सव हैं रचाये,
तो दर्शनार्थ चलिये अब साथ मेरे ॥१७॥

वैष्णव : अच्छा चलिये, इसका भी प्रत्यक्ष करना चाहिये, यदि कोई विघ्न न हो तो।

शैव : आइये, आइये !

[दोनों प्रस्थान करते हैं]

[इतने में दयानन्द का प्रवेश]

दयानन्द : ओऽम् नमस्ते ! पावन परमात्मा को देख लिया है यह पर्वतीय प्रदेश, यहाँ पर तो वैदिक धर्म का कहीं नाम भी सुनायी नही देता, चारों ओर काक मण्डली के समान मदिरा मांस सेवी बेचारे शाक्त ही शाक्त

मिपविपादिनी शाक्तमण्डली। विद्वांसोऽपि कुक्कुरा इव पिण्डलोलुपाः केवल प्रलपंति प्रपञ्चवादम्। निक्षिप्ताः स्मार्तकाण्ठसमेधिते शाक्तभ्राष्ट्रे वेदाः प्रज्वलन्ति! अस्तमितं भूतार्थसत्यम्। प्रपञ्चितः कलिकालमहिमा। अत्र मया निरीक्षितानि निखिलानि तन्त्राणि। घृणाचारदूषितं शाक्तजालम्। [सर्वतो विलोक्य] इदं शाक्तमन्दिरं सर्वतः कृतसंमार्जनम्। आम्, श्रुतं मयाद्य किल निशीथिन्यां महोत्सवः। एतदपि द्रष्टव्य शाक्तदर्शनम्। भवतु, इतो बहिर्गत्वा दूरादवलोकयामि।

[नेपथ्ये]

चुलुकयति यदीयो दुर्विधामर्त्यशत्रु-
प्रचयतिमिरवृन्द सत्कटाक्षप्रकाशः।
शिशिरकिरणभालव्यालभूषाविनद्धं
दिविषदभिनुतं वः शम्भुसर्वस्वमव्यात् ॥१८॥

दयानंद :—[आकर्ण्य] आगताः पिशाचाः। परिहरामि दर्शनपथम्।

[इति गतः]

गुरुः—या देवी सर्वभूतेषु कामरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यैः नमस्तस्यैः नमो नमः ॥१९॥

एकः शिष्यः—

देव! स्पर्धावलीढैरहरहरुदितस्फारगर्वप्रदीप्तै-
र्दैतेयैस्त्रासभाजः श्रितसुरमथनान् पाहि नः शंकरेण।
इत्थं श्रुत्वाऽमराणां वचनमिदमदोऽप्यायलोपाय मक्षु,
दृष्टा सव्याजमव्यात्पदनखलिखितक्ष्मातला पार्वती वः ।२०।

दीखते हैं, विद्वान भी तो पिण्ड के लोभी कुत्तो के समान असत्यवाद का प्रचार करते हैं—भो भो करते हुए ! चारो वेद तो स्मृति पुराणो से दहकाये गये इन शाक्तो के माड में जल रहे हैं; प्राणियो का कल्याणकारी सत्यतिरोहित हो गया है, कलिकाल की महिमा गायी जा रही है। यहाँ पर रहकर मैंने सारी तत्र महिमा को देख ली है। शाक्तो का आचार व्यवहार घृणा से भरा हुआ है, [चारो ओर देखकर] यह शाक्त मन्दिर चारो ओर से स्वच्छ किया हुआ है। हाँ, सुना तो मैंने भी कि आधी रात को यहाँ पर महोत्सव होने वाला है; यह महोत्सव शाक्तदर्शन का विशेष भाग है, अच्छा तो यहां से बाहर जाकर दूर से ही देखूंगा।

[नेपथ्य मे]

रक्षा करे शिव समस्त जगत् सदैव,
व्यालौघ भूषित तनु प्रबलेन्दुमौली,
जो स्वीय भावेन दयालव से मिटाता,
गाढान्धकार-मनुजादि सुखायहन्ता ॥१८॥

दयानन्द :—[सुनकर] आ गये राक्षस, रास्ते से दूर हो जाऊं।

[चला जाता है]

गुरु :—जो देवी सर्वभूतो मे रहती कामरूप से,
नमस्तस्यैनमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनम: ॥१९॥

एक शिष्य :—देवस्पर्धाप्रवीण प्रतिदिन उदितस्कार गर्वोन्नतो से;
दैतेयो से विनीत त्रिदशगणक हे शैवादियो से
ऐसी देवोक्तियो से त्वरित विलय न हो विश्वमाता
रक्षाकर्त्री बनो हे गिरिवर तनये ! पार्वतीत्रे ॥२०॥

गुरु :–[सर्वतो विलोक्य] रमणीयमहो भगवतीमन्दिरम् ! वत्स ! अद्यास्माकं शाक्तानां परमो दिवसः। गच्छ, मन्दिरस्य द्वारमपावृते कुरु! ततः पर पूजां कुर्वन्तु सर्वे।

[सर्वे देवीपूजन विधाय गायन्ति नृत्यन्ति। केचित् मदिरा-पानमपि कुर्वन्ति, पुष्पमालां च धारयन्ति]

देवीस्तोत्रम्

जय, जय, जननि ! क्षिप्तदोषप्रदोषान्धकारस्फुरद्धास्य-चन्द्रच्छविध्यायिभक्तव्रजामन्दसफुल्लसत्कैरवव्रातसपातिपा-दद्वये, अद्वये मोदरत्नाकरे सवदाभास्वरे, दर्पकाखर्वगव-प्रहाणे शसन्मौलिमालानभोवाहिनीलोलकल्लोलविक्षिप्त-पादद्वयाम्भोजधूलीप्रणालीरसाकृष्टसहृष्टनागाभरग्रामणी-शेखरव्राजसंचर्चिते, तर्पिते, भाविते, सर्वदेवात्मिके, सर्वमाया-त्मिके, सवकामात्मिके, सर्वविश्वात्मिके देवि ! तुभ्यं नमः! मथितनिखिलदैत्यसग्रामसहारसखण्डिताङ्गप्रतीकप्रसर्पद्घना-स्त्रक्प्रवाहप्रभाशोणदिङ्मण्डलाकाण्डसभ्रान्तसध्यावधानो-द्धुरश्मामरव्रातदत्तांजलिस्नेहपूजात्मने, विश्वकल्याणसपा-दनप्रस्तुते, सततोद्दीप्तदुर्वारमोहान्धकार व्यथानाशिके, सर्व-दाभामिके, भक्तहृद्वासिके, दीव्यदीक्षात्मके देवि ! तुभ्य नमः। जय, जय, जननापायसर्वङ्कपक्षेमकारामृतापूर्ण चञ्चत्कटाक्षच्छटामोहितान्तर्व्यथासत्पथाकीर्णकारण्यपीयूष-तोयास्पदीभूतभूतावलीगीतदीव्यत्कथामञ्जरीरञ्जितश्रेष्ठ-वर्णे, श्रिया संमते, दिव्यरत्नावलीमण्डितोरःस्थले, सर्व-

गुरु :—[सब ओर देखकर] अहो ! दुर्गामंदिर बड़ा सुन्दर है यह, वत्स ! आज हम शाक्तों का महान् दिन है, जाओ और मन्दिर के द्वार खोल दो ! तब पूजा कर सकेंगे भक्तभज !

[सब भक्त जन दुर्गाभवानीकी] पूजा समाप्त करके गाने नाचने लग जाते हैं। कुछ माला पहने हैं और मद्यपान कर रहे हैं।

देवीस्तोत्र

जयजय जगदम्बे ! सत्वर दोप संध्याकाल—
तमसा विकासमान शशि छविध्यानशील सा–
गणप्रभूत मोद प्रफुल्ल कैरव कुसुमनिचयीभूत चरणयुगे।
सन्तत भासमान अप्रतिनिधि अद्वैतानन्दोदधिम नन्त
अभिमानी जनगर्वनाशिनि !

विशस्त मुकुट माता गगननयन तरल वीचिविक्षिप्त द्विप-पंकजरजो जनित आकर्षण हर्षणोरगगणाधिष्ठिते तर्पणा-धिकारिणी ! भावना भरिते ! सर्वदेवात्मिके ! विश्वमायाविनि ! सकलकाममयि ! सर्वस्वसाधिके देवि !

नमस्ते नमस्ते !

मथित निखिल निशाचर मग्राम संहार से भेद प्रतिमा प्रतिक प्रचलनपटु रक्त प्रवाह प्रभाशोण दिक्मण्डल अकाण्ड सभ्रान्त संध्या वधानो द्रुदेवगण कृताजलि प्रेम पूजामये ! सकलसत्व श्रेय सम्पादन सज्जिते ! निःशषेर्दुनिवार मोहान्धकार कष्टाकर्षिके ! शाश्वतलोकिते !

साधक स्वान्तर्वासिनी दीव्य दीक्षादायिनी देवि !

तुझे नमन हो ! जय, जय हो ! जनगणदुःखापहरण कुल-कुशलमृतापूर्ण चचलकटाक्षप्रभामोहितान्तर्व्यथासन्मार्गाकीण करुणामृत पारितोप स्थानीय प्राणिमात्र गीत प्रकाशित कथा-कलिकारंजित राय श्रोत्रवति !

दीव्यत्कले, कालिके देवि ! तुभ्यं नमः। प्रकृतिनियम-सपूर्णविश्वपधिप्रेरणस्थैर्ययुक्ते महानन्दसदोहसदायिनी ! प्रेमतः सुक्ष्मे, दीक्षिते, पूरितालोकशेषप्रभे, पूजिते, सत्कृते, देवदेतेयनागेशसत्किन्नरैः सवदा भव्यभूति च भुक्ति च मुक्ति ददातु क्षण, देवि ! तुभ्य नमो देवि ! तुभ्यं नमः, पाहि नः, पाहि नः।

[सर्वे निपीदन्ति गुरुरुच्चासने तिष्ठति]

गुरु.—भद्राः, अद्य महाकाली प्रसीदति। तद्भगवतीपरितोपोपयिक किमपि व्यवसितम् ?

एकः शिष्यः—महागुरो ! तत्र व्यापृतो महानन्दः।

स्त्री—महाराज ! जानन्ति न वा नगरनिवासिनः समस्ता अस्मन्महोत्सववृत्तान्तम् ?

गुरु —आः किमुच्यते ? प्रसिद्धः प्रतिष्ठितश्च शाक्तधर्मः। नास्ति कस्यापि शक्तिरस्य नामापि प्रतिकूलयितुम्।

द्वितीय शिष्यः—ननु भगवन् ! परेऽप्यस्मन्मतविभिन्ना मोक्षक्षेमाय कल्पयन्ति प्रभूत वेदशास्त्रविकल्पनाजाल कथङ्कार प्रतीप तेषा मत स्वीकुर्वन्ति मानवाः ? अथवा तत्रापि जातु सभवेत्तत्त्वम् ?

एकः शिष्य —अरे कुतस्तथ्यम् ? भ्रान्तास्ते विविधवादवञ्चिता न शाक्तमत प्रत्यक्षमोक्षप्रद समाश्रयन्ते।

अनन्तैश्वर्यालंकृते ! अलौकिक रमणिरत्नमण्डित वक्षस्थले ! सर्वसम्पदाप्रदायिके ! समस्त लोकमान कान्तकलकान्ते ! माँ, कालिके ! तुझे नमन हो ! प्रकृति नियमभरित विश्वनाथ प्रेरणाभूते ! नन्ददायिनी ! स्नेहसिक्ते ! सामर्थ्यशीले ! पटुतमे ! प्रदत्तप्रकाशरश्मिशोत्रे ! समर्चिते ! सुसत्कृते ! देवदानवनामाविपतिसेविते ! हमें प्रदान करो सदा-सदा समृद्ध सम्पदैश्वर्य: समस्त भोग एव सर्व दुःखशून्य अमरयोगके पलपल ! जगज्जननि ! जगदम्बे ! तुझे नमन हो ! हमारी रक्षा कर, हमारी रक्षा कर।

[सब नीचे बैठ जाते हैं। गुरुदेव उच्चासन पर विराजमान होते हैं]

गुरु : भक्तों ! आज महाकाली प्रसन्न होने वाली है, क्या भगवती दुर्गा को प्रसन्न करने का कोई उपाय किया है ?

एक शिष्य : गुरुदेव ! महानन्द यही कार्य कर रहा है !

एक स्त्री : महाराज ! नागरिकों को पता भी है इस अलौकिक महोत्सव का ?

गुरु : क्या पूछ रही है ? कौन नहीं जानता इस प्रसिद्ध शाक्त धर्म को ? किसी में साहस नहीं है कि कोई शाक्त-धर्म के विरुद्ध जा सके !

द्वितीय शिष्य : और भी तो लोग हैं, जो मोक्ष प्राप्ती के लिये वेदादिशास्त्र अनुकूल मार्ग बतलाते हैं। ऐसे असत्य मतों को जनता क्यों अंगीकार करा करती है ? क्या अन्य मतोंमें भी कुछ यथार्थता है ?

प्रथम अरे ! कहाँ से आयी अन्य सम्प्रदायों में सचाई ! ये सब शिष्य भ्रम में पड़े हुए हैं, अनेक विध वादों में, शाक्त मतके समान अन्यत्र कहीं भी नहीं है प्रत्यक्ष मोक्षसुख !

गुरु:—एवं वत्स ! सत्य प्रतिपादयसि पश्य—

के वेदाः के सुरेशाः सवमफलमतः स्वर्गसौख्यप्रपञ्चः
को लोको नाकपङ्क्तेरुहवदभिमतः क्षेत्रनाशात्परस्तात् ।
का भीतिः कालपाशाद्, विशकलितजने भूतिमूलात्मवृत्ते-
र्जन्तोरन्यात्मलाभः परमिदमखिल व्यर्थपाखण्डजालम् ॥२१

त्रय:—सत्यं प्रमाण वचः !

[ततः प्रविशतः शैववैष्णवौ]

एकः शिष्यः—भगवन् ! समायाति कश्चित् ।

गुरुः—आगच्छतु, स्वस्था भवन्तु भवन्तः [सर्वे तथा भवन्ति]

शैवः—[प्रविश्य] अहो कमनीयं मन्दिरम् ।

वैष्णवः—महाभाग ! नन्वेते किं प्रमाणयन्ति धर्मतत्त्वम् ?

शैवः—तत्र गत्वा तमेव पृच्छतु भवान् । मम तु सर्वं समानम् ।

वैष्णवः—ननु भवानपि समागच्छतु ।

शैवः—को दोषः ? [इति समीपे गच्छतः]

वैष्णवः—भो भोः कोऽयमाकल्पः, का वा धर्मचर्या भवतां, किं नामधेयमिदं तत्त्वं के वाऽधिकारिणः ?

एक. शिष्य —[समीप गत्वा] भोः किमेवं प्रलपसि ? न जानासि प्रसिद्धं पावनं शाक्तधर्मम् ?

शैवः—नन्वयं वैदेशिकः ।

शिष्यः—आम्, आगच्छ भोः गुरुनिकटे ।

[वैष्णव. शैवस्य मुख पश्यति]

शैवः [जनान्तिकम्] अवश्य गन्तव्म् । को दोषः ? समागता वयम् ।

गुरुवर्य हाँ, हाँ, बहुत ठीक कहते हो ! देखो न
नही वेद है देव है यज्ञ स्वर्ग, नही लोक है स्वर्ग आनन्द कोई
नहो देह के नाश के बाद मुक्ति नही मृत्यु की भांति है सत्य कोई।
नही स्वगप्राप्ति प्रगल्भा प्रसक्ता ये पाखण्ड हैं दुख के द्वार होई
इन्हें त्यागकर मोक्ष का लाभ होता यही आत्म आनदसं तोष सोई

तानों : सत्यवचन हैं।

[इतने में एक शैव और एक वैष्णव प्रविष्ट होते हैं]

एक शिष्य : महाभाग ! कोई आ रहा है !

गुरु : आने दो ! ठीक बैठो सब !

[सब ठीक बैठ जाते है]

शैव : (प्रविष्ट होता है) कितना सुन्दर मन्दिर है ?

वैष्णव : श्रीमन् ! ये कौन सा धर्म मानते है ?

शैव : वहाँ चलकर उन्ही से पूछिये, मेरे लिये तो सब बराबर है।

वैष्णव : तो भी आप साथ चलिये !

शैव : क्या हानि है ? [दोनों निकट पहुंचते है]

वैष्णव : अरे भाई, यह कैसा मेला है ? आप लोगोकी धर्म चर्चा में क्या-क्या है ? आप के तत्व का क्या नाम है ? कौन-कौन से धर्माधिकारी हैं आपके ?

एकशिष्य : अरे, क्या प्रलाप करते हो ? तुमको पवित्र शाक्त-धर्म का पता नही है क्या ?

शैव : नही, यह तो परदेशी है।

शिष्य : अच्छा, तो आइए, गुरुदेव के समीप

[वैष्णव शैव के मुख की ओर देखने लगता है]

शैव : [निकट जाकर] अवश्य चलिये, गुरुदेव के समीप, क्या हानि है ? हम आये हुए तो है ही, यहां पर।

[सर्वे तत्र गच्छन्ति]

शिष्यः—भगवन्, गुरुवर्य ! इमौ ननु धर्मतत्त्वं श्रोतुमागतौ ।

गुरुः—[नेत्रे उन्मील्य, स्वातु संज्ञां ददाति, सर्वे तिष्ठन्ति] स्वागत भवतोः किमु वैदेशिकौ अत्रत्यौ वा ?

एकः—अयमस्ति वैदेशिकः । [सः सर्वत्र विलोकयति] [तं प्रति] भोः प्रष्टव्यं पृच्छ ।

द्वितीयः—महाराज ! कोऽयं धर्मः ? किम् फलम् ? कीदृश ईश्वरः क्व मोक्षः ? के वाऽधिकारिणः ?

गुरुः—[विहस्य] नन्वतीवानभिज्ञः खलु त्वम् । श्रूयताम् । यः किल पुरा बृहस्पति-प्रतिष्ठितो लोकायतापरपर्यायः प्रत्यक्षमोक्षप्रदो धर्मशिरोमणिः शाक्तधर्मः

शैवः—[मध्ये] तदा कथं शक्तिः शक्तिरिति घोषयन्ति भवन्तः ।

गुरुः—एव नाम सौकर्याय । अथवाऽस्माकं मतमपि पुराणशास्त्रसमसमिति जनमनोरञ्जनाय, सत्यं तत्त्व विलक्षणम्

वैष्णवः—अन्यत् किम् ?

गुरुः—नास्ति फलं परमानन्दभोगादन्यत् न वर्तते परमात्मा । नास्ति मोक्षः । सर्वेऽधिकारिणः अथवा श्रूयतां निगूढं रहस्यम्—

[सब वहाँ चलते हैं]

शिष्य : गुरुदेव ! ये दोनो धर्मतत्व जिज्ञासू हो कर आये है

गुरु : [आँख खोलकर] बैठने का आदेश देते हैं, सब बैठ जाते हैं। स्वागत हो आप दोनो का ! क्या आप दोनों परदेसी है या यहाँ के निवासी ?

एक : महाराज, यह है परदेसी [वह सब ओर देखता है उसकी ओर देखकर] जो शका हो पूछ लो !

दूसरा : धर्म क्या है आपका, जिसका फल क्या है ? ईश्वर कैसा होता है ? मोक्ष कहाँ है ? मोक्ष कौन होते हैं अधिकारी ?

गुरु : [मुस्कराकर] लगता है बहुत अन्जान हो तुम ! सुनो जो बहुत पहले बृहस्पति स्थापित लोकायत नाम का प्रत्यक्ष मोक्षदायी धर्म शिरोमणि धर्म भी वही है यह वर्तमान शाक्तधर्म !

शेटा : [मध्यमें] तो 'शक्ति, शक्ति' की क्या बात करते हैं आप लोग ?

गुरु : यह तो सुविधा के लिए है अथवा हमारा मत भी पुराणशास्त्र समर्पित है, यह तो हम जनता के मनोरजन के लिए कहते हैं, सत्यतत्व तो अत्यन्त विचित्र विलक्षण है।

दोण्णा : और क्या बात है ?

गुरु : परमानन्द भोग के अतिरिक्त और क्या फल है संसार में ?

परमात्मा नही है, मोक्ष भी नही है, सभी अधिकारी है अथवा यह सब रहस्य समझिये।

ईशः स्वर्गौ जनिमरणता वेदधर्मौ च मोक्षो
हहो मूढैः कियदिह जटिलं जालमास्तीर्णमेतत् !
सत्यं तत्त्वं कलयत जनाः स्वर्गसौख्यं मृगाक्षी
पीयूषं तद्वदनमदिरा नीविमोक्षो हि मोक्षः ॥२२॥

[शैववैष्णवौ परस्परं मुखमवलोकयतः]

[शिष्यान् प्रति] अथवा किं मन्यन्ते भवन्तः ?

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

शैवः—अयं भवानीरमणं शङ्करं न प्रमाणीकरोति ।

गुरुः—महाशैव ! शक्तित्वेन परिगृहीतः सः

शैवः—प्रियं नः प्रियम् । तदा भवान् मे धर्मबन्धुः ।

वैष्णवः—भो, ननु भवन्मते स्वर्गनिरयनिर्वाणप्रतिपादकाः सन्ति तन्त्रग्रन्था, किं तेषाम् ?

गुरुः—सन्ति न सन्ति च । सन्ति, परमतनिराकरणाय स्वमतस्थापनाय शिष्याचाराय च । न सन्ति, विदितेऽस्माकं निगूढे तत्त्वे !

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

वैष्णवः—अरे, शास्त्रपुराणेषु पाशुपतवैष्णवादयः श्रूयन्ते मोक्षसाधनधर्माः ।

गुरुः—पाखण्डजालं, जीविका सा जडानाम् । अवधारयत स्वधियाऽपि तत्वम् । किमस्ति शरीरनाशात्परं यत्कल्पते पुनर्भवाय ? मन्दास्ते प्रत्यक्षमोक्षमविगणय्य नानामतजुषो भवन्ति । आकर्णय—

ईशस्वर्गोद्‌भव मरण या वेदे या धर्ममोक्ष
मूर्खनिर्ही समझा इनका जाल विस्तार केलि
सच्चातत्व प्रबलत मतो 'वस्तुत: रूप आम्था
पीयूषोत्तम आननागतसुरा, 'नीतिखोल' ही मोक्ष है . २२

[शैव और वैष्णव एक दूसरे का मुख देखते हैं]

[शिष्यों से] और तुम्हारा क्या मत है ?

तीनो : सत्य कहते हैं आप।

शैव : यह वैष्णव ता भवानीश्वर शंकर को भगवान नहीं मानता !

गुरु : महा शैव ! शिव को तो शक्ति ने पकड़ रखा है।

शैव : आपका प्रिय तो हमारा प्रिय है, तब तो आप मेरे धर्मबन्धु हुए !

वैष्णव : क्यो जी ! आप के मत में भी तो स्वर्गनरक मोक्ष प्रतिपादक तत्रगन्थ है, तो उनका क्या होगा ?

गुरु : हम मानते भी है यह सब और नहो भी मानते ! अन्यमतखण्डनार्थ, स्वमतस्थापनार्थ तथा शिष्यों के आचार्य है। हमे सर्व ज्ञात है, अतः हमारे लिये व्यर्थ है।

तीनों : हाँ जी सत्यवचन है आपका !

वैष्णव : वैसे तो शास्त्रपुराणो में पशुपत, वैष्णादि मत सुने जाते हैं कि ये मोक्षदायक है।

गुरु : यह सब पाखन्डजाल है, जड़ो-मूर्खों की जीविका का साधन है, अपनी बुद्धि से भी कुछ विचारना चाहिये, तत्व शरीरनाश के अतिरिक्त और क्या है ? जिसका पुर्नजन्म हो सकता है ? प्रत्यक्ष मोक्षधर्म को छोड़कर अज्ञानी ही तो विभिन्न मतान्तरों में भटक रहे हैं। सुनो,

ओंकारार्थपुरःसरेण निगमस्वाध्याय आडम्बरः
नेवं पाशुपतादिवैष्णवमत सच्छ्रेयसे जायते।
नि सीमानमनन्तमोदमधुर सौख्य दिशन्तो ध्रुव
मुद्रामैथुनमांसमीनमदिरा मोक्षप्रदा मन्महे ।।२३।।

त्रयः—सत्यं प्रमाण वचः !

वैष्णवः-[जनातिक शैव प्रति] इदमन्यथा श्रूयते। सर्वथा प्रत्यक्षप्रमाणाभिमता लोकायतपदवीयम् ।

शैवः—[जनान्तिकम्] तर्हि भवतः का निर्वाणकरी पदवी ? तदेव सत्य मन्ये यत्प्रत्यक्षेणावगम्यते। -

गुरुः—भो, भोः ! किं विकल्पयथः १ वञ्चिताः सव मतान्तरः श्रूयते मोक्षपथम् ।

एकः—अह त्वधुनैव विहाय धर्ममिम, श्रये शाक्तशरणम् । भोः त्वमपि कथ तिलकचक्रलाञ्छनैः कदर्थयसि कायम् ? प्रविश, प्रविश पवित्र पन्थानम् ।

त्रय —सत्य प्रमाण वचः !

गुरु —शृणुत । बहुश. पुरातना महर्षय इदमेव मन्यमानाः सत्यं धर्म विदाचक्रुः—

अस्मन्मतस्य नियमाकुलगाधिजन्मा
मोक्ष विहाय परमस्ति च सूत्रधार. ।
तप्त्वा तपांसि मुनयो बहुशः पुराणाः
सलेभिरे मधुसुधां वनिताधरस्य ।।२४।।

प्रथमः—देहि मे दीक्षाम् ।

अन्येः-अस्माकमपि ।

मुद्रा मैथुन मांसमीन मदीरा ही मोक्षदायी यहाँ
वेदोका पठनादि ओऽम् कहके है, ढोंग ही सर्वथा,
नाही वैष्णव शैव धर्म शरणे श्रेय प्रशस्तादरी
मोक्षानन्द निधान केवल यहाँ है शाक्तधर्मोपरी ॥२३॥

तीनों : यथार्थ वचन है आपका !

[शैव के निकट जा कर]

वैष्णव : यह तो आप कुछ अन्य ही सुना रहे हैं। लोकायत पदवी तो सर्वथा प्रत्यक्ष भूत ही है।

शैव : [समीप हो कर] तो आप ही अपना बताइए मोक्षदाता जो प्रत्यक्ष हो, हम उसे ही सत्य मान लेगें।

गुरु : अरे, क्या सकल्प विकल्प कर रहे हो? इन सम्प्रदाय वादियों ने जन-जन को ठग रखा है, तुम दोनो आ जाओ शाक्तधर्म में !

एक : मैं तो अभी के अभी अपने धर्म को छोड़ कर शाक्त धर्म की शरण में जा रहा हूं। अरे, तू ही क्या तिलक चक्र लाछनों से शरीर का कष्ट दे रहा है, तू भी प्रवेश कर इस पवित्र धर्म में।

तीनों : सत्य कथन है आप का !

गुरु : सुनो, सुनो ! बहुत से पुरातन ऋषियों ने तो इसी शाक्त धर्म को ही सत्य माना है !

मोक्षप्राप्ति के लिये घनघोर तज करके तपस्या
गाधि-सुतने शाक्त मत स्वीकार कर आनन्द पाया
और भी प्राचीन मुनियो ने तपस्या से विलग हो
पानकर रमणी अधरद्वय पा लिया निर्वाण पद हो ॥२४॥

प्रथम : मुझे दीक्षा प्रदान कर दीजिए गुरुदेव !

अन्य सब : हमें भी दीक्षा प्रदान कीजिए !

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

गुरुः—जय भगवति ! अद्य अनुकम्पिता वयम् । यूयं स्नानविधानं कुरुत । [शिष्यं प्रति] गच्छ, आदेशय पन्थानम् ।

शिष्यः—यथादिशति गुरुः [इति गतः]

[ततो महानन्दः सस्त्रीकः प्रविशति]

महानन्दः—आगच्छतु भवती त्वरितम् ।

वनिता—महाभाग ! क्व मां नयसि ? अथवा घोरा निशीथिनी अहं पुनः समागमिष्यामि धर्मालयम् ।

महानदः—ननु नेदिष्ठे तस्य धर्माचार्यस्य मठः ।

वनिता—तथापीयस्यां रजन्यां मम गमनं तत्र न कल्याणकरम् । अहमबलाऽस्मि ।

महानंदः—का भीतिः ? अहमस्मि तव समीपे । अथवा मन्दा क्षिपन्ति धर्मचर्याम् । आगच्छतु लघु लघु पश्य भवति ! एष तिष्ठति गुरुः ।

[उभौ प्रणमतः]

गुरुः—स्वस्ति भवत्यै । [सर्वे परस्परं विलोकयन्ति]

महानन्दः—धर्मस्वरूप ! एषा धर्मरहस्यं श्रोतुमागता ।

गुरुः—धन्यम् । प्राप्स्यते धर्मः भवति ! श्रूयतां धर्मतत्त्वम् पाखण्डपूर्णेऽस्मिन्, जगतीमण्डले विनष्टः सत्यः पन्थाः । तथापि तल्लेशोऽवशिष्यते शाक्तेषु ।

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः ।

गुरुः—देवि ! वृथा जना धर्मविचाररचनासु मनः खेदयन्ति । को

तीनों : सत्यवान है !

गुरु : जय भगवति ! आज हम अनुगृहीत हो गये। तुम स्नान विधि से निवृत्त हो लो, (शिष्य से) जा, भाग बता दे।

शिष्य : गुरुदेव, जो आदेश दें ! (सब चले जाते हैं)

[इतने मे एक स्त्री के साथ महानन्द प्रविष्ट होता है]

महानन्द—शीघ्र चलिये आप !

महिला—महाभाग ! कहाँ ले जा रहें मुझे ? देखो न यह रात कितनी घनघोर हैं, मैं दुबारा आऊंगी इस धर्म मन्दिर में !

महानन्द—अजो ! सवथा सन्निकट ही तो धर्माचार्य जी का मठ !

महिला—तो भी इतनी रात्रि में मेरा वहाँ जाना ठीक नहीं है, मैं अबला जो हूं।

महानन्द—किसका डर है ? मैं साथ में हूं न ! अभागे ही डरते हैं धर्मचर्या से ! चलो जल्दी-जल्दी, देखो न देवि ! सामने ही गुरुदेव उपस्थित हैं।

[दोनो प्रणाम करते हैं]

गुरु—तुम्हारा कल्याण हो [सब एक दूसरे को देखने लग जाते है]

महानन्द-गुरुवर्य ! ये देवी धर्मरहस्य जानने के लिये आई है।

गुरु—धन्य है, धर्मलाभ होगा देवि ! सुनो, सच्चा धर्मतत्त्व ! पाखण्ड भरे इस संसार में सत्यमार्ग तो नष्ट हो गया है, तो भी नष्ट धर्म का थोड़ा सा अंश अवशिष्ट है शाक्तधर्म में !

तीनों—सत्यवचन है महाराज !

गुरु—व्यर्थ ही लोग धर्म विचार रचनाओं में मन को क्लेश पहुंचाते हैं। कौन जानता है, किसने देखा है परलोक ?

जानाति केन वा दृष्टचरः संभावितो व परलोकः ? निर्णीतोऽपि सांपरायो न प्रतिभाति। मृतस्य नरस्य कथं तत्र सुखप्रतीतिः ? प्रत्यवतिष्ठन्ते ननु पामराः परमात्मतत्त्वप्रतिपादनाय परं प्रेरयताऽपि प्रमाणपदवीं मनो न मयाऽऽद्रियते ऋते भूतात्मनः शरीरादन्य ईश्वरः। स्वर्गास्वर्गविवेचना चातुरीमतां मतेऽपि मदिराक्षीपरिरंभणानन्दसंदोहादन्यं नावधारयामि परमुदन्तम्। को हि नाम मूढोऽपि जन्तुः प्रत्यक्षं सुखं प्रत्याचक्षाणः परस्मै जीवनात् सुखाय दृष्टलोकसमाहिताय दत्ताञ्जलिः स्यात् ?

त्रयः—सत्यं प्रमाणं वचः !

वनिता—[स्वगतम्] किमिदं शृणोमि, क्व पतिताऽस्मि ? [प्रकाशम्] महाराज ! ननु भवान् स्फुटं प्रतिपादयतु रहस्यम्।

[गुरुः शिष्याय संज्ञां ददाति]

महानन्द—[कर्णे] एवमिव।

वनिता—आः किमिदम् [इति मुखमाच्छादयति]

[सर्वे परस्परं विलोकयन्ति]

वनिता—[स्वगतम्] सत्यं वञ्चिताऽहमनेन धूर्तेन। नियतं शीलभ्रंशनमत्र। किं करोमि ? कः सहायः ? [प्रकाशम्] भगवन् ! न मया ग्रहणीयं धर्मतत्त्वम्। गमिष्याम्यहम्। प्रसीदन्तु भवन्तः।

महानद—भवति ! स्वीकुरु धर्मतत्त्वम्।

वनिता - [सरोषम्] दूरमपेहि चाण्डाल ! धर्मकञ्चुकधारिणा मृगीव त्वयाऽहं प्रतारिता पाप !

परलोक मान न भी ले तो मुक्ति सिद्ध नही होती, भला मरे हुए मनुष्य को मुक्ति में सुख प्रतीति कैसे हो सकती है ? पापी पामर जन ही भगवान की बातें करते हैं, बतियाते हैं, तो भी परमात्मा तत्त्व के प्रतिपादन के लिये प्रेरित हुआ ।

मुझे ईश्वर पर विश्वास नहीं होता। आत्मा तो मेरे विचारों से यह शरीर ही है, अन्य कुछ नही। स्वर्ग नरक की विवेचना करने वाले भी तो मदीराक्षियो के परिरंभण आनन्द के अतिरिक्त अन्य कुछ श्रेष्ठ नही मानते! कौन ऐसा मूढ़ व्यक्ति होगा जो प्रत्यक्ष सुख को त्यागकर आगामी सुख के दृष्ट लोक समाधान को महत्व प्रदान करेगा ?

तीनो—सत्य कहते हैं आप !

महिला–[मन ही मन मे] यह मैं क्या सुन रही हूं ? [प्रत्यक्ष मे] महाराज ! कृपया स्पष्ट कहिये रहस्य !

[गुरु शिष्य को बुलाता है]

महानन्द—[कान मे] ऐसा ही होगा ।

महिला—अरे! यह क्या है ? [मुख ढक लेती है]

[सब परस्पर देखने लगते हैं]

महिला—[मन ही मन मे] सचमुच इस धर्त ने मुझे धोखा दिया है। सतीत्वनाश सुनिश्चित है आज, यहाँ पर क्या करूं ? कौन सहायता करेगा ?

[प्रकाश मे] भगवन् ! मुझे नही चाहिये यह आपका धर्म, तत्व ! मैं जा रही हूं, कृपा करें आप !

महानन्द—भगवति ! धर्मतत्व स्वीकार क्यो नही करती ?

महिला—[क्रोध से] दूर हट जा चाण्डाल ! अरे पापी धर्म का वस्त्र ओढे तू ने शिकारी की भाँती फंसा ही लिया न ?

[इति गन्तुमिच्छति, महानन्दो गृह्णाति]

वनिता:—त्रायध्वं, त्रायध्वम् ! !

[नेपथ्ये] न भेतव्यं न भेतव्यं ! ! !

सर्वे—कोऽयं पापः प्रत्यूहः संप्राप्तः ?

दयानन्दः-[प्रविश्य] अरेरे जाल्माः ! पापाः ! (स्त्रियं रक्षति]

शिष्यः—[जनान्तिकम्] गुरो ! सोऽयं वैदिकधर्मोपदेष्टा दयानन्दः ! !

गुरुः—आः अयमेव किमु ? सांप्रतं प्राप्तो हस्ते; मा त्यजत एनम् । भो दयानन्द ! गच्छ, गच्छ, विहर यथेष्ट, नो चेत् कथावशेषो भविष्यसि ।

दयानन्दः-[सरोषम्] महापापाः ! कस्य शक्तिरस्ति नयानदस्य केशमपि दूषयितुम् ? ज्ञायतां रे नराधमाः !——

मृत्युर्मह्यं परमसुखदो नाग्निमुक्तो भवेच्चेद्
दण्डाघाता अपि सुमसमा धर्मकृत्ये भवन्ति ।
धर्माह्वानात् प्रियतरमपि त्यक्तुकामोऽस्मि स्वेष्टं
धर्मार्थं मे भवतु निधनं तत्र जन्मापि भूयः ॥२५ ।

वनिता- त्राता ! इतः शीघ्रं गच्छावः ।

दयानन्दः—महाभागे ! मा भैषीः । दयानन्दरक्षितां त्वां दूषयितुं शक्रस्यापि नास्ति सामर्थ्यम् । अये, वामाः ! पापाचार विहाय धर्माचारं श्रयत ।

गुरुः—ननु शिष्याः ! किं पश्यथ ? कुरुत दयानन्दं सम वनितया पङ्गुभूतम् । [सर्वे दयानन्दं ग्रहीतुमुत्तिष्ठन्ति । दयानन्दः सर्वान् पातयति]

[जाना चाहती है, महानन्द पकड़ लेता है]

महिला—बचाओ ! बचाओ ! !

[नेपथ्य में] मत डरो ! मत डरो ! ! मत डरो ! ! !

सबके सब—और कौन पापी बीच में आ गया है यह ?

दयानन्द—[प्रविष्ट होकर] अरे पापियों ! अत्याचारियों !

[महिला को बचाता है]

शिष्य—[समीप में आकर] गुरुदेव ! वही है न यह वैदिक धर्म का प्रचारक दयानन्द !

गुरु—हाँ, हाँ, वही है, आ गया है अब हाथ में, छोड़ना नहीं है इसे ! अरे, दयानन्द ! जा, चला जा यहाँ से, जहाँ जाना हो, अन्यथा नामपो रह जायेगा !

दयानन्द—[क्रोध से] पापियो ! किसमें ऐसी शक्ति जो दयानन्द का बाल बाँका भी कर सकें ? नराधमों ! समझ लो भलीभाँति :

नारीमोक्षण में मिले यदि मुझे मृत्यु परम भाग्य हो,
दण्डाघातभी सह्य है सुखकर, प्रायः सुकृत्यार्थ में।
धर्मार्थ छोड़ सकता सब सौख्य लाभ,
धर्मार्थ ही निधन हो अरु जन्म भूय:

महिला-महाराज, इधर से जल्दी चले चलें,

दयानन्द—देवि ! मत डरो, दयानन्द के संरक्षण रहते हुए तुम्हारा इंद्र भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता ! अरे, वाम-मार्गियों ! विषयासक्ति छोड़ कर धर्माचरण करो !

गुरु—अरे शिष्यों ! क्या देख रहे हो टुकुर-टुकुर, इस स्त्री के साथ-साथ दयानन्द को भी वध्य पशु बना डालो !

[सब दयानन्द को पकड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं। दयानन्द

वनिता—प्रभो ! शीघ्रं गच्छाव आवाम् ।

दयानन्दः-अवश्यं भगवति !

यतः—

शीलभ्रंशनमात्मनाशनमदः संभाषणं सर्वथा
दौर्जन्यं परदोषदर्शनपरीवादप्रवीणा कथा ।
मन्ये दोषमलीमसा हृतधियः किं किं न कुर्वन्त्यमी
पापानां निलये विशुद्धवसतिर्लो के कलङ्कास्पदम् ॥२५॥

एहि शीघ्रं त्वां गृहं नयामि ।

गुरुः-[उत्थाय] ननु गतोऽयं पापः । आगच्छत यावन्न निर्गच्छति तावत प्रतिकारं कुर्मः ।

[इति सर्वे गताः]

[स्थानं ओखीमठः, अधिष्ठाता महन्तः, दयानन्दः, योगी, समयः-प्रभातः]

अधिष्ठाता-[प्रविश्य] अहो दृढनिश्चयो दयानन्दस्य । मया पुनः पुनः प्रलोभितोऽपि विभवाय न नमति दर्शयति । नियत प्रतिष्ठितः मन्यासमार्गः कलावपि तादृशेन महात्मना । [दृष्ट्वा] ननु दूरात्स एवागच्छति । भवतु पुनः प्रलोभयामि ।

दयानन्दः—[प्रविश्य] अधिष्ठातृमहोदय ! अनुजानीहि मां गमनाय ।

अधिष्ठाता—कथं दयानन्द ! व्यर्थं गदर्थयसि मामम् ? अनुमन्यस्व मदीयं वचः ।

दयानन्द.—[संक्षोभम्] पुनः पुनः निषिद्धा भवन्तः कथं प्रलो-

सब को जमीन पर पटक देता है]

महिला—भगवन्, चलो जल्दी चले चलें यहाँ से !

दयानन्द-हाँ, देवि, जल्दी चलो चलें ! क्योंकि—

शीलभ्र शन आत्मनाशन् तथा समापणादि क्रिया,
अन्यो की वह निन्दना ! पर गुणाख्याता रुचि प्राजला
मानूं दोष मलीनता मतिधरे क्या कर्म करते नये,
पापी गेह निवास-पार्श्ववासमलया धर्मीभी दोषांकित ।।२५

आओ शीघ्र ही तुम्हे तुम्हारे घर पहुँचा दूं ।

गुरु—[खडा हो कर] अरे, चला गया न, बच कर वह पापी, दौडो, पकड लो उस पापी को, जब तक वह हमारी पहुँच से दूर नहीं चला जाता !

[सब दयानन्द को घेरने चल देते हैं]

[समय-प्रात काल स्थान—हिमालय का ओरवीमठ, वहाँ के अधिष्ठाता महन्त दयानन्द योगी,]

अधिष्ठाता—[प्रविष्ट होकर] अहो दयानन्द ! कितना दृढ निश्चयी है, मैं बारवार जिसे धन वैभव बताकर थक गया हूँ, किन्तु यह प्रस्तुत नहो होता महन्तो के लिये। इन घोर कलयुग मे ऐस महात्माओ ने सन्यास धर्म को—सुरक्षित रख छोडा है ! [प्रकाश मे देखकर] अरे, वही आ रहा है चलो पुन लोभ लालच दिखाऊँगा ।

दयानन्द-[प्रवेश करता है] अधिष्ठाता जी ! मुझे अब दीक्षा प्रदान कीजिये, यहाँ से प्रस्थान करना है ।

अधिष्ठाता-क्यो दयानन्द ! व्यर्थ ही शरीर को पीडा पहुँचा रहे हो ! हैरा बात मान जाओ !

दयानन्द-[क्षुब्ध होकर] जब आप मे अनेक बार निषेध कर दिया तो आप क्यो लोभ लालच दिखा रहे हैं मुझ ? आप

भयन्ति माम् ? ननु सत्या प्रतिज्ञा दयानन्दस्य प्रवर्तते न पुनर्धर्मध्वसाय। आखण्डलस्य वैभवमपि तृणाय मन्ये किं पुनर्भवताम् ?

अधिष्ठता—दयानन्द ! संतुष्टोऽस्मि ते धर्मश्रद्धामवलोक्य । तत् क्षमस्व मेऽपराधम् (इति अञ्जलिं करोति)

दयानन्दः—हन्त, किमिदमाचर्यते ? ननु पूज्या भवन्तः

अधिष्टात—पूज्या वयं वयसा । परं तपसा, महसा, ब्रह्मचर्येण, धर्मेण च त्वमेव सर्वेषां पूज्यः । तात ! धर्मवीर ! कलिकालोऽयं, ध्वस्तो धर्मः, गत ज्ञान, नष्टा श्रुतिः हृता करुणा ।

दयानन्दः—(सहर्षम्) भगवन् ! किं नास्ति कलेः प्रतिकारः ?

अधिष्ठाता—नास्ति । यः शिरश्छिचकर्तिषुः स सर्व कर्ता ।

दयानन्द—सज्जोऽस्मि वैदिकधर्मस्थापनाय ।

अधिष्ठाता—तात ! तथापि कः शृणोति संप्रति सत्योपदेशम् ? हास्यास्पदाय भवन्ति प्राचीना धर्मवक्तारः शङ्करादयः- अधुना हि—

सम्प्राप्ते निधने सतां कृतिमतां काले कराले कलौ
ध्वस्ते धमकपापविघ्ननिलये नष्टे च मन्त्रायके ।

को ज्ञात होना चाहिये कि धर्मोद्धार के लिए ही दयानन्द ने सत्यप्रतिज्ञा की है, धर्मनाश के लिए नहीं। मैं तो इंद्र के स्वर्गीय साम्राज्य को भी कुछ नहीं गिनता, आपकी महन्ती की तो बिसात ही क्या है ?

अधिष्ठाता—दयानन्द ! तुम्हारे धर्म प्रेम को देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द हो रहा है, मैं क्षमा चाहता हूँ, अपनी बात के लिये !

दयानन्द—आप यह क्या कह रहे हैं, आप तो मेरे पूज्य हैं।

अधिष्ठाता—हम आयु में बड़े हैं, किन्तु तपस्या, तेज, ब्रह्मचर्य एव धर्म में तो तुम्ही बड़े हो हम सबसे ! लाल ! धर्म-वीर ! यह तो कलिकाल है, धर्म नष्ट हो चुका है, ज्ञान विज्ञान ध्वस्त हो गये है, वेदशास्त्र लुप्त हो गये हैं, करुणा मर चकी है।

दयानन्द—(प्रसन्न होकर) भगवन् ! कलियुग का कोई प्रतिकार नही है क्या ?

अधिष्ठाता—नही है ! जो मस्तक कटाने को प्रस्तुत हो, वही सब कुछ कर सकता है।

दयानन्द—मैं सन्नद्ध हूँ वैदिक धर्म की स्थापना के लिये !

अधिष्ठाता—महानुभाव ! तो भी कौन सुनता है अब सत्यो-पदेश को ? प्राचान शकराचाय जैसे वेदोद्धारकों का उपहास उड़ाया जाता है आजकल !

इस समय तो :—

महाघोर कलिकाल मे मृत्यु को प्राप्त होते है
उद्योगघी आर्यजन,
ध्वस्त धर्मादिवार्ता बने गेह है, नाग पाये
हुए हैं यहाँ नेतृजन,

चाण्डालः श्रुतिवित्, कुविन्दकबटुः सांख्योपदेष्टा मुनि-
र्वन्द्यो किञ्च कविर्भविष्यति पुनर्हा कुम्भकारो मनुः ॥२६॥

दयानन्द ! सर्वथा धर्मविध्वंसिनी विपरीता व्यवस्था देशस्य । स्वाप्नायते सत्यमहिमा, दावायते वेदवादः, कारागृहायते वर्णाश्रमविधानम्, शृंखलायते पूर्वजानुगमनम्, हालायते हितोपदेशः, विषायते च सज्जनजनः, पापायते साधुचरितं जनानाम्, सर्वथा कल्पद्रुमायते स्वैराचारः, चन्दनायते वाचाटता, मोक्षमन्दिरायते कामाचारः, मालायते परदोषदर्शनम्, पीयूषायते विषयसौख्य, सज्जनायते चाटुकारो दुर्जनः, सर्वस्वायते च धर्मबन्धननिराकरण सर्वेषाम् । पश्य–

> घटानां पटानां च कर्ता स्वायम्भुः
> गवां वा सवानां च हर्ता स शम्भुः ।
> खलानां छलानां च भर्ताऽस्ति विष्णुः
> परं पापभागी कुरागी च जिष्णुः ॥२७॥

दयानन्दः–विरम, विरम । नातः परं श्रोतु समर्थः । कथय, कथं केन प्रकारेण प्रतिविधानं भविष्यति ।

योगी:–(प्रविश्य) सर्वं मपत्र ते योगवलेन । केवलं कुतार्किकमतनिराकरणाय दर्शनरहस्यमाकलयतु ।

दयानन्दः–सत्यं वचो भवताम् ।

चेद विद्वान चाण्डाल सम है यहाँ, यहाँ मूर्ख
विख्यात है, सांख्यकर्ता मुनि,
वन्दिगण बन गये हैं कवि प्राज्ञ तो, वन गया कुम्भ-
कर्ता मनूप्रह्लर्षी ॥२६॥

दयानन्द! राष्ट्र की वर्तमान दशा सर्वथा धर्महीन हो चली है, सत्य तो स्वप्नों की बात हो गयी है, वेद वाद प्रज्वलित हो चुका है, वर्णाश्रम धर्म कारागृह में बन्द हो गये हैं, पूर्वजों की परम्पराएं भी जकड़ी जा चुकी हैं हितोपदेश का स्थान दुर्व्यसनों ने ले लिया है, सज्जन भी विपाक्त हो गये है, जन जनका साधुचरित्र कलुषित हो रहा है, गुरुवचन शीतल हो गये हैं, कामाचारों ने मोक्षमन्दिरों को विकृत कर दिया है, पर निन्दा एवं परदोष दर्शन वृद्धिगत हो रहे हैं, विषयतृष्णा अमर हो रही हैं, चाटुकार दुर्जन ही सज्जन बन गये हैं, सबको धर्मबन्धन निराकरण अनुकूल हो चला हैं। देखो—

'घटोंका पटोंका' विधाता स्वयंभू
मखों धेनुओंका संहर्ता है शम्भु।
खलोंका छलोंका विभर्ता है विष्णु,
महापाप भागी कुरागी है जिष्णु ॥ २७॥

दयानन्द—मौन रहिये, मौन रहिये, मुझसे और अधिक नहीं सुना जा सकता, निर्देश दीजिये कि इसका निराकरण कैसे होगा?

योगी—(प्रविष्ट होकर) सब कुछ तुम्हें योग बल से प्राप्त हो चुका है, कुतार्कीको के, वाममार्गियो के पाखण्ड खण्डन के लिये केवल दर्शन रहस्य को सु-व्यवस्थित करने की आवश्यकता है।

दयानन्द—आपका कथन सत्य है भगवन्।

योगी:—संप्रति महात्मनाऽनेन सत्यं प्रतिपादितं, यदि न भविष्यति प्रतीकारस्तदा न चिरादेव भारते—

क्रोष्टारः पृथिवीभुजश्चलधियो घूकाः प्रधानास्पदं,
झंकारारावपरास्तथा बलिभुजः काका वराकाः प्रजाः।
नित्यं स्वार्थपरः प्रतारणपरो धूर्तो बको देशिको
मार्जारश्च समस्तशास्त्रचतुरो गृध्रः प्रजानायकः ॥२८॥

एवं भविष्यति। सांप्रतमेवागतोऽस्मि निखिलं देशं पर्यटन्। तत्र खलु—

गतं वेदज्ञानं, प्रशममुपयाताऽऽगमकथा
विनष्टा वर्णानां व्यवहृतिरतन्त्रा जनगतिः।
यथेष्टं वाचालाः प्रतिदिनमुशन्ति स्वसरणिं
स्वातन्त्र्याचारोऽयं पतनमनुकूलं कलयति ॥२९॥

तद् दयानन्द! अवसरोऽयं तव योगबलस्य।

दयानन्दः—अनुकम्पितोऽस्मि। नमो वाम्। गमिष्यामि।

उभौ:—शिवास्ते सन्तु पन्थानः।

[इति निष्क्रान्ताः]

[अलखनन्दा नदी, समाधिस्थः स्वामी दयानन्दः]

दयानन्दः—(*नेत्रे उन्मील्य*) *जय भगवन्!*

जय जय विश्वनायक! जगन्नियमानुगुणं
चरति तव प्रभावमहितं भगवन्निखिलम्।
हृदि विषमव्यथादलित ईश! भवत्प्रयते
विहर हरन्नहोऽहसमुदारगुणप्रणयिन् ॥३०॥

योगी—सम्प्रति जिस महात्मा ने यथार्थ प्रतिपादन किया है।
यदि पाखण्ड का—वामाचारका निरसन नही किया गया
तो अतिशीघ्र सारे देश मे—

'राजा गीदड होयेंगे चलमतिः प्रायः उलूक प्रभु,
क्रेंकाराव निसर्गलिप्त वायससमा बलिभुक् बनेगी प्रजा
स्वार्थीवंचकता लिये सदैव बकसे होयेंगे धूर्ताग्रणी,
मार्जाराखिल शास्त्र पण्डित तथा हो गृध्र लोकाग्रणी ॥२८॥[1]

ऐसा ही होने वाला है, मैं समस्त राष्ट्र भ्रमण करके आ
रहा हू। सारे देश में तो

गया वेदज्ञान प्रशमन परा वैदिक कथा,
विनष्टा वर्णों की व्यवहृति अतत्रा जनकथा,
यथेच्छा वाचाल प्रतिदिन चले स्वपथ में,
स्वतत्राचारों से पतन अनुकूल प्रकशित ॥२९॥

तो दयानन्द! यह तुम्हारे योगबल के लिये शुभ अवसर है।

दयानन्द—बड़ी कृपा है आपकी, आप दोनों को अभिवादन
करता हूं, अच्छा चलूं तो!

दोनों—कल्याणकारी मार्ग हो तुम्हारे!

[चले जाते हैं]

[स्थान—अलखनन्दा तट, दयानन्द समाधि मे बैठे हैं]

दयानन्द—[आंखें खोलकर]

जय भगवन्!

"जय जय विश्वनायक! जगन्नियमानुसारी,
चल चल रहा प्रभाव, तव भगवन् निखिल,
हृदय विषम व्ययापीडित ईश! प्रयतमान रहूं,
हर हर हराप समूह उदार गुण प्रणयिन् ॥३०॥

दुरधिगमान्ततत्व मुनिदेवगणाभिनुत
श्रुतिशतशोधिताशय शिवङ्कर ! शेषतया ।
करणकलापरोधविमला ननु योगजुषो
गतभयमादिशन्ति भवतो भगवन्निलयम् ॥३१॥

अकुशलसंगमोहितधियः सुखलेशपुरां
नहि कलयन्ति युष्मदुदयं परिपीय नराः ।
अकलितमाय विश्वसदसत्परमार्थदृश-
स्तव चरितामृतानि मुनयोऽभयवन्ति पपुः ॥३२॥

उरुमहिमव्ययोहितसमस्तनिसर्गभरं
जगदुदयस्थितिक्षपणशक्तितया लसितम् ।
विविधमतेन कलिकुहरे मनुजास्तमसा
ननु निपतन्ति हन्त भवदीयमहोऽकलनात् ॥३३॥

सदसद्बोधमूढहृदये, त्वयि वा चरत-
श्चरणमनन्यमागतवतो भवतः कुटिलाम् ।
विषमपयव्यथां परिहरन्नमृताय मयि
कुरु कुरु, देव ! देव ! करुणां भगवन् ॥३४॥

(सर्वत्र विलोक्य) अहो परमपावनो हिमालयप्रदेशः । इयं सरिद्वराऽलखनन्दा । असौ हरिद्वारमनुगतः पर्वतभागः । इयमितो दूरावलम्बिनी शिखरावली । ततः कैलासशैल-पर्यन्तः शिखरप्रान्तः । अहो सर्वथा हिमालयो मन्दिरं प्रकृतेः, रंगस्थलीव हिमानी वसुंधरा; स्थाने-स्थाने विजितकरणाः परमात्मशरणा योगिचरणाः, दुरवगाहिन्यो वाहिन्यः, रञ्जितविश्वमनांसि सरांसि, गलितकंधरा निवासवन्धुराः कन्दराः, आलेखितांबरपथः मृगसंचयः, सहोदरा इव

कठीनतमसारे ऋषि देवगणादि स्तुत,
श्रुति बहुसंस्कृतान्तर शिवकर! शेष रहे!
करणकलापरोध अमला, नहि योगिजन!
गतभय कहते भगवन् तेरा निलय ॥ ३१ ॥
अनिपुणसंग मोहित मति, प्रमुदांश सुरा,
जन नितपान किये नहीं, तेरा ऊदय,
मुनिगण पीत तेरा निरतिशयामृत तव अहो,
अकृत जगत् सदसत् परमार्थ दृशो ॥ ३२ ॥
उरुगुरुता तिरस्कृत समस्त निसर्ग तेज,
भव जननस्थिति विनशन् सामर्थ्य तमोपशुभ,
विविध गती कलिकुहरस्थ नरनारी भ्रमी,
बनते तव ईश न सगति प्रापण से ही ॥३३॥
सदसद् ज्ञान मूढ मन में तब सेवा रत ही,
चरण कमलान्तर्मुखी कुटिलाव व्यथा,
अवगत नित्य करते सुधामय तुझमें,
निखिल निराकृति, संस्थित कर कर करुणाकर देव ॥३४॥

(सर्वत्र निहार कर) अहो हिमालय प्रदेश परम पावन है, यह देव नदी अलखनन्दा है, यह पर्वतमाला हरद्वार की ओर चली जा रही है, यह इधर से शिखरावली दूर चली गयी है। उधर कैलास मानसरोवर तक पर्वत शृंखलाएं गगन चुम्बिनी चली गयी हैं, सचमुच हिमालय प्रकृति माता का मन्दिर है, हिमानी भूभागरंग भूमि सा है, पदे-पदे जितेन्द्रिय परमात्म मग्न योगीश्वरों की वास भूमि है! नदो-नाले दुस्तीर्ण है, मानवो के मनों का मोहने वाले सरसरोवर है, सुन्दर मनोहर गिरीगव्हर भरे पड़े हैं, आकाशस्पर्शी पर्वतपथ विस्तृत है, ये नन्हे नन्हे मृगशावक सहोदर जैसे हैं, शिष्यों के समान अनुशासित विहगावलियाँ हैं, लता पादप वल्लरियां बन्धुभगिनियों के समान

मृगशावकाः, शिष्या इव विहंगाः, बान्धवनिभा महीरुहाः, अहो किं न सुखकरं हिमालयस्य, यत्र नित्यं प्रसीदति मुक्तिः। नमस्ते विश्वविधायिने देवदेवाय।

(उत्तिष्ठति)

प्राप्तं मया प्राप्तव्यम्। अधुना भारते गन्तव्यम्। दर्शयितव्यो मया वेदसनातनमार्गः। किञ्च योगिना कुतार्किकनिराकरणाय विद्या समुपार्जनीयेति समादिष्टोऽस्मि। आः किं भयं परमात्मचरणावलम्बिनो मम? (गच्छति) अहो आमर्षतीव हिमालयः स्नेहेन।

भवतु, नमो जय जय!

(इति निष्क्रान्तः)

(स्थानं यमुनातीरम् विरजानन्दकुटी; भारतेन्द्रः)

भारतेन्द्र–हन्त, परिश्रान्तोऽस्मि सर्वतो भ्रमणेन। भूयान् कालो व्यतीतो वेदविद्यालयं प्रहीणवतो मम। तथापि सतीर्थ्यस्य न क्वापि मूलशङ्करस्य नामापि श्रूयते। हन्त कथमुन्मत्त इव भ्रमामि। अथवा किं करोमि? निराश्रयं मां संस्कार एव भ्रमयति। सांप्रतं तु विद्यालाभोऽपि परिहृतकल्पः। किन्तु विविधप्रान्तप्रवासेन देशस्यान्तर्व्यवस्था प्रत्यक्षीकृता।

ध्वस्तं मन्ये भारतस्य गौरवम्। अथवा किं करोतु वराकः विदेशसहायो देशः। आः अन्यदिव भारतम्। परिश्रान्तोऽत्रास्मि। मथुरामागतस्य श्रुतं मया तत्र भवतो विरजानन्दस्य गौरवम्। तमेवमाराधयिष्यामि सांप्रतं

है; ओहो हिमालय का कण-कण तो सहज सौन्दर्य से भरा पडा है, अणु-अणु मे मुक्ति मुखरित हुए है। यहा पर, नमन हो नमन हो महान् कलाकार विश्व के विधाताको !

[उठ खडा हो जाता है]

मुझे अभीष्ट मिल गया है, अब मुझे भारत मे ही चलना चाहिये वैदिक सत्यसनातन मार्ग का पुन स्थापन करना होगा, और योगीश्वर ने तो मुझ कुतर्कोंके समुचित निराकरण करने के लिये सत्यविद्याग्रहण करने की आज्ञा प्रदान की है, भला प्रभुपरायण मुझे किसका भय है ? (चल पडता है) ओहो ! यह हिमालय तो स्नेहसे खीच रहा है मुझ ! इसे नमन हो, नमन हो !

[वहाँ से निकल पडता है]

समय. प्रभातवेला, स्थल यमुनातट स्थान विरजानन्द कुटीर,

भारतेंद्र—हाय रे, मैं तो थक कर चकनाचूर हो गया हू, चारो ओर घुमने से, बहुत समय बीत गया है। वेदविद्यालय म आये हुए मुझे। तो भी मेरे सहपाठी मूलशकर अभी तक नाम भी तो सुनाई नही पडता,' मैं भी पागलो को भाँति क्या घूम रहा हू ? अथवा करूँ भी तो क्या करूँ ? निराधार मुझे ये सस्कार ही तो घुमा रहे हैं। और अब तो विद्याभ्यास भी नही हो रहा है, किन्तु विविध प्रदेशो की यात्रा से देश की अन्तर्व्यवस्था समझ मे आ गयी है। '

लगता है भारत का गौरव नष्ट हो गया है अथवा क्या कर सकता है विदेशी–सहायता जीवित रहने वाला राष्ट्र ? यह तो दूसरा ही जैसा भारत लग रहा है। थक तो गया हू, यहाँ मथुरा मे आकर मुझे पूजनीय स्वामी विरजानन्दजी का नाम सुनने मे

विद्यालाभाय। इयं नेदिष्ठा महात्मनः कुटिका। किं त्वेतदप्याकर्णितं यत्स महात्मा नाध्यापयति मन्दमेधाविनं शिष्यम्। [सरोषम्] अहो विद्यादंभः! अथवा न दम्भः शुक्तिषु वर्षन्तः पयोधरा मौक्तिकानि जनयन्ति।

संप्राप्य शिष्यान् विमलप्रबोधान्
वर्षन्ति विद्यां गुरवः प्रसन्नाः।
न कर्दमे शारदचन्द्रबिम्बं
पदं विधत्ते कुमुदानुरागि ॥३५॥

तथापि तस्य महानुभावस्य दर्शनमवश्यं करणीयम्। निकटे च कुटिका। यावदत्र विश्रम्य गमिष्यामि। अहो श्रुतं मयाऽस्ति तत्र कोऽपि दयानन्दः संन्यासी तमेव सेवमानो यस्य गौरवं मथुरायां गीयते गृहे गृहे इति। अवश्यं

पुत्रः स्वभक्तः कुलमस्तदोषं
ज्ञानं विवेकोदयमात्मबोधम्।
शिष्यः कृतज्ञो जगतीतलेऽस्मि-
श्चतुष्टयं दुर्लभमेव मन्ये ॥३६॥

ननु स मूलशङ्कर एतादृश एवाभवत्।

[नेपथ्ये]

अपि मम वचः सत्यं करिष्यसि? [श्रुत्वा] मन्ये स एव महात्माऽऽगच्छति किमपि वदन्। भवतु, एकान्ते तिष्ठामि। [तथा करोति]

[ततः प्रविशति श्रीगुरुदेवविरजानन्दः सदयानन्दः]

विरजानन्दः—अपि मम वचः सत्यं करिष्यसि?

आ गया हूँ, जिन्ही की सेवा करके विद्याभ्यास करूँगा। अब तो पास में ही तो—महात्मा की कुटिया, परन्तु सुना तो यह भी है ये स्वामीजी मन्द-बुद्धियों को नही पढाते (गुस्से से) हाय रे विद्यादम्भ ! नही नही, यह दम्भ नही है, सीपों में पड़ी हुई वर्षाकी बूँदें ही मोती बन जाती है।

'सद्बुद्धि शिष्यगण से गुरु मोद पाके,
ज्ञानाम्बु वर्षण सदा करते प्रसन्न,
क्या शारदेन्दु रखता पद पंकभू पें,
चाहे है चन्द्र कुमुदावलि वल्लभाति ॥३५॥

ऐसे महात्मा के दर्शन करने का पुण्य प्राप्त करना ही चाहिये, पास में ही तो कुटिया है, अच्छा थोड़ा सा विश्राम कर लूं यहाँ पर। हाँ हाँ यह भी सुनने में आया है, इन्ही स्वामी महाराज की सेवा में रहकर एक दयानन्द नामका संन्यासी विद्याध्ययन कर रहा है, दयानन्द का घर घर मे जय जयकार हो रहा है, ठीक है :—

पिताभक्त सन्तान कीर्तिशाली,
शुभ ज्ञान मण्डित हो आत्मबोधी,
कृतज्ञानुगामी सुशिष्यावली जो,
सुदुर्लभ ये चार ससार मध्ये ॥३६॥

अरे हाँ, वह मूलशकर भी तो ऐसा ही था,

(नेपथ्य मे)

तो मेरी बात सच्ची करोगे ? (सुनकर) लगता है वही महात्मा कुछ बोलता हुआ चला आ रहा है, अच्छा तो एकान्त में खड़ा हो जाऊं,

(एकान्त में ठहर जाता है)

(श्री गुरुदेव विरजानन्द के साथ दयानन्द प्रवेश करता है)

विरजानन्द—तो मेरी बात सच्ची करोगे ?

दयानन्दः—भगवन् गुरो ! सत्यं करिष्यामि ऋतं वदिष्यामि ।

[भारतेन्द्रो दयानन्दं पश्यति]

विरजानन्दः—दयानन्द ! प्रसन्नोऽस्मि तव विद्यया । मम वाञ्छितां गुरुदक्षिणां दास्यसि ?

दयानन्दः—गुरुवर्य ! आत्मेरितेयं मे प्रतिज्ञा, प्राणदानेनाऽप्यहं भवतां वचः सत्यं करिष्यामि । आज्ञापयन्तु गुरवः ।

विरजानन्दः—[सहर्षम्] वत्स ! दयानन्द ! पुत्र !

अज्ञानतिमिरे घोरे दुर्वारे मोहसागरे ।
मज्जन्तं हा निरालम्बं वेदभानुं समुद्धर ॥३७॥

नानाधर्मघनध्वान्त-नष्टसत्यपथ पुनः ।
वेदभानोः प्रकाशेन जगज्जीवय साम्प्रतम् ॥३८॥

दयानन्दः—अनुगृहीतोऽस्मि । गुरुदेव ! प्राणार्पणेनाऽपि सर्वं करिष्यामि ।

विरजानन्दः-विजयी भूयाः, वत्स ! अन्धस्य मे त्वमेव चक्षुरसि । एहि एहि परिष्वजस्व ।

[दयानन्दः पादयोः पतति]

भारतेन्द्रः-[स्वगतम्] किमिदं भोः ! स एवायं लक्ष्यते, सैवाकृतिः स एव स्वरः । हन्त मूलशङ्करोऽयम् । अथवा मार्तण्डमन्तरा यस्तमो हरिष्यति ?

विरजानन्दः-वत्स दयानंद ! याहि कल्याणाय । जानामि दुर्दशां देशस्य । य प्रतीकारं कर्तुमिच्छसि त कुरु । विजयं दास्यति भगवान् । शिवाः सन्तु ते पन्थानः । शिवतातिरस्तु ।

दयानन्द—गुरुवर्य, सच्ची करूंगा, सत्य बोलूंगा,

(भारतद्र दयानन्द को देखता है)

विरजानन्द—दयानन्द, तेरी विद्या से मैं प्रसन्न हूं, मेरी अभीष्ट दक्षिणा दे सकोगे दयानन्द ? मुझे—

दयानन्द—गुरुदेव ! मेरी प्रतिज्ञा तो आत्मप्रेरित है। यह आपकी बात को मैं प्राण देकर भी पूरा करूंगा। महानुभाव, आदेश दीजिये !

विरजानन्द—वत्स ! दयानन्द ! पुत्र !

'अज्ञान अन्धकार दुर्निवार मोह सागर में
निमग्न निराधार वेद भानु को उबार ले।
नाना पन्थ सम्प्रदाय ध्वान्त नष्ट सत्यमार्ग
जीवन दे वेदज्योति से जगत को अब सुधार ले ॥३७॥

दयानन्द—अनुगृहीत हू, गुरुदेव ! प्राणार्पण करके भी सब कुछ करूंगा।

विरजानन्द—विजयी बनो ! वत्स ! मुझ अन्धे की आँख तू ही तो है, आ कर आलिंगन तो दे जा,

(दयानन्द चरणों में गिरता है)

भारतद्र—(स्वगत) अरे, यह क्या ? यह तो वैसा ही लग रहा है, वही आकृति है, वही स्वर है, मूलशंकर है क्या यह ? अथवा सूर्य के बिना अन्धकार को हटा सकता है ?

विरजानन्द—(सहर्ष) पुन दयानन्द ! कल्याण के लिये यहाँ से जाओ, देशधर्म की दुर्दशा तो जानते ही हो, जैसा भी प्रतिकार करना चाहते हो वैसा करो, भगवान् विजयी बनायेंगे, शिवास्ते पन्थान: सन्तु' तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी होवे, कल्याण ही कल्याण होवे।

[दयानन्दः प्रणमति, विरजानन्दो गच्छति]

दयानन्दः–जय भगवन् ! जय ! फलितो मे मनोरथः । एषोऽहं गुरुशासनं विधास्यामि । अः किमिदमूर्जितमिव वपुषि ?

भारतेन्द्रः–[आगत्य] महात्मन्, नमस्ते ।

दयानन्दः–[साश्चर्यम्] अये, कः भारतेन्द्रः ?

भारतेन्द्रः–आम् मूलशङ्कर ! [इति प्रणमति]

दयानन्दः–उत्तिष्ठ सखे ! उत्तिष्ठ । चिराद्दृष्टोऽसि ।

भारतेन्द्रः–किमिदं शङ्कर !

दयानन्दः–यदुचितममृताय ।

भारतेन्द्रः–जितं संन्यासेन, श्रुता मया तव प्रतिज्ञा । धन्य भारतम् ।

दयानन्दः–प्रियं नः । कथय त्वं कथं पर्यटसि ? कुशली महानुभाव श्चन्द्रशेखरः ?

भारतेन्द्रः–[साश्रु] कुशलं तस्य । जानाति मां सखा । निरालम्बोऽस्मि ततोऽपि भवदीयपुण्यसंस्कारो मां व्याकुलयति ।

दयानन्दः–प्रियं प्रियम् । किं किं कृतम् ? अहो त्वां दृष्ट्वा समतीतं प्रत्यक्षमिवालोकयामि ।

भारतेन्द्रः–भगवद्गमनादनन्तरं मयाऽपि वेदविद्यालयं परिहरता देशे देशे ग्रामे ग्रामे यथाशक्ति धर्मोपदेशं कुर्वता प्राप्तमन्ते तव चरणम् ।

दयानन्दः–प्रियं प्रियम् । का कथा देशस्य ?

भारतेन्द्रः–दशमी दशा वर्तते ! विपर्यस्तं भारतं, अस्तमितं पुरातनगौरवम्, शेषितं साधुचरित्रम्, निर्मर्यादं वर्णानुचरणम्,

(दया नन्द प्रणाम करता है, विरजानन्द प्रस्थान करते हैं)

दयानन्द – जय हो भगवन् ! मेरा मनोरथ सफल हो गया है, यह मैं गुरु के आदेश का परिपालन करूंगा, यह शरीर में रोमांच क्यों हो रहा है ?

भारतेंद्र—[निकट आकर] महात्मन् ! नमस्ते !

दयानन्द—[आश्चर्य से] अरे, कौन भारतेंद्र है ?

भारतेंद्र—हाँ, मूलशंकर ! [कहकर अभिवादन करता है]

दयानन्द—उठ उठ मित्र ! चिरकाल के बाद दीख रहा है ।

भारतेंद्र—यह क्या है शकर !

दयानन्द-अमृत के लिये जो उचित है,

भारतेंद्र-संन्यासी बनकर तुमने जीत लिया है, मैंने तुम्हारा प्रण सुन लिया है, धन्य है भारतवर्ष को !

दयानन्द—हमारा भला हो, बता तो सही तू क्यों घूम फिर रहा है ! महानुभाव चन्द्रशेखर सानन्द तो है न ?

भारतेन्द्र—(आँसु भरी आँखों से) हां कुशल है उसका, मुझे जानते तो हो तुम ! बेसहारा हूं, तिसपर भी तुम्हारे शुद्ध संस्कार मुझे व्याकुल किये हुए हैं ।

दयानन्द—अच्छा, अच्छा, क्या क्या किया है ? तुझे देखकर तो अतीत प्रत्यक्ष हो गया सा लग रहा है मुझे !

भारतेन्द्र—तुम्हारे चले जाने के बाद मैं भी वेद विद्यालय छोड़ कर देश देश, ग्राम ग्राम में यथाशक्ति धर्मोपदेश करता हुआ तुम्हारे कदमों में आ पहुंचा हूं ।

दयानन्द—अच्छा अच्छा ! क्या दशा है देश की ?

भारतेन्द्र—देश की दुर्दशा है; भारत बदल गया है, प्राचीन गौरव नष्ट हो गया है, साधुचरित्र समाप्त हो चुका है, वर्णाश्रम धर्म निर्मर्याद हो रहा है, दुर्भिक्षने खा

कवलितं दुर्भिक्षेण, निर्गलित दारिद्र्येण, भक्षितं भ्रष्टाचारेण, वञ्चितं शिक्षया, समास्कन्दितं पाश्चात्यावलेपेन, सर्वथा अभूतपूर्वं भारतं वीक्ष्य दूयते मे मानसम्।

अधीत्य शास्त्राण्यधमा यथाशयं
कथंचिदाविष्कृतलेशदुर्ग्रहाः ।
ऋषिप्रणालीमतिशेरते सखे !
कुलं शुनामिच्छति सिंहरूपताम् ॥३९॥

दयानन्दः–श्रोतव्यं श्रावितोऽस्मि ।

व्यर्था विद्या भवति सकला बंधनस्थे स्वदेशे
व्यर्थं सर्वं भवति सकल बन्धनस्थे स्वधर्मे।
व्यर्था शक्तिर्भवति विपुला बन्धनस्थ स्वदेशे
किं न व्यर्थं भवति भुवने बन्धनस्थे स्वधर्मे ? ॥४०॥

सांप्रतं गुरुशासनं पालयिष्यामि। अतःपरं देशधर्मयोर्बन्धनानि छेत्तुं जीवनार्पणं करोमि। अपि नाम रोचते ममानुगमनम् ?

भारतेन्द्रः–आः किमुच्यते ? सर्वदा भवच्चरणसेवको भूत्वा विचरिष्यामि। किन्तु...

दयानन्दः–ननु वक्तव्यम्।

भारतेन्द्रः–दुःसाध्यमिदम्।

दयानन्दः–किं दुःसाध्य दृढग्रहेण ?

भारतेन्द्रः–तथापि केचन स्वभावतः सपत्ना भविष्यन्ति। अवमानस्तु शिरस्येव स्थितः।

दयानन्दः–मा, मा, विकल्पय। न श्रोष्यामि ते वचः। यदि तव दृढा श्रद्धा भारतविपत्तिरासाय, तर्हि शृणु–

लिया है, दरिद्रता ने देश को लील लिया है, भ्रष्टाचार ने खा लिया है, शिक्षण से वंचित होता जा रहा है, पाश्चात्य मिथ्याभिमान ने घर दवाया है, सर्वथा नवीन नवीन भारत देखकर मेरा मन मुरझा चुका है :—

पामर पढकर शास्त्र, यथाशय दुर्ग्रह शाली
करते अर्थ अनर्थ सर्वथा सशोधन मतिवश,
ऋषिमर्यादोल्लघन करते हैं वे,
कुत्ता कुल मे जन्म, सिंह बनने को तत्पर ॥३९॥

—सुन तो सही, जो मैं सुनाना चाहता हूँ—

बन्धन में निज देश, व्यर्थ सारी विद्याएँ,
बन्धन में निज धर्म, व्यर्थ सारी अभिधाएँ
बन्धन मे निज देश, शक्तियाँ सारी व्यर्था
जग मे है सब व्यर्थ, पाश मे यदि हो धर्म ॥४०॥

अब मैं गुरुदेव के शासन का परिपालन करूँगा, देशधर्म के बन्धन को काटने के लिए अब मैं जीवन समर्पित कर रहा हूं, क्यों तुम मेरे पिछे चलना चाहोगे ?

भारतेन्द्र—इसमें पूछने की क्या बात है ? सर्वथा तुम्हारे चरणों का सेवक बनकर घूमा करूंगा । किन्तु……

दयानन्द—कहो न, चुप क्यों हो गये ?

भारतेन्द्र—दु साध्य है यह,

दयानन्द—दृढाग्रह के सामने कैसा दु:साध्य ?

भारतेन्द्र—तथापि कुछ तो स्वभावतः ही शत्रू बन जायेंगे, अपमान सिर पर बैठा ही समझो !

दयानन्द—नही नही ऐसा सोचना ठीक नही है, मैं तेरी बात नही सुनना चाहता, यदि सचमुच तुम भारत दुर्दशा नष्ट करना चाहते हो तो सुन :—

आ जाये क्षण पै न भीति करना कौलीन वादों से भी,

ऊंचे मानव विश्वहेत नियत व्यापारवन्तोन्नति,
योग्यायोग्यविचारहीन सतत आत्मप्रशंसास्मृति,
ना मोही बन साम्प्रतं कर सदा कर्तव्य की पालना,
ना डरियों क्षण आपदे गृहयश त्यागार्थं संसाधना ॥४१॥

भारतेन्द्र—[चरणों में गिरता है] अनुगृहीत हूं,

दोनों—नमस्ते, नमस्ते संसारानन्द हेतु भगवान् को।

[दोनों चले जाते हैं]

इति "गुरुदक्षिणानामक" तृतीयः अंकः समाप्तः

चतुर्थोऽङ्कः

॥असतो मा सद्गमय॥

(स्थान हरिद्वारं; कनखलस्योपसीम, कुंभावसरः, प्रातः कालः, सन्यासिवृन्द पश्यन्तौ प्रविशतौ महेन्द्रनिरंजनौ यात्रिकौ)

महेन्द्रः—निरञ्जन ! अपि नाम संकल्पिता भवता सस्थितिः ? यात्रिकाणां कृते कनखेलं प्रचुरावकाशं स्थानम् । यदि नाम तवानुकूल स्यात्, तत् संश्रयतां मदीय निकेतनम् ।

निरंजनः—महेन्द्र ! नास्ति प्रयोजन चिरावासाय । अद्य श्वो वा जानीहि गमनाय माम् ।

महेन्द्रः—कथमिद सकल्पितम् ! ननु द्रष्टव्यं न भवता दृष्टम् । आगतप्रायः कुम्भस्नानसमयः ।

निरंजनः—वयस्य ! नावशिष्यते द्रष्टव्यम् । आप्यायितोऽस्मि कुम्भदर्शनकुतूहलेन । अतस्त्वामाप्रष्टुमेवागतः । यदि रोचते भवते, स्थातव्यम् । अहं तु गमिष्यामि ।

महेन्द्रः—महाभाग ! न जाने, कीदृश चञ्चल ते चित्तम् ! ननु ग्रामे भवतैव पूर्वं महोत्सवं कुम्भदर्शनसौख्यमधिगन्तु बलवती समुत्कण्ठा प्रदर्शिता मयाऽनिच्छताऽपि भवतः स्नेहवशादनुमतोऽयं व्यवसायः ।

चतुर्थ अंकः

॥ असतो मासद्गमय ॥

स्थान-हरद्वार; कनखल के समीप, समय-प्रातःकाल; कुम्भ का अवसर; महेन्द्र और निरजन साधु सन्यासियों का दर्शन करते हुए प्रविष्ट होते हैं)

महेन्द्र—निरजन ! अपने लिये स्थान स्थिर कर लिया है। यात्रियों के लिये कनखल पर्याप्त स्थान है, यदि तुम्हें अनुकूल रहे तो मेरे स्थान मे रह जाओ।

निरजन—महेन्द्र ! कोई लम्बा समय थोड़े ही रहना है. ? आज या कल मुझे जाना पड़ेगा !

महेन्द्र—ऐसा क्यो कहते हो ? तुमने कुछ दर्शनीय तो देखा ही नही है; कुम्भ स्नान का समय सन्निकट है।

निरंजन—मित्र ! अब देखने की इच्छा नही रही। कुम्भ दर्शन की चाह से भर गया हूं; इसलिये तुम्हे पूछने के लिये आया हू; तुम्हें यहाँ रहना जंचता हो तो रह जाओ, मैं तो चला जाऊंगा !

महेन्द्र—महाशय, न जाने तुम्हारा मन कितना चचल है, तुमने ही तो गाँव में कुम्भ दर्शन की उत्सकता बतायी थी, नही तो मैं कब चाहता था यहाँ आना ? किन्तु तुम्हारे प्रेमवश आना पड़ा यहाँ !

निरंजनः—अनुभूतं मया समस्तम् । अवलोकितमवलोकयितव्यम् ।

महेन्द्रः—किमनुभूत किमवलोकितम् ? वयस्य ! श्रुतं मया कुम्भसमये सर्वे एते नग्नाप्राया अनेकसम्प्रदायानुयायिनः सन्यासिसाधवो गङ्गायां नग्नीभूय स्नास्यन्ति, तदर्थ देशादनेकशः श्रद्धाना जना दर्शनकांक्षिणः प्रतिवासर समागच्छन्ति । भोः स्थानमपि दुरापं भविष्यति । किं व्यतीतवासरे न भवता वीक्षितं यत् जनरक्षाप्रबन्धव्यवसायव्याकुलाः सहस्त्र सचरन्ति रक्षकाः सर्वत्र । गमनागमनयोः पन्था विभिन्नः कृतः । पारेगङ्गमपि नूतनं जीवलोकमिव निवासित व्यवस्थया सैकते जनसमवायं समीक्ष्य चकितचकितमिव मदीयं चेतः शून्यमिव मन्ये । मित्रवर्य ! कियद्रहस्य धर्मस्य ? (दृष्ट्वा) पश्य दूरात्कश्चिदवधूत—(नग्नः) साधुसघातः इत एवागच्छति । आगच्छ ययास्थानं स्थिरीभवावः ।

निरंजनः—हा धिक् भारतवर्षदुर्भाग्यदर्शनम् ।

महेन्द्रः—आः किमुच्यते ? ननु नमस्या एते सन्यासिनः ।

निरजनः—नैते सन्यासिनः परं धर्मध्वजिनः सत्यनाशिनः अवधारय रहस्यम्—

"नानाजातिभवाः कपूयचरणा धर्मप्रयाध्वंसकाः
स्वाच्छन्द्येन मलीमसाः कलिमलग्रस्ता भ्रमन्त्युत्पथाः ।
दोषावेशवशादबोधितनिजक्रूराभिधानक्रियाः
पापा भारतवर्षदुर्गतधराभाराय सन्यासिनः" ॥१॥

महेन्द्रः-(सक्षोभं) आः किमिदं न नमनकर्मीकरोषि धर्मशर्मपारगं देशोदयपरायणं सन्यासवृन्दम ?

निरंजन—मैंने सब अनुभव कर लिया है, दर्शनीय के दर्शन कर लिये हैं।

महेन्द्र—क्या अनुभव कर लिया है? क्या देखाभाला है? भैय्या! मैंने सुन लिया हैं कि कुम्भ के अवसर पर ये नांगे आदि भाँति-भाँति के सम्प्रदाय वाले साधु महात्मा गंगा में नंगे होकर स्नान करेंगे, इसी के लिये समस्त देशके असख्य दर्शनार्थी श्रद्धालुजन प्रतिदिन आ रहे हैं, ऐसे तो स्थान मिलाना ही मुश्किल हो जायेगा, क्या कल तुमने नही देखा कि जनता की रक्षा में सहस्त्रो राजपुरुष सलग्न है, आवागमन के मार्ग अलग अलग कर दिये गये हैं, गगाके परले तटपर भी वालुकामयी भूमि पर नई नई सजीव सृष्टि साकार होते देखकर मेरा चकित मन सूना सा हो गया है, मित्रवर! कितना रहस्य है धर्म का? (देखकर) देखो, देखो, दूर से आती हुई नंगे साधुओंकी टोली इसी ओर आ रही है। चलो हम स्थान पर खड़े हो जाये!

निरजन—हाय रे! अभागे भारत! तेरी यह दुर्दशा?

महेन्द्र—क्या कह रहे हो? अरे वह तो नमस्य साधु सन्त है।

निरजन—नही ये सन्यासी नही है, किन्तु धर्मध्वजी सत्यानाशी हैं। जानते हो इनका रहस्य?

'विभिन्नवर्णोद्‌भव पापचेता धर्मप्रथाव्वंसक ये समस्त,
स्वच्छदता बद्ध मलीनवृत्त, प्रगल्भता पूर्ण फिरें कुपन्थ
अनेक दोपोपहत क्रियार्थ स्वपाप सदर्शित नीच भाव
मंन्यासधर्मी अघओघराशी निमित्त ये भारत दुर्दशा के॥१॥

महेन्द्र—(क्षोभ के साथ) हाय रे, यह क्या निन्दा कर रहे हो? धर्म एवं कल्याणों के प्रदाता, देशोदय निरत महात्मा साधु सन्यासियों की?

निरंजन:—वयस्य ! विप्रलब्धोऽसि । न जानासि चरित्रमेतेषाम् । गतास्ते भारतसौभाग्यविधायिनः सन्यासिनः, येषां पुण्यचरणरजोभिः पूतं भारतं स्वर्गायमानमिव दिव्यतामनुभवति स्म । दुर्लभं हि तेषां दर्शनम् । सांप्रतमधिकाधिकं धिक् क्रियते क्रूरकर्माभिधर्ममर्मप्रहारिभिर्बहुभिर्भारत कुक्षिम्भरिभिर्भारभूतैः सन्यासिभिः ।

नाधीत विधिवत्कुलक्रमयशोऽलङ्कारशंकाकरै–
रेभिः शास्त्रमशेषवोभवजुषः का वा कथा शर्मणः ।
सन्यस्ताखिलसत्यधर्मनियमाः क्रूरक्रियाः पांसुला
देशस्याभ्युदयावरोधनपरा एते तु सन्यासिनः ।।२।।

महेन्द्रः–आः किं कथयसि ? वयस्य ! अमङ्गलं साधुजननिन्दाचरणम् । सांप्रतं विपरीतमिव पश्यामि भवन्तम् । ननु सा भवतः श्रद्धा स्वप्नायिता किमु ?

निरंजन –सखे ! सत्यं वदामि, न साधुजनविगर्हणं श्रेयस्करं, किन्तु सिंहचर्मावृताः शृगाला न योग्यतामर्हन्ति तेषाम् ।

महेन्द्रः–कथं एतेऽपि यथासंभवं निजं निजं मण्डलं विधाय, सर्वासु दिक्षु सदुपदेशपीयूषपूरैरघतमांसि मानवानां क्षालयन्तः सर्वदा संचरन्ति भारते ।

निरजनः–[विहस्य] मन्ये, न भवान्भारतीयः । न जानासि विषमपरिणतिमेतेषाम् । त्वं तु पुरातनगौरवस्य स्वप्नसुखमनुभवसि । शृणु—

निर्मायाघमनोचयूर्तशवरप्रायं निजं मण्डलं
कुर्वाणा. कपटावलेपकुशला ग्रामे जनास्कन्दनम् ।

निरजन—मित्र ! तुम बड़े सरल हो, इनका चरित्र नही जानते हो, वे सन्त साधु सन्यासी भी मर मिट चुके हैं, भारत के वे भाग्य विधाता, जिनकी पवित्र चरणरज से पवित्र यह भारत देश स्वर्ग से बढ़कर था, ऐसे महात्माओं के दर्शन अब दुर्लभ है, और इस समय तो पापपंकमग्न क्रूरकर्मनिरत, धर्म मर्म प्रहारक, पेट भरने वाले भाररूप अधिकांश ऐसे संन्यासियो को धिक्कार है।

'ये राष्ट्रोन्नति मार्ग बन्धन कर प्रत्यग्र दम्भाकर,
सन्यासी श्रुति शास्त्र सार रहित प्राय: प्रघृष्टाकर,
विद्या प्राप्त न की यथोक्त विधि से प्रज्ञा प्रकाशान्तर
क्ता आशा इनसे स्वराष्ट्रहितकी ये पापपंकाकर ॥२॥

महेंद्र—अरे क्या बकते हो ? सखे ! साधु संन्यासियो की निंदा अमंगल सूचक होती है, अब तो तुम विपरीत लगने लगे हो; वह श्रद्धा तो तुम्हारी स्वप्न सी हो गयी है।

निरजन—बन्धो ! सच कह रहा हूं, मैं भी यही मानता हूं, कि साधु महात्माओं की निन्दा अकल्याणकारी होती है, किन्तु सिंह की खाल ओढ़े हुए सियार, सिंह की योग्यता कैसे पा सकते हैं ?

महेन्द्र—क्यों ये साधुसन्त भी तो अपनी मण्डली बनाकर चारों दिशाओ में सदुपदेश अमृतवचन वारिसे मानवों के पापान्धकार को मिटाते हुए सर्वदा घूमते रहते हैं, भारत भर में !

निरजन—(मुस्कुराता हुआ) लगता है तुम भारतीय नही हो ! तभी तो तुम्हें इन साधु सन्तों की भयंकर स्थिति का ज्ञान नही है, तुम तो प्राचीन गौरव की सुखनिद्रा का अनुभव कर रहे हो, सुनो :—

बनाते ये पापी निज-निज समूह भ्रमण को,
यों लीलाचारी नगर जन या ग्रामजन को, ।

हार हारमनन्तवित्तमधिकं मोदं दधाना इमे
लोकोल्लुण्ठनलम्पटा प्रतिपदं देशक्षयं कुर्वते ।। ३ ।।

तथा च—

नो शास्त्राध्ययनं न साधुचरण न धर्मकर्मस्पृहा
संसाराभ्युदयप्रशस्तपदवी दूर समेषां गता ।
रूपाक्षाः कुलकण्टकाः कृतिमतां विद्वेषिणो दुर्गताः
स्थेमानं कलयन्ति भारतधराभाराय सन्यासिनः ।।४।।

महेन्द्रः-वयस्य, वयस्य ! विलक्षणं तव हृदयम् । साम्प्रतं बहु प्रष्टव्यं वर्तते ।

निरंजनः-यथेच्छ पृच्छ महेन्द्र !

महेन्द्रः—ननु किमु सर्वेऽपि संन्यासिनस्तादृशा धर्ममर्मविघातका ?

निरजनः-शान्तं पापं शान्तं पापं, वयस्य ! साधुजनविरोधेन कः श्रेयः समेति ? नहि निखिला एकधुर्यवाहिनः । शृणु-

प्रतिपदमुपकारस्फीतसौभाग्यकीर्त्या-
तिलकितमवदानैर्गौरव भारतस्य ।
सरणिमुदयविद्यां शीलशिष्टा दिशन्तः
परमपथनिविष्टाः सन्ति सन्तो महान्तः ।।५।।

महेन्द्रः-ननु यदि तादृक्षा. कल्याणभूमयः सन्ति परेऽपि साधवस्तदा कथमेतेषां प्रचारो दृश्यते भारते ?

निरजन-सखे ! बहूनि निदानानि । अन्धंकरणं जनानां पाखण्डजालम् । यत्र पतिता उचितमनुचितं नावधारयन्ति मनुजाः । साधुचर्या-विधानमपि दोषपक्षे निक्षिपन्ति पापभाजः । हतकालबलादधर्मः श्रेयसे संमतः सर्वेषाम् ।

फवें मोदाभारी तन मन धन प्राप्ति करके,
करें नित्यं सत्य निरसन ही ये देशहित के ॥३॥

और भी

नही शास्त्राभ्यासी, नही सुजन सेवी सुभमति,
नही लोकोद्धारी, परजन हितैषी शुभगति,
महाभ्रष्टाचारी कुलयश विघाती अरि सताम्
अरे ये सन्यासी धनमलनिवास क्षरकृताम् ॥४॥

महेंद्र—मित्र, तुम्हारा हृदय बडा विचित्र है, अभी तो बहुत कुछ पूछना है ।

निरजन-यथेच्छ पूछो महेन्द्र !

महेंद्र—क्यों जी ! क्या सभी साधु सन्यासी ऐसे ही धर्म मर्म विघातक है ?

निरंजन-शात पापम् मित्र ! साधु सन्तो के विरोध से कही भला होता है ? सभी महात्मा एक ही धुरा धारण करने वाले नही है सुनो :—

प्रतिपद उपकार स्फीत सद्भाग्य कीर्ति,
तिलक कृत सुशस्त प्राजलत्व प्रकाशी,
सुपथगमन शाली, धर्मबोधी समस्त,
सुभग भारतखण्डे है यतीश प्रशस्त ॥५॥

महेन्द्र—हाँ, जब अन्य भी अनेक परोपकारी सन्तमहात्मा हमारे देश मे विद्यमान है, तो इन धूर्तो का इतना सफल व्यापक प्रभाव क्यो है ?

निरंजन-सखे ! इसके अनेक कारण है, पाखण्डी जाल मे फंसकर जनता अन्धी हो गयी है, इस जाल मे फंसे नरनारी सत्य असत्य का विवेक खो बैठते है; पापी तो सदाचार को ही दोष बताते हैं, दुर्भाग्यवश जनता अधर्म को ही कल्याणकारी मानने लगती है । स्वदेश के स्वतन्त्रता आभास से विदेशियो के शासन की नकल करने से

तथा च स्वदेशस्य स्वातंत्र्याभासेन वैदेशिकशासनानुकरणादवधीरितधर्मविधानेषु यथेष्ट प्रवतमानेषु जनपदेषु च शिक्षादर्शेष्वपि स्वार्थपरायणेषु विमुखतामधिगतवत्सु च स्वदेशोदयसंपादने साम्प्रतं विपमदशापरिपाकोन्मुख भारतवर्षम् ।

महेन्द्रः–[सखेदं] हन्त दुखःकरं देशदुर्दशाश्रवणम् [विचार्य] सखे ! इमे साधवः किं न जानन्ति समाजपरिस्थितिम् ?

निरजनः–[विहस्य] स्वप्नेऽपि न जानन्ति किमपि ।

कोऽध्यक्षः कियती प्रजा जनपदे, देशस्य का वा दशा,
का नोतिर्जनतार्हिताय रचनासौख्यावहा कीदृशी ।
को वा लोकपरोपकारनिरतः केषामभीष्टं च किं
हन्तेत्थं सुविचारशून्यहृदयो भाराय साधुव्रजः ।।६।।

महेन्द्रः—आः, आकुलं हृदयम् । नातः परं श्रोतुं समर्थः स्वदेशदशादुर्गमम् ।

निरंजनः—अतो गन्तुमिच्छामि गृहम् ।

महेन्द्रः—भवतु । आगच्छतु अद्य कनखलादारभ्य हरिद्वारप्रदेशमवलोकयावः ।

[ततः परिक्रामन्ति पटपरिवर्तनम्]

निरंजनः—पश्य, एते जाह्नवीसैकते विशाले पटकुटीरसंनिवेशे नानाजातिभवा पर्यटनपरायणाः साधवः श्रीरामचन्द्रस्य नाम मुहुरारटन्ति । [विहस्य] सर्वेषां शिरोजटालं मृल्लाञ्छितं कपालं, श्यामं गात्रं, विशालं वक्षःस्थलं, भूरि-

भारतीय सस्कृति एवं धर्म की उपेक्षा से शिक्षण क्षेत्र में पर्याप्त शिक्षा विदों के हाने पर भी हमारा राष्ट्र-भव्य भारत देश दिनों दिन अवनति के गर्त मे धंसता चला जा रहा है !

महेन्द्र—[सखेद] हाय रे देश की दुर्दशा ? [सोचकर] मित्र, ये सन्यासी नही जानते होंगे देश की अधोदशा को ?

निरजन–[फीका मुस्कुराकर] स्वप्न में भी नही जान पायेंगे ये !

कौन है राजा हमारा कौन जनता है ।
कितनी सुखा है प्रजा की, देश की कैसी दशा है ?
नीतियां जनता हितैषी, या विरोधी दु:खदायी
कौन है परम लाभकारी कौन अभिलाषा किसी की
जोन जनजनतापहारी कष्टवारी शान्तिचारी
देश सुखवर्धक हैं ये, विपरीत सन्यासी विकारी ॥६॥

महेन्द्र—हाय रे ! मेरा मन तो व्याकुल हो रहा है, मैं अधिक नही सुन सकता भारत की दुर्दशा को !

निरंजन—मैं तो अब घर लौट जाना चाहता हूं ।

महेन्द्र—अच्छा ! आओ, आज कनखल से लेकर हरद्वार तक सब देख आवें ।

(इतने में पटाक्षेप होता है)

निरंजन-देखो, भागीरथी की वालु के विशाल प्रदेश में बने डेरा तम्बुओं मे भिन्न-भिन्न प्रदेशों और वर्णों में जन्में ये घुमन्तू साधु सन्यासी बारबार श्रीराम का नाम रट रहे हैं, [हंसकर] सब के सिरों पर जटाएँ, मिट्टी पुते मस्तक, सांवला शरीर, विशाल वक्ष:स्थल, खूब सारी लकड़ियां तापने के लिये, तपे हुए शंखचक्रों से चिह्नित भुजाओं से एवं कन्धों से विकराल विकृत वेशभूषा से भयकर बने, ये

सन्निधापितकाष्ठमालं, तप्तशङ्खचक्रलाञ्छनजालं, भुजा-स्कंधस्थल कराल चेति वेशविक्रिया श्रीरामचन्द्रस्य गौरव घोषयन्ति !

महेन्द्रः—(विहस्य) अहो रमणीयं दर्शनम् ! किं च महासभा-रोऽयं मस्करिसंघः ।

निरंजनः—एतत्पश्य । नीलधाराख्यापिते गङ्गातटे नीलगिरितले च सर्वत्र यात्रिकरक्षाविधानाय संचरद्भी रक्षकैर्निर्मिता स्थानसमारचना सुव्यवहितसाधना । एते वयं संप्राप्ता. कनखलप्रदेशमतिक्रम्य हरिद्वारं, एतद्धि पुराणप्रसिद्ध तीर्थम् ।

महेन्द्रः—(दृष्ट्वा) सखे निरञ्जन ! विलोकय, विलोकय । अस्मिन्विशाले सद्मनि साधूनां मण्डलम् । अहो महती समारम्भरचना । आ: किमिदं राजकुलम् ?

निरंजनः—देवाधिदेवकुल सखे ! पश्य दुर्भाग्यं स्वदेशस्य, अथवा अवहेलना सनातनधर्मस्य । हा कष्टं, कष्टम्—

आसूर्योदयमाचरन्ति विविधं कष्टं मिताऽन्नाप्तये
दीना वेश्म विना च कुक्षिभृतये हीना महोजीवना: ।
एते मोदकमोदिता दृढतरग्रावौघसंघट्टिते
वासं रम्यमठालये च्युतधिय. साधुब्रुवा: कुर्वते ॥७॥

महेन्द्र—वयस्य ! त्वया देशपरिभ्रमणेन महत्पाण्डित्यमधिगतम् । आपातबुद्धिर्मादृशो जनो यथादृष्टं न्याय्यं गणयति । [विलोक्य] अरे, पश्य, पश्य अस्मिन् स्थाने गजा, वाजिन:, क्रमेलकाश्च बद्धा: किं कोऽपि भूपतिरत्र भविष्यति ?

निरंजन—[विहस्य] नहि मित्र ! सर्वमेतेषाम् । एते कुम्भ-स्नानसमये हस्तिवाजिक्रमेलकादिवाहनान्यारुह्य विचित्र-वरणाभरणा गङ्गास्नानं कर्तुं गमिष्यन्ति एतेषु केचन नग्ना:, केचित् कमनीयवेषधारिण:, अरे अश्वपाश्व-

सब ऐसे ही श्रीराम के गौरव को उद्‌घोषित कर रहे है।

महेंद्र—क्या सुन्दर लगते हैं ये! कितना बडा भारी है यह पाखण्डियों का एकत्र यह मेला!

निरंजन-यह देखो, नील धारा (गंगा के) तटपर तथा नील शैल के नीचे सर्वत्र यात्रियों के सुरक्षा के लिए घूमते फिरते ये रक्षादल उनकी बनायी स्थान आदि सुन्दर व्यवस्था को। हम लोग कनखल को छोडकर हरद्वार मे आ पहुँचे हैं, हरद्वार पुराण प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है।

महेंद्र—(देखकर) मित्र निरंजन! देखो देखो इस विशाल प्रासाद मे साधु सन्तों का बडा भारी जमघट। कितना बड़ा भवन है? क्या यह राजप्रासाद है?

निरंजन-देवाधिदेव का कुल है मित्र! देखो स्वदेश का यह दुर्भाग्य, अथवा सनातनधर्म की अवहेलना। बड़ा कष्ट है यह :-

श्रमिक किसान दीन हीन उदरपूर्ति हेतु सुखविहीन,
क्षुधादाय मुट्ठी भर अन्न काज, दिवस रात श्रम निलीन
और सन्त ये महन्त मोदक मिष्टान्न स्वाद मे विलीन
महलों मे वास, श्वास श्वास में बिलास, नष्ट बोध
साधु है मलीन।

महेंद्र—सखे! तुमने तो देशभ्रमण से बड़ी जानकारी प्राप्त कर ली है। आपात बुद्धिशाली मुझ ऐसा व्यक्ति तो यथोचित न्याय की ही बात करता है (देखकर) अरे निहारो तो जरा, इस स्थान पर हाथी, घोड़े और ऊंट बन्धे खड़े हैं, क्या कोई राजा होगा यहाँ पर?

निरंजन—नही मित्र! सब इन्हीं साधु सन्तों के है! कुम्भ स्नान के समय ये महात्मा हाथी, घोड़ों, ऊँटों पर आरुढ होकर चित्र विचित्र आभूपण धारण करके गगास्नानार्थ जाते

तत्पराः, अन्ये रक्षभट्टाश्च भूत्वा प्रातर्गमिष्यन्ति । संमिलितो जननिकायो दर्शनमेषां कृत्वा भाग्योदेयं गणयिष्यति । आः–

ये विश्वेषामुपकृतिहिते कर्तुमभ्यस्तदीक्षा
येषां लोकाभ्युदयदयिता शस्यते पुण्यशिक्षा ।
तेषां दृष्टवा निरयविषमां दुर्दशां दोषजुष्टां
कष्टं कष्टं विधिविलसितं मानसं दन्दहीति ॥८॥

महेंद्रः-एवम् पदे पदे पदमापदाम् (विलोक्य) निरीक्षस्व गङ्गातीरम् । शीतवेपिताङ्गाः केचन परान् स्नानाय प्रेरयन्ति । (अन्यत्र) अहो दृष्टव्यं कश्चिज्जटिलः सलिलमवतीर्णो नग्नीभूय निःशङ्कं बहिरागच्छति । पश्य—

निरंजनः—धिक् धूर्तान् पाखण्डपिण्डान् । अस्मिन् निषिद्धाचारे धर्मधी रेतेषाम् ।

अधिस्त्रीसन्दोहं रुचिततमभस्माङ्ककरणाः ।
परं नग्नीभूय प्रकटितमहाधर्मचरणाः ।
विशुद्धं गङ्गाया ननु कलुषयन्तो जलमिमे
न लज्जन्ते मूढा व्यसनशतधूम्राकुलधियः ॥९॥

(दृष्टवा) पश्य । एते वयं ब्रह्मकुण्डविभागादविदूरे पर्वतीयपथेन सप्तस्त्रोतसः पन्थानमाश्रिताः । अत्रापि तेषामेव वसतिः । अयमितो मार्गः ऋषीकेशाभिधानं स्थानमुपतिष्ठते । पश्य, एतत् "भीमगोडा" इति प्रसिद्धं स्थानम् । 　[नेपथ्ये]

भो, भोः सामवायिकाः, श्रद्धालवः ! शृणुत । निःशेषविश्वशुभयुना वेदमातण्डस्य महर्षिदयानन्दस्य जीवनेन समं समस्तपुराणमतध्वमाय मया स्थाप्यते–

हैं, इन साधुओ मे कुछ नागे हैं, कुछ सुन्दर वस्त्रधारी हैं, कुछ विविध गाजेबाजे वाले है और शेष रक्षा सैनिक होकर प्रातःकाल जायगे। हाय रे!

अत्यन्त दुख उपजे अवलोक ऐसे,
सम्भ्रान्त लोकहितसाधक दुर्दशा से,
जो प्राणिमात्र हित मे नितरानिमग्न,
लोकोपकार विधि मे सुतरा अभिन्न ॥८॥

महेन्द्र—ऐसा, कदम कदम पर विपदाओ का घर हैं, (देखकर) देख लीजिये यह गगा का तीर ही। शीत के मारे कुछ लोग दूसरो को स्नान के लिये प्रेरित कर रहे हैं। (अन्यत्र) ओहो। ये देखो वह जटाधारी साधु गगाजल मे उतरा और नगा होकर निःशक बाहर आ गया है।

निरंजन—धिःकार है ऐसे पाखण्डियो को! इन्हे तो पापकर्मो मे भी धर्मबुद्धि हैं!

नारीवृंद सुसेविताघनिरतात्मा श्लाघाय विद्यारिपु
भस्माच्छादित अग अग वसनत्यागी स्वधर्मच्युत,
गंगानीर मलीमसाहत मति प्रच्छन्नमायाघना,
लज्जा ये नही मानते व्यसनधी पाखण्ड भूपानना ॥६॥

(देखकर) निहारो तो! अब हम लोग ब्रह्मकुण्ड के निकट हो पर्वतीय पथ से होकर सप्तधारा के मार्ग मे आ चुके है। यहाँ पर भी साधु सन्तो के डेरे पडे हैं। और यह सीधा मार्ग ऋषिकेश चला गया है यहाँ से! देखो, यह 'भीमगोडा' नामक प्रसिद्ध स्थान है। [नेपथ्य मे]

अरे, अरे, श्रद्धालु भक्तो सुनो, वेदभानु महर्षि स्वामी दयानन्द के मानवकल्याणकारी जीवन से प्रेरणा पाकर मैंने यह निखिल पुराण मत विध्वसन कार्यक्रम के रूपमें यह केसरिया ध्वजा स्थापित की है—

धुनाना पारसवात दिशन्तो शमसंततिम् ।
पताका धर्मवीरस्य सर्वपाखण्डखण्डिनी ॥१०॥

महेन्द्र:—(आकर्ण्य) किमिद वयस्य ! किमिदम् ? अस्ति किमपि लोकनिरीक्षणार्थ कौतुकम् ?

निरञ्जन:—नहि मित्र ! एवमेव यत्र यत्र जनसंघातस्तत्र तत्र धर्मप्रचारार्थं भ्रमन्ति केचन । किन्तु...

महेन्द्र.—किमिदं किन्तु... इति ?

निरजन—एतद्यत सर्वपाखण्डखण्डिनी पताका' इति श्रुत्वा किमपि नूतन वरीवर्त्ति कौतुकम् ।

महेन्द्र:—एवम् (दृष्ट्वा) पश्य तस्मात् स्थानात् केचन रक्षका आयान्ति । तान् पृष्ट्वा तत्त्वं जानीम: । [ततो रक्षका प्रविशन्ति]

नायक:—अरे ! प्रेषिता वयं मुख्येन प्रबन्धकर्त्ता जनरक्षणार्थमुदयपुरत: तन्माभूत्कस्यापि अवरोध इति प्रयतितव्यम् । अथच कश्चिद्वेदशास्त्र-सपन्नो दय नद पुराणमतखण्डनाय समागतो हरिद्वार, तद्विभीषिका दातव्या तस्मै इति नगरनिवासिभिर्विप्रै: सदिष्टम् । तदहं पुनस्तत्रैव गमिष्यामि । यूयमपरेऽपि सावधाना: सर्वत्र भवन्तु । प्रत्यासीदति पर्वसमय. । गच्छ रे गच्छ (इति रक्षका गच्छन्ति) आ: किमिदं धर्मखण्डनम् ? स्वयमेव तादृशा: कोलाहलं कुर्वन्ति, येन रक्षाप्रबन्धे महान्तरायः ।

महेन्द्र·—वयस्य ! अयं रक्षकनायको मम मित्रम् । चिराद् दृष्टोऽद्य मया । आनुयामि । अथवा अहमेव तत्र गच्छामि ।

बताती भद्र मर्यादा पापसंघातनाशिनी ,
श्री दयानन्द स्वामी की ध्वजा पाखण्डखण्डिनी ।।१०।।

महेन्द्र—(सुनकर) मित्र ! यह क्या हो रहा है ? लगता है लोगों के कुतूहल के लिए कोई तमाशा होने जा रहा है।

निरंजन—नहीं भैय्या जहाँ जहाँ जनता होती है वहीं पर धर्म प्रचारार्थ कुछ लोग भ्रमण करते रहते हैं। किन्तु ..

महेन्द्र—किन्तु क्या ? आगे कहो न !

निरंजन—यह ऐसा है कि 'पाखण्डखण्डिनी पताका' का नाम सुनते ही लगता है कि कोई नयी बात होने जा रही है।

महेन्द्र—ऐसा है (देखकर) देखो उस स्थान से कुछ रक्षक आ रहे हैं, उनसे पूछकर मालूम करते हैं कि क्या बात है ?

(रक्षक प्रवेश करते है)

नायक—अरे, हमारे मुखियाने हमें उदयपुर से जनता की सुरक्षा के लिये भेजा है, इसलिये यही प्रयास करो कि अव्य-वस्था न होने पावे। और कोई वेदशास्त्र दयानन्द पुराण मत खण्डन के लिये हरद्वार में पधारे हैं, तो उन्हें डराना धमकाना है, ऐसा नगर के निवासी ब्राह्मणों ने हमें कहा है। तो मैं वहीं चला जाता हूं, तुम भी सभी रक्षक सावधान होकर सर्वत्र घूमते रहो। पर्व वेला आ रही है। जाओ रे जावो (रक्षक चले जाते हैं) हाय रे यह धर्म का खण्डन कैसा ? व्यर्थ में कोलाहल किया जा रहा है यह ! इससे तो रक्षा व्यवस्था में महान् विघ्न होगा।

महेन्द्र—यह रक्षकों का नायक तो मेरा मित्र है। चिरकाल के बाद दीखा है, बुलाता हूं अथवा मैं ही उसके पास जा रहा हूं।

निरजनः-प्रियं नः गम्यताम ।

[तत्र गत्वा]

महेंन्द्रः–ननु विजयसिंह ! विस्मृतोऽसि मां किमु ?

नायकः—[ससंभ्रमं] आः कथं प्रियवयस्यो महेंन्द्रकुमारः? एह्येहि मित्र !

महेंन्द्रः–मित्र ! भाग्येन दृष्टोऽसि । [निरञ्जनं प्रति] अयं विजयसिंहः सममेव मया नगरे विद्यालये शिक्षामग्रहीत् । साम्प्रतमुदयनगरे सेनानायकः संवृत्तः [नायकं प्रति] अयं च महानुभावः स्वदेशभक्तः समुपजातपरिचयो मां कुम्भ-महोत्सवं दर्शयितुमानीतवान् ।

नायकः –शुभं कृतम् । अत्र जनबाहुल्येन भवद्भ्यां मदीये निवासस्थाने स्थितिः कर्त्तव्या ।

महेंन्द्रः-नास्ति प्रयोजनम् । संकल्पितं रुचिरं निकेतनमस्माभिः ।

निरंजनः—[मध्ये] ननु महाभाग ! साम्प्रतं या श्रुता घोषणा सा किं वेदयते ?

नायकः—महानुभाव ! अस्ति कोऽपि दयानन्दः संन्यासी यः पण्डितम्मन्यः सनातनमतखण्डनाय प्रवर्तते । ननु भो नाटकं, नाटकम् !

निरंजनः—[स्वगतं] परुषा प्रकृती राजसेवकानाम् । [प्रकाशं] मैवम् । धर्मोऽयं सत्यदानाय संन्यासिनाम् ।

महेंन्द्रः—ननु गन्तव्यमवलोकनाय ।

नायकः—आगन्तव्यम् ।

निरंजनः—अवश्यमं द्रष्टव्यम् ।

निरजन—यह हमे भी जँचता है, चले जाओ।

(वहाँ जाकर)

महेन्द्र—क्यों विजयसिंह मुझे भूल तो नहीं गये हो ?

नायक—(हड़बडाकर) प्यारे मित्र महेन्द्रकुमार ? आओ प्रिय मित्र !

महेन्द्र—मित्र ! भाग्य से दर्शन हो गये [निरजन की ओर] यह विजयसिंह मेरे साथ ही नगर के विद्यालय में पढ़ता था, इस समम तो यह उदयपूर में सेनानायक है, (नायक की ओर) और ये सज्जन हैं स्वदेश भक्त, नवीन परिचित, मुझको कुम्भ मेला दिखाने के लिये यहाँ ले आये हैं।

नायक—अच्छा किया, यहाँ पर तो बड़ी भीड़ है, तुम दोनों मेरे स्थान पर चलकर रहो।

महेन्द्र—अब कोई आवश्यकता नही है, हमने सुहावना स्थान प्राप्त कर लिया है, रहने के लिये !

निरंजन—(बीच में ही) क्यो जी अभी अभी जो घोपणा सुनी है उसका क्या मतलब ?

नायक—श्रीमन् !दयानन्द नामक कोई पण्डिताभिमानी संन्यासी सनातन धर्म का खण्डन कर रहा है। नाटक ही तो है यह !

निरंजन—(मन ही मन में) राजपुरुषों का स्वभाव कठोर होता है। (प्रकाश में) ऐसा तो नही है, यह तो संन्यासियों का धर्म है।

महेन्द्र—देखने के लिये चलना चाहिये न।

नायक—चलिये।

निरंजन—अवश्य दर्शनार्थ चलना चाहिये।

महेंन्द्रः-वयस्य विजयसिंह ! विराद् दर्शनेन हृदयं स्निह्यति। ननु भवता कदापि न स्मृतः।

नायक.—कथं न स्मरिष्यामि ? परं विलक्षणोऽयं सेवाधर्मः।

महेंन्द्रः—सखे निरञ्जन ! विजयसिंहः पुरा मम जीवनमासीत्। अहो, भाग्येन दर्शनं जातम्।

निरंजन.-कथं न ? स्नेहः परस्परं विना वैभवं स्वर्गसाम्राज्यम्।

यस्यानुस्मरणेऽपि जीवनरसस्वादानुभूतिः परा
सर्वस्वायितमस्ति येन च गुणव्यासंगसंकीर्तने।
उत्कर्षः स च सौमनस्यमधुरे दृष्टे जने प्रयसि
सस्नेहप्रसरं सहर्षरसिकं सोल्लासमास्ते मनः ॥११॥

नायक.—(स्वगतं) अहो प्रियवदो महानुभावः (प्रकाशं) ननु गन्तव्यम्। (इति गन्तुं यतन्ते, ततः प्रविशति रक्षकः)

रक्षकः—(ससंभ्रमं) नायक, नायक ! आगच्छतु, तत्र सहस्रं जनाः समागतास्तत्र महात्मनः सदुपदेशं श्रोतुम्। एकतो विप्रा अपि कोलाहलं कुर्वन्ति, न कोऽपि शृणोति।

नायकः—एष आगतोऽस्मि।

महेन्द्रः—निरञ्जन ! सत्य गतानुगतिको लोकः यत् सर्वं कर्तव्यं विहाय तत्र गताः यदि श्रोतव्यं नाम व्याख्यानं तदा एव गतास्ते कथाकाराः ?

निरंजनः—मैवम्। सत्यासत्यविचारः स्वभावो धीमताम्।

महेंन्द्र—मित्र विजयसिंह ! चिरकाल के बाद दर्शन होने से हृदय प्रेम विह्वल हो उठा है ? क्यो तुमने तो कभी याद भी नही किया ?

नायक—क्यो नही याद किया ? किन्तु सेवाधर्म बड़ा विलक्षण है।

महेन्द्र—निरजन भैय्या ! यह विजयसिंह मेरी जिन्दगी था कभी, अहो भाग्य से दर्शन हो गये है ।

निरंजन-क्यो नही, प्रेम तो बिना वैभव के भी स्वर्गीय साम्राज्य ।

'स्मरणमात्र से जीवन उसका जिसका अनुभव सुखकारी हो,
परम, सब स्वायत्त गुणो का कीर्तन जिसका मुदकारी हो,
प्रिय जनके मीठे दर्शन से मनकलिका विकसित हो जाती,
स्नेहपुरस्सर हृपभावना भरे हृदय मे गति बो जाती ।।११।।

नायक—(स्वगत) यह बहुत मधुरभाषी है (प्रकाश में) तो चलना चाहिये ।

(इस प्रकार चलने का प्रयास करते है, इतने में रक्षक प्रवेश करता है)

रक्षक—(हड़बड़ायासा) नायक ! नायक ! आइये, आइये, वहाँ पर तो हजारों व्यक्ति उस महात्मा के उपदेश सुनने के लिये आये ! दूसरे ब्राह्मण लोग भी कोलाहल कर रहे हैं, कोई भी नही सुनता ।

नायक—यह आया मैं ।

महेन्द्र—निरंजन ! सचमुच ससार गतानुगतिक है, भेड़ियाँ समान है, सारे कार्य छोड़छाड़ कर लोग वहाँ गये हैं यदि ऐसे व्याख्यान सुनने लायक हैं, तो वे कथावाचक है जो बुरा मानते हैं ऐसे व्याख्यानों को !

निरजन:-ऐसी बात नहीं है सत्यासत्य निर्णय ही बुद्धिमानों का स्वभाव होता है ।

वितथमवितथं वा जानता सर्वकालं
खलवचनविनोदे नादरः सज्जनानाम् ।
व्यतिकरमथ काका. क्षीरनीरप्रभागे
यदि नहि विवेदन्तां सन्ति दक्षा मरालाः ॥१२॥

(रक्षक प्रति) भो रक्षक ! कीदृशः स सन्यासी ?

रक्षकः—महाभाग ! अहं किं जानामि? परमेव मया कर्णाकर्णिकया श्रुतम्—

वाणी श्रियं परममायतन पवित्रा
लोकत्रयोज्वलकरं परमस्य तेजः ।
आश्वासनाय जगतः श्रितयोगिमूर्ति-
राविर्बभूव किमु पुण्यपरोपकारः ॥१३॥

नायकः—आगच्छन्तु त्वरितम् ।

सर्वे.—यथाऽऽदिशति भवान् (इति गताः)

(ततः प्रविशति गुणेन्दुना सह दयानन्द)

गुणेन्दुः—भगवन् ! धर्मोद्धारक ! यद्यपि यथावदवस्थित, पराजिताः परे पुराणावलम्बिनः, निराशीभूय निर्गता अपि, संहतिमङ्गीकृत्य पुनरपि प्रत्यवस्थास्यन्ते भवन्तमिति तेषां प्रत्युद्योगपरामर्शेन किञ्चदुपलक्ष्यते । क्षणमात्रक्षुण्णोऽपि परा रूढिमागतोऽयं राजयक्ष्मेव पुराणन्यग्रोधो न सहसा भूमिसाद्भवति । न जाने विधिवैमुख्यं कियती कष्टपरम्परामेव दर्शयिष्यति ?

दयानन्दः—बन्धो ! मनुन्मूल्य पापमूलं दयानन्दः सुखं स्थास्यतीति त्वया स्वप्नेऽपि न स्मरणीयं प्रतिदिनं प्रोज्झितव्यतेऽन्तरात्मा ।

वितथ अवितथों को जानते सर्वदा है,
न खलकथन से ये मानते मान विज्ञ,
सलिल पय विभागी शक्ति क्या वायसों में,
विदित सब किसी को हंस-सामर्थ्य यामें ॥१२॥

[रक्षक से] अरे सिपाही भैय्या ? कैसा है वह साधु ?

रक्षक—श्रीमन् ! मुझे स्वय तो कुछ पता नहीं है, किन्तु कानों कानों यह सुना है।

वाणी पवित्र शुभ लक्षण युक्त श्रीला,
लोकत्रयोज्वल सशक्त यतीश तेज।
ग्मार हेतु धृततापस पुण्यकाया,
साक्षात् अवश्य यह पुण्यपरोपकार ॥१३॥

नायक—चलिये न शीघ्र !

सब—जैसा आपका आदेश (सब चले जाते हैं)

[इतने में गुणेन्दु के साथ दयानन्द का प्रवेश)

गुणेन्दु—महाराज ! धर्मोद्धारक ! भले ही आप विजयी हो गये और पौराणिक पराजित हुए है, निराश होकर चले भी गये है, तो भी वे लोग मिल मिलाकर आपको घेरना चाहेगे, ऐसा लग रहा है उनकी गतिविधियों से ! राजयक्ष्मा की भांति यह पौराणिक मतरूपी वटवृक्ष, योंही थोड़ी देर के प्रयास जड़मूल से नहीं उखाडा जा सकता। कौन जानता है भगवान की विचित्र लीला को, वह कितकितना कष्ट देगा ?

दयानन्द—वन्धो ! जब तक दयानन्द पापकी जड़ों को मूल से नही उखाड़ फेंकेगा तवतक आराम से बैठ जाएगा, तुम्हें यह स्वप्न में भी नहीं सोचना चाहिये। मेरा आत्मा अहो रात्र चिन्तित है इसके लिये।

गुणेन्दुः—देव ! सूत्रधारस्त्वमसि देशोदयस्य। त्वदीयं पन्थानमारुरुक्षवः सर्वेऽपि भारतीया न कदापि परमुखप्रेक्षिणो भविष्यन्ति। तथा च सत्यसुधाविधायिना समभिप्रेतप्राणार्पणेन भवता समभिप्रणीतः सनातनतत्त्वोत्कर्षविभावसुः समस्ते भारते भस्मसाद्विधास्यति पाखण्डकाननम्। मन्ये प्रस्पन्दते सौभाग्यलाभाय भारतस्य हृदयम्।

दयानन्दः—करुणासिन्धुः श्रेयो विधास्यति।

गुणेन्दुः—योगिप्रवर ! अन्धा अमृतमपि त्यजन्ति। प्रतिक्षणं प्रस्तुतनानाधर्मकूटकोटैः परिक्षीर्णं भारतोद्यानम्। आस्तथापि भवता समुपदिष्टं सत्यमवजानानाः पुराणप्रियाः पण्डिताः प्रत्यर्थिनो भवन्ति। अथवा अलमलं तैः प्रयुक्तया विडम्बनया।

दयानन्दः—वयस्य ! सत्यं दृष्टवानसि। साम्प्रतं न जानन्ति स्वार्थावलेपव्याकुलास्ते परमतः स्वीकरिष्यन्ति वैदिकमेव पन्थानम्।

गुणेन्दुः—भगवन् ! अनेन प्रकारेण भविष्यद्धर्मप्रचारः प्रत्यहं विघ्नबाहुल्यमात्मनं लघिमानमापादयति।

दयानन्दः—सिद्धो नास्ति संशयः, परं प्रत्यूहप्राया सत्यसंकल्पना किन्तु पुष्करस्थानादत्र विशेषं विलोकयामि

गुणेन्दुः—ओमेवम्।

दयानन्दः—इतः परं गङ्गातटे कियत्कालं विहर्तुमिच्छामि।

गुणेन्दुः—किमर्थं, किं परिहाय धर्मप्रचारम् ?

गुणेन्दु—देव ! आप ही तो हैं देशोदय के सूत्रधार ! आपके पथपर चलने वाले सभी भारतीय कभी परमुखापेक्षी नही होगे और सत्यप्रकाशन के लिये सर्वस्व समर्पित करने वाले आपने जिस सनातन तत्वानल को प्रज्वलित किया है, वह समस्त पाखण्ड कानन को भस्म सात कर देगा। मुझे लगता है कि सौभाग्य लाभ के लिये भारत का हृदय उछल रहा है।

दयानन्द—करुणाकर सत्यनारायण कल्याण करेंगे।

गुणेन्दु—योगेश्वर ! अन्धे तो अमृत भी छोड़ देते हैं, प्रतिक्षण ही इन विविध प्रकार से प्रकटित धर्मकूट किटो ने तो भारत उद्यान को खा लिया है, तो भी आपके बताये सनातन वैदिक धर्म की अवज्ञा अपमान करने वाले ये पुराणपन्थी दूर आप के विरोधी हुए हैं, वैसे इन पण्डितों के तिरस्कार से घबराने की आवश्यकता नही है।

दयानन्द—मित्र ! तुमने सत्य जान लिया है, भले ही इस समय ये सब स्वार्थ वश विरोध करें, किन्तु निकट भविष्य में तो ये भी वैदिक धर्म को ही स्वीकार करेंगे।

गुणेन्दु—भगवन् ! इस प्रकार से तो प्रतिदिन होने वाले विघ्न बाहुल्य से आत्मा मे हीनता की भावना आ जायेगी।

दयानन्द—सिद्धी तो निर्विवाद है, तो भी सत्य सकल्प में विघ्न होते ही है, इस स्थान पर मुझे कुछ विचित्रता लग रही है।

गुणेन्दु—सच्ची बात है,

दयानन्द—मैं तो इसके बाद कुछ समय गंगातीर परिभ्रमण करना चाहता हूं।

गुणेन्दु—क्यों ? धर्मप्रचार छोड़ देंगे क्या ?

दयानन्दः-किं ब्रूषे बन्धो ! ननु जीवनेन समं धर्मस्यावसानं दयानन्दस्य; तेन यथा गन्तव्य काशीनगरम् ।

गुणेन्दुः—[स्वगत] हन्त दीप्यते पवित्रमान्तरं ज्योतिः, स्फूर्जित महसा । [प्रकाशं] यथादिशति देवः ।

[इति निष्क्रान्तौ]

दृश्यं तृतीयम्

[स्थान कर्णवासः गङ्गातटः, गुणेन्दु]

गुणेन्दुः-नमस्ते परमात्मने । नमो वैदिकधर्माय । अहो उत्तपते प्रतिक्षणं वैदिक ज्योतिः । सर्वत्र वैदिकधर्ममर्मविकासनाय पर्यटनं कुर्वता श्रीदयानन्देन साम्प्रतमत्रापि साफल्यमापि । (विलोक्य) अहो ! मूर्तिमता श्रुतिसारेणव समुपदिश्यते भगवता दयानन्देन कुटीराजिरे धर्मरहस्यम् । अहमपि महात्मनः सेवया जन्मासाफल्य करोमि ।

—नेपथ्ये—

इत इतो महाराज ! इयमेव कुटी तस्य । (आकर्ण्य) किमिदमवहेलनासमिश्रं वचनम् ? (विचार्य) आं स्मृतम् । स एव रासक्रीडादर्शनप्रत्याख्यानेन तिरस्कारेण कोपनः कर्णसिंहः । कतिपयनिजपरिवारप्रायः प्रतीकार कर्तुकामः श्रीदयानन्दस्य नेदिष्ठ गन्तुं व्यवस्यति ।

आः कीदृशोऽयं व्यामोहो राजन्यानाम् ? अथवा राज्यवैभवविलासमदिरोन्मीलितमदाघूर्णिता न कलयन्ति हितमहितं वा ।

अहो महनीय गाम्भीर्यं श्रीदयानन्दस्य ! यदयं पामरपुरुषदंतदूषणोऽपि महोदधिरिव न मर्यादामतिक्रामति । यतो

दयानन्द–क्या कह रहे हो ? यह धर्म प्रचार तो दयानन्द के जीवन के साथ ही वन्द होगा, इस परिभ्रमण के साथ मैं काशी पहुंचना चाहता हूं।

गुणेन्दु–(स्वगत) ओहो, इसके तो अन्तर में पवित्र ज्योति जलने लगी है, सहसा (प्रकाश मे) जो आज्ञा हो देव !

दृश्य-तृतीय

[स्थान गगा तटवर्ती कर्णवास तीर्थ ग्राम]

गुणेन्दु—नमस्ते परमात्मा के लिये, वैदिक धर्म के लिये नमन हो, अहा प्रतिपल यह वैदिक ज्योति प्रतप्त होने लगी है, वैदिक धर्म की स्थापना के लिये घूमने वाले श्री दयानन्द तो सर्वत्र सफलता प्राप्त कर रहे हैं। (देखकर) ओहो ! साकार से वेदमर्म का ही उपदेश दे रहे हैं, ये महानुभाव स्वामी दयानन्द महाराज अपनी कुटियो के आँगन में। इनकी सेवा करके मैं भी अपना जन्म सफल करूँ।

नेपथ्य मे—

इधर इधर महाराज ! यही कुटिया है उसकी (सुनकर) यह मैं अपमान जनक वचन कैसे सुन रहा हूं ? (विचार करके) हाँ, स्मरण हो आया, रासक्रिडा के दर्शन के निषेध से अपमान मानने वाला यह वही क्रोधी कर्णसिंह है। अपने ही पारिवारिक जनों को साथ लेकर, यह स्वामी दयानन्द के समीप जाना चाहता है।

अरे क्षत्रियों में यह कैसा व्यामोह है ? अथवा राज्यवैभव विलास में मदिरापान से यह घहराती राती आंखो के कारण इन्हें हित-अहित नही सूझता।

यतिवर दयानन्द का गांभीर्य प्रशंसनीय है, पामरो से घोर अपमान पाकर भी ये समुद्र के समान गंभीर मर्यादा का अति-

स्वभावगंभीरा: साधव: । सत्यमेव जयति नानृतम् । तथापि परदोषवीक्षणपटूनां कुलकमोऽयं सज्जनजनास्कन्दनम् ।

लोकोपकारनियतेषु जनापवादाद्
भीतेषु शीलचरणाय पदे पदेऽपि ।
स्वच्छेषु कोमलतरेषु च सज्जनेषु
पश्यन्ति पापमतयः स्वचरित्रचित्रम् ॥१४॥

(ततः पुरुषैः सह कर्णसिंहस्य प्रवेश.)

एकःपुरुषः-(गुणेन्दुं दृष्टवा सावज्ञं) ननु रे क्वासौ दयानन्दः ?

गुणेन्दुः-(स्वगतं) आः सावलेपं वचः ? (प्रकाश) किमस्ति रे किङ्कर ! किमस्ति प्रयोजनम् ?

द्वितीयः-अरे न पश्यसि किं महाराजम् ?

गुणेन्दुः-अरे को महाराजः ?

तृतीयः-आः मूढ ! किं वृथा प्रलपसि ?

गुणेन्दुः-आः किङ्करापसद ! किं करिष्यसि त्वम् ?

प्रथमः-ते शिरश्चूर्णयिष्यामि ।

गुणेन्दुः-अहं त्वां गङ्गायां पातयिष्यामि ।

द्वितीयः-अरे ब्रह्मबटो ! अद्य त्वां तव स्वामिना समं गङ्गायां पातयितुमागता वयम् ।

गुणेन्दुः-[सक्रोधं] अरेरे पामरापसद ! राजकुक्कुर !

दुर्दान्तसिन्धुरवातगण्डखण्डनपण्डितः ।
केसरी किं शृगालेन सटाकर्षणमर्हति ॥१५॥

कर्णसिंहः-(प्रविश्य) ननु भोः किमनेन, भो ब्रह्मबटो ! क्व संन्यासी दयानन्दः ?

क्रमण नहीं करते। वस्तुत: साधुपुरुष सहज गंभीर होते हैं, 'सत्यमेव जयते' नानृतम् 'सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं, परदोषदानेनिपुणों का यह कुलक्रम ही है सज्जनों का तिरस्कार करना।

लोकोपकारत मीत जनापवाद से
सच्च जनों का शुभ-शील पदे पदे तो,
स्वच्छो चरित्र विमलोन्नत सज्जनों का
है देखते निजसमान अघो चरित्र ॥१४॥

(अनेक पुरुषों के साथ कर्णसिंह प्रवेश करता है)

एक पुरुष—(गुणन्दु को सापमान देखकर) कहाँ है रे वह वेद निन्दक !

गुणन्दु—(स्वगत) कितनी अपमान भरी वाणी है ? (प्रकाश में) क्या बात है रे नोकर ? क्या चाहता है तू ?

दूसरा पुरुष—क्यों रे महाराज को नहीं देखता ?

गुणन्दु—अरे कौन महाराज है ये !

तिसरा पुरुष—ओ मूख ! क्या बकता है व्यथ में !

गुणन्दु—अरे दुष्ट नौकर ! तू क्या करेगा ?

प्र. पुरुष—तेरा सिर चूर चूर कर दूंगा।

गुर्णेन्दु—मैं तुझे गगा मे डुबो दूंगा।

दूसरा व्यक्ति-ओ ब्राह्मण पुत्र ! आज तुझे तेरे स्वामी के सामने ही गगा मे डुबाने के लिये आये है हम।

गुणेन्दु—(सक्रोध) अरे रे अधमाधम ! राजा के कुत्ते !

दुर्दान्त हस्ति प्रति गण्डखन्डन शंसित,
केसरी क्या सियारो से, जटाकर्षण चाहता ॥१५॥

कर्णसिह—(प्रवेश करके) अरे इसमें क्या प्रयोजन है ? ओ ब्राह्मण पुत्र ! वह सन्यासी दयानन्द।

गुणेन्दुः-एष पुरतः कथां कुर्वन्नध्यास्ते श्रीदयानन्दः। आगच्छ दर्शनार्थं महाभाग!

कर्णसिंहः-एवम्।

(सर्वे परिक्रामन्ति। दयानन्दः कथा करोति)

गुणेन्दुः-(उपसृत्य) नमस्ते भगवन्! एष कर्णसिंहः सराजपुरुष आगतः।

दयानन्दः-(विहस्य) आगच्छतु

(कर्णसिंहस्य प्रवेशः) तं विलोक्य—

दयानन्दः-ननु आसनपरिग्रह कारयतु महाराजेन।

(सर्वे यथास्थानं तिष्ठन्ति)

दयानन्दः-अनामय महाराजस्य?

(कर्णसिंहः सक्रोधं न वक्ति)

एकः पुरुषः-आम्, अनामय महाराजस्य, ननु महाराज! भवद्भी रासक्रीडा दर्शनं कथं तिरस्कृतम्?

दयानन्दः-महाभाग! नाहं भारतदुर्भाग्यलीलादर्शनं करोमि।

कर्णसिंहः-(मध्ये) ननु कः प्रत्यवायो भवताम्? परेऽपि सन्यासिनः पण्डिताश्च यथावसर दर्शनाय समागच्छन्ति।

दयानन्दः-सत्यं, तथापि पापावह वामावेषधारिणोऽनुकरणकारिणः पुरुषस्य दर्शनं शास्त्रेषु सन्यासिनाम्।

कर्णसिंहः-ननु मया श्रुत, भवता प्रतिमापूजायाः तीर्थस्य च विधियेत विरोधः।

दयानन्यः-यथाश्रुतं भवद्भिः।

कर्णसिंह-साम्प्रतमहं निषेधयामि, न भवता यत्रापि विरोधः कर्तव्यः।

गुणन्दु—वे रहे सामने कथा कहते हुए श्री दयानन्द महाराज!
आइये महाराज, दर्शन करले चलकर ?

कर्णसिंह–अच्छा!

(सब चल देते है, दयानन्द कथा सुना रहे है)

गुणन्दु—(निकट जाकर) नमस्ते भगवन्! ये राजा कर्णसिंह, अपने भृत्यो के साथ पधारे हैं।

दयानन्द–(मुस्कुराकर) आइये पधारिये। [कर्णसिंह का प्रवेश]
[उसे देखकर] अरे महाराज को आसन प्रदान करो।

[सब यथा स्थान बैठ जाते है]

महाराज! सब कुशल है न् (कर्णसिंह क्रोधवश कुछ नही कहता]

एक सेवक-हाँ जी! महाराज सर्वथा कुशल है, स्वामी जी!
आपने रामक्रिडा दर्शन का तिरस्कार क्यों किया ?

दयानन्द—महाशय! मैं भारत के दुर्भाग्य का दर्शन नही करना चाहता ?

कर्णसिंह—(बीच मे ही) किन्तु महाराज! ह तो बतलाइये कि आपको क्या आपत्ति है इसमे? और भी तो है साधु महात्मा एव पण्डितवर्य, जो समय-समय पर दर्शन के लिये आते रहते है।

दयानन्द सच है यह, किन्तु शास्त्रो मे स्त्री वेषधारी तथा अनुकरण करने वाले पुरुषो का दर्शन सन्यासियो के लिये वर्जित है।

कर्णसिंह–मैंने तो सुना है कि आप मूर्तिपूजा और तीर्थस्थान का विरोध करते है।

दयानन्द—आपने ठीक ही सुना है।

कर्णसिंह–इस समय तो मैं ना कर रहा हू कि आप कही भी विरोध ना करें।

दयानन्द–राजन् ! सत्यधर्मस्थापनाय जन्म दयानन्दस्य, तत्किं भवतां निषेधेन ? अथवा महाराज ! भवतैव क्रीडितव्यम् ।

क्षेमंकरैर्निगमचरणैर्नीतिशौर्यप्रतिष्ठा
ये राज्यस्य स्थितिनियमनादात्तदण्डाः प्रपन्नाः ।
उत्कर्षाणामचलगिरिभिर्येश्च राजन्वतीभू-
स्ते राजानो विषयविषय नाटकं क्रीडयन्ति ॥१६॥

राजन् ! राज्यधर्मविरोधः परमापदां पद, धर्म्येण कर्मणा प्रजारञ्जन राज्यन्यकुलक्रमः । ततः प्रजापालनतत्परो भूः ।

कर्णसिंहः–(मध्ये सक्रोधं) नाहं धर्मकथां श्रोतुमागतः । ननु आज्ञापयामि न खण्डन कर्तव्यम् ।

दयानन्दः—ननु अहमपि प्रतिज्ञां करोमि । कल्पान्तेऽपि न सत्य त्यक्षामि । तथा च अद्यैव गत्वा कर्णराज ! भवता रामक्रीडा दूरीकरणीया ।

(कर्णसिंहः तूष्णीं भवति)

एकः पुरुषः—स्वामिन् ! अत्र न गन्धोऽपि दोषस्य । केवलं मनोरञ्जनं महाराजस्य । अथवा पूर्वसुकृतवशात् प्राप्तेन धनेन यदि महाराजेन नानुभूयते विलासानुभवस्तदा केनापि मितंपचेनानुभूयते ?

गुणेन्दुः—अरे किं वृथाऽपृष्टं ब्रूषे ? न वित्तेन विलासानुभवः परं जन्मलाभः श्रीमतः—

दयानन्द—राजन् ! सत्यधर्म की स्थापना के लिये ही दयानन्द का जन्म हुआ है ।

तो आपके ना करने से क्या होता है ? अथवा आपको लज्जित होना चाहिये, कर्णराज ! इस घृणित कार्य से !

वेदोक्त भद्रभव मौख्य विधान नीति,
स्वीकार थी जिन नरेंद्र महेश्वरों को
राजन्वती सतत थी धरिणी जिन्हो से,
वे ही नरेश विषयी इन नाटको से,
ये आत्तदन्ड जनता सुख हेतु बद्ध,
उत्कर्षता गिरी शिखरासन सन्निनद्ध ।।१६।।

नरेश ! राज्यधर्म विरोध, असीमित आपदाओं का कारण हो जाता है । धर्म पूर्वक कर्तव्य पालन से क्षत्रिय कुलकीर्ति बढती है । अतः आप प्रजापालन कार्य में तत्पर हो जावें ।

कर्णसिह—(बीच मे ही क्रोध करते हुए) मैं धर्मकथा सुनने नही आया हूं, मेरी आज्ञा है कि खन्डन नही करना ।

दयानन्द—लो मेरी भी प्रतिज्ञा अच्छी प्रकार से सुन लो—मैं कल्पान्त तक भी सत्य नही छोड़ूगा और कर्णसिह अभी जाकर रासक्रिडा को बन्द करा दो ।

[कर्णसिह चुप हो जाता है]

एक सेवक-स्वामीजी, इसमें दोष की गन्ध भी नही हैं, यह तो महाराज का मनोरंजन मात्र है । अथवा पुरबले पुण्यवश प्राप्तधन से यदि महाराज विषय सुख का अनुभव न करें तो कौन कजूस है जो फिर अनुभव करेगा ?

गुणेन्दु—अो क्यो बिना पूछे ही बीच में बोलता है ? धन वैभव से विलास का अनुभव नहीं, किन्तु मानव जन्म लाभ है श्रीमान् का,

दीनानां परिरक्षणं सुकृतिनां सत्कारचर्चादरो
लोकक्षेमकरासु साधनकृते शिक्षाकलासु व्ययः ।
धर्मस्यायतने च दाननियमः प्रीत्या प्रजारञ्जनं
कर्मेदं द्रविणेन कीर्तिजनकं सौभाग्यसम्भूतये ॥१७॥

एकः पुरुषः-भो ब्रह्मचारिन् ! यावन्न प्राप्यते तावद्रुचिरं सर्वम्-

लीलाविलासचतुराणि मनोहराणि
चेतोऽतिकर्षणमनोभवमञ्जुलानि ।
पुण्यं विना न भुवि जन्मवतां भवन्ति
मुग्धाङ्गनाविलसितानि तथा धनानि ॥१८॥

दयानन्दः—अलमलं व्यर्थप्रपञ्चेन, अयि राजसेवक ! त्वयापि स्वात्मानुरूपं नृत्यते । (कर्णं प्रति)

महाराज ! राजन्यवंशावतंसेन भवता रासलीलादर्शनमनुभूयत इति हा प्रजानां दुर्भाग्यमेव । महाभाग ! एतया महामोहमलीमसया पापिन्या राजश्रिया परिगृहीताः पदे पदे दुर्विनीतदुर्दान्तचेतसः क्षत्रिया निजकुलकलङ्कमातेनिरे । राजन् ! प्रजापालनमन्तरेण स्वप्नेऽपि कामचाराचरणं निरयाय समस्त भूपतीनाम्, द्राघीयसि राज्यमदपङ्के पतिता अपि स्वात्मानं नोद्धरन्तः स्थेमानमाभजन्ते दुर्यशसः । महाभाग ! क्षत्रियोऽसि ! आलम्बनमसि भारतस्य ।

कर्णसिंहः—हं हो कथङ्कारमुपदेशकष्टं सहते ?

गुणेन्दुः—(स्वगत) आः पाप ! अतिक्रान्ता धर्ममर्यादा ?

दीनों को परिरक्षण सुकृतियों को अर्चना मानना,
लोकक्षेम विधायिनी वरकला धारायिता मुख्यय।
धर्म स्थापन मे सदा धनगति प्रेम्णा प्रजारजना,
द्रव्याधीन यशस्कर यही सौभाग्य सम्वर्धना ॥१७॥

एक व्यक्ति—हाँ, हाँ, ब्रह्मचारिन् ! जब तक नही मिलता तभी तक सुन्दर है यह सब !

लीला विलास चतुरान्तर शोभना ये,
चित्तातिकर्षण मनोभव मंजुला ये,
पालने पुण्य बिन मानव विश्व में ये।
मुग्धांगना विलसन द्रविणादि सौख्य ॥१८॥

दयानन्द—बन्द करो ये व्यर्थ की बातें ! ओ राजसेवक ! तू भी अपने आत्मा के अनुसार नाच रहा है ! (कर्णसिंह से) महाराज, क्षत्रिय वंशालकार आप जो रासलीला देख रहे हैं, यह आपकी प्रजा का दुर्भाग्य ही है ! महानुभाव ! इस महा मोहमलिन पापिनी राजलक्ष्मी से जकड़े हुए दुर्विनीत दुर्दान्त चेता राजन्य गण निजकुलको ही कलंकित करते रहे ! नरपते ! प्रजापालन के अतिरिक्त स्वप्न में भी कामाचाराचरण, क्षत्रियों के नरक के लिये ही होता है। दीर्घतम कर्दम में निमग्न ये क्षत्रिय निज उद्धार तो नही कर पाते, किन्तु अपयश के भागी बन जाते हैं ! महाभाग ! क्षत्रिय हो, प्रजा रक्षक हो, भारत के महान् आलम्बन हो !

कर्णसिंह—अरे रे ! क्यों व्यर्थ में उपदेश का कष्ट उठा रहे हो !

गुणेन्दु—(स्वगत) हाय रे पाप ! मर्यादा का अतिक्रमण हो गया है यह तो !

कर्णसिंहः--श्रूयताम् । अत्र वैष्णवमतखण्डनं न भवता कर्तव्यम्. अथवा सर्वस्यैव सनातनधर्मस्य ।

दयानंदः—राजन् ! ननु वैष्णवोऽसि ?

कर्णसिंहः—अथ किम ? न पश्यसि मदीयभाले श्रियम् ?

दयानन्दः—(स्वगतं) आ. कर्णराज ! दयानन्दो न परिभूयते भवादृशा पामरवञ्चकेन । (प्रकाशं) ननु राजन् ! कस्माद् गृहीता वैष्णवमतस्य दीक्षा ? अथवा किमर्थं धारयसि श्रियं भाले ?

कर्णसिंहः—श्रीमद्रङ्गाचार्यस्य शिष्योऽस्मि ।

गुणेन्दुः—(जनान्तिकं) ननु अनङ्गाचार्यस्येति वक्तव्यम् ।

कर्णसिंहः—एपा वैष्णवमतस्य परमपूज्या श्रीः, य एनां न धारयति स चण्डाल एव ।

दयानन्दः—(विहस्य) एवम् ? ननु भवतां पिता अपि वैष्णवमतानुचरः किमासीत् ?

कर्णसिंहः—नहि नहि ।

दयानन्दः-तदा स एव चाण्डालतनयः ।

कर्णसिंहः—(सक्रोधं) आः मुण्डितमुण्ड, पाखण्डखण्ड ! किमुच्यते, एप दर्शयामि; अयं न भवसि । (इति करवालेन हन्तुमुद्यते । दयानन्दस्तत् खण्डयति)

दयानन्दः-आः क्षत्रियाधम ? पापापसद ! कुलकन्टक ! दयानन्दं हन्तुमीहसे ?

अनेन क्रूरपापेन वंशविप्लवकारिणा ।
पराभूतेन भीतेन लज्जते जननीत्वया ॥१६॥

कर्णसिंह–सुन लो, कान खोलकर ! यहाँ रहकर आप वैष्णव मत का खन्डन न करें; हां हां समस्त सनातन धर्म का खन्डन न करे ।

दयानन्द—राजन् ! क्या वैष्णव है आप ?

कर्णसिंह—और नही तो क्या ? देखते नही हो मेरे मस्तक पर श्री चिन्ह ?

दयानन्द—(स्वगत) ओ कर्णसिंह ! तुम जैसे पतित जनो से दयानन्द धोखा नही खा सकता ! (प्रकाश मे) हाँ राजन् ! आपने वैष्णव मत की दीक्षा किससे ली है ? और यह लक्ष्मी का प्रतीक मस्तक पर क्यो धारण करते हैं ?

कर्णसिंह-मैं श्रीमद् रगाचार्य जी का शिष्य हू ।

गुणन्दु—(लोगो से) नही, नही, अनगाचार्य ऐसा कहना चाहिये ।

कर्णसिंह – यह वैष्णव मत की परमपूज्य 'श्री' है, जो इसे धारण नही करता, वह चान्डाल ही है ।

दयानन्द –(मुस्कुराते हुए) ऐसा है ? क्या आपके पिताजी भी वैष्णव मतानुयायी थे ?

कर्णसिंह—नही नही ।

दयानन्द—तो वे भी चान्डाल और आप भी चान्डाल पुत्र हैं !!

कर्णसिंह—(क्रोध से) ओ घोटमघोट पाखन्ड़ी साधू ! यह क्या बकता है ? देख, मैं मजा चखाता हूं, तुझे अब झझट नही रहेगा [तलवार से मारने के लिये वार करता है] दयानन्द तलवार को दो टूक कर देता है ।

दयानन्द—ओ क्षत्रियाधम ! नीच ! कुलकलक ! दयानन्द को मारना चाहता है ।

ऐसे ही क्रूर पापो से, वश विप्लवी कर्म से
हारे ड़रे हुए तुझसे माता है लज्जिता तव ।।१९।।

दुर्मदान्ध ! विषयलंपट !

ये धर्मागमरक्षणाय बलिनः शत्रुव्रजेरुत्कटः
सास्थिस्नानमुंप्लुत विदधिरे संग्रामसीमाङ्गणम् ।
सोऽयं प्रौढिमुपागतः कृतवलादक्षुण्णधर्मद्रुम-
श्छेत्ता तस्य पर कथ स्वजननीभाराय भूतो भवान् ॥२०॥

(कर्णसिंहः सलज्ज तिष्ठति)

रे रे दुष्ट, लपाक ! किं निर्वीर्यं निःसत्त्व भारतम् ?
नाद्यापि निद्योतेत किं स्फूर्जित धर्मस्य ?

चार्वाकभीषणसमीरणचालितस्य
दग्धस्य बौद्धजटिलोद्धृतपावकेन ।
आतस्थुपश्च दृढवेदसुरद्रुमस्य
किं वा करिष्यति भवान् ननु कीटकल्प. ॥२१॥

एकः पुरुषः—ननु रे सन्यासिन् ! किं गर्वायसे ! ननु निषेधयति महाराजो न कर्तव्य खन्डनम् ।

दयानन्दः—अरे रे जननीगर्भभारभूत, भारतकलङ्क ! शृणु,

अाः केनोद्धतमत्तहस्तिकरिपोः स्फूर्जत्सटामोटिता
क्षिप्तः केन करः स्फुरच्छिखिमहज्वालाललन्मण्डले ।
अन्योन्यप्रतिघातसंकटनटच्चलच्छैस्फुटत्कर्पर
व्यासेद्धुं ननु कस्य शक्तिरभवत्सवर्तझञ्झानिलम ॥२२॥

गच्छ गच्छ गृह, राजन् ! कदध्वानमाश्रितोऽसि न कर-वालकरालधारया भीतो दयानन्दः कदापि सत्य त्यक्ष्यति ! अथवा—

अद्याद्य कृन्ततु शिर. करवालधारा
मार्तण्डमण्डलमिद किरतु स्फुलिङ्गान् ।
किन्तु ब्रवीमि, मम सत्यमिय प्रतिज्ञा
नाहं कदापि विरमामि पवित्रधर्मात् ॥२३॥

जो धर्मश्रुति शास्त्र रक्षण रतारि नाश लम्पादरी;
दाता अस्थिपंजर के रणधारामें प्राप्त सन्मानिना,
वो ही आज अजमुपापरत है धर्मद्रुमाक्रन्तक
माता यौवन नाशकाधमतिमान् पापार्थ दत्तार्थवान् ॥२०॥

(कर्णसिंह लजाता है)

अरे दुष्ट लम्पट ! क्या भारत शौर्य शून्य हो गया है ? क्या आज भी धर्म को बिजली नही चमकती ?

चार्वाक भीषण समीरणने कंपाया,
बौद्धादि नास्तिक मतानलने जलाया,
तो भी प्रशस्ततम वेदसुरद्रुमास्था,
को क्या कभी कीट समान मिटा सकोगे !

एकपुरुष :–अरे साधु बाबा ! क्यो गर्व कर रहा है, महाराज ना कर रहे है तो खण्डन क्यो करता है ?

दयानन्द:–हाँ हाँ रे, माता कोख के भारभूत ! राष्ट्रकलक ! सुन–

ऐसा कौन जो हस्तिरिपुको भी थाम ले केशसे,
के कें हाथ अमीत चण्ड अनल ज्वालौघ में क्षत्रप,
अन्योन्यप्रति घात कष्ट जनक प्रख्यात वीरेशको,
यो ही रोक सके न शक्ति नर मे सर्वत्र क्रोध से ॥२२॥

जाओ जाओ राजन् अपने घर, कुपथ मे चले गये हो, करवाल की करालधारा दयानन्द को भयभीत कर, सत्य नही छुडवा सकती ! अथवा—

दे काट आज शिर को करवाल धारा;
हो खण्ड-खण्ड रविमण्डल अग्नियोला,
मैं बोलता हू दृढसत्य यही प्रतिज्ञा,
वेदोक्त धर्म अभियानबना रहू मैं ॥२३॥

यदि नाम सत्यं मन्यसे वैष्णवमत तदा समाहूय रङ्गाचार्य निश्चयं करोतु भवान् ।

कर्णसिह—आः कस्त्व तेन समं शास्त्रार्थं विधातुं क्षमः? (किङ्कर) ननु भोः आगच्छन्तु सर्वे । पश्चात्प्रचण्ड दण्ड दास्यामः ।

(इति निष्क्रान्ताः)

गुणेंदुः-भगवन् ! नराधमेन महदकार्यमनुष्ठितम् ।

सभाजनाः-फलमस्यानुभूतम् । सत्यस्य जयः सर्वदैव ।

गुणेंदुः—भगवन् ! मन्ये किश्चदवश्य अनार्यसदृक्ष करिष्यति नराधमः ।

दयानन्दः—न भेतव्य, न भेतव्यम् । गोप्तरि सकलनायक परमात्मनि किमस्ति सामर्थ्यं कीटस्य तस्य ? भवतु, समासीदति सध्यावसरः । विसृज्यतां सभाजनः श्रौतविधये ।

गुणेंदुः—एव यथादिशति भगवान् । [सूर्यं दृष्ट्वा)

ध्वस निरीक्ष्य कुटिलक्षितिपेरजस्त्र
धमस्य सत्रमुदयेन च भारतस्य ।
आरक्तमण्डल उदस्तमहाः सलज्जं
अस्त प्रयाति भगवान्किमु वासरेशः ।२४।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रवेशश्चतुर्थः

(स्थान काशी, श्रीस्वामी दयानन्दः, गुणेन्दुश्च)

दयानन्दः-प्रियवन्धो, गुणेन्दो ! निरीक्षस्व पुनः पुनः काशिकाया महिमानम् ।

आदर्शः श्रुतिगौरवस्य, सदनं धर्मक्रियायाः परं
सेतुः शास्त्रमहोदधेरघमलध्वसाय दिव्याम्बुवः ।

यदि आपको वैष्णवमत पर विश्वास है तो रंगाचार्य को बुलाकर निश्चय करा ले मेरे सामने !

कर्णसिंह :-अरे, कौन है तू उनके साथ शास्त्रार्थ करने वाला ? चलो सब यहाँ से, बाद में भयंकर दंड देंगे ।

(सब चले जाते है)

गुणेन्दु :-भगवन् ! नराधम ने बड़ा नीच कर्म किया,

सभाजन :-इसका फल भी तो चख लिया है, सत्य की जीत होती है सदा ।

गुणेन्दु :-महाराज ! यह नरराक्षस, अवश्य ही कुछ बुरा करेगा !

दयानन्द :-मत डरो, मत डरो, परमरक्षक प्रभु के रहते इस बेचारे की शक्ति ही क्या है ?

अच्छा, संध्याकाल आ रहा है, सभा समाप्त करो, वैदिक विधि सम्पादन के लिये ।

गुणेन्दु :—जो महाराज की आज्ञा (सूर्य को देखकर)

विध्वस देख कुटिल क्षिति पालकों से,
धर्मादि का सतत, उन्नति देश की ये,
संरक्त मन्डल दिनेश्वर लज्जितोसा,
अस्ताचलाभिमुख क्यों अब जा रहा है ? ॥२४॥

(सब चले जाते हैं)

चतुर्थ प्रवेश

[स्थान : वाराणसी; स्वामी दयानन्द एवं गुणेन्दु]

दयानन्द :-प्रिय बन्धो ! गुणेन्दो ! बार-बार काशीपुरी का माहात्य, देखो । देखो-

'आदर्श प्रबलार्प गौरवमयी, धर्मक्रिया सुस्थली,
शास्त्राम्बोधिका सुसेतु, अघ के ज्वालार्थं दिव्याम्बुद,

मूलं निश्चलमार्यजीवनतरोरुच्छ्वास आसंसृतेः
सेयं विश्वजनीनशर्मसरणिः मुक्तिप्रिया काशिका ॥२५॥
अत्रैव वैदिकधर्मस्य निदानम् । अत्रैव वेदविरुद्धं बौद्धमत मार्तण्ड इव संतमसं श्रीशङ्करः खण्डयाञ्चकार । अस्मादेव स्थानात्परेऽपि धर्माः प्रादुर्बभूवुः । सर्वथा नमो विद्याजनन्यै भारतसौभाग्यतिलकायमानायै काशिकायै !

गुणेन्दुः–(स्वगतं) अहो सौजन्यं कर्मयोगिनो महात्मनः (प्रकाशं) भगवन् । अत्र सांप्रतं किं विधेयम् ?

दयानन्दः–स एव वेदसिंहनादः । गुणेन्दो ! महान्प्रकंपः खलु काशीस्थैः पण्डितप्रकाण्डैः सह शास्त्रार्थचर्चायाम् ननु भवता वाराणसी पर्यटता कीदृशं कौतुकं वीक्षितम् ? अपिनाम समपद्यत सगमः केनापि धीमता ?

गुणेन्दुः–महाराज ! मया यद् दृष्टं तथैव तत्तिष्ठतु ।

दयानन्दः–किञ्चिदाश्चर्यं विद्यते ?

गुणेन्दुः–भगवन् ! दूरतः पर्वता रम्या, इति सत्यमनुभूतं मया ।

दयानन्दः–[विहस्य] तथापि शृणोमि ।

गुणेन्दुः—गतोऽहं सर्वत्र भ्रमणाय, तत्र—

केचिद्दम्भवराः प्रतारणपरा वैतण्डिका याचका
धूर्ताः श्राद्धभुजश्च मांसरुचयः शैलालिनः कायिका
आघूना अलसा विलासनिरता दृष्टा मया सर्वतो
द्वित्राः सन्ति मनस्विनः श्रुतिशिखाकर्णावतंसाः परम् ॥२६॥

दयानन्दः–[सहर्षं] महाभाग ! तैरेव भूपिता काशिका ।

अस्त गते श्रुतिसनातनधर्मभानौ
स्वार्थाम्बुदेन विहिते स्मृतिशीतरश्मौ ।
आस्कन्दितेऽन्धतमसा जगतीतलेऽस्मिन्
द्वित्राः स्फुरन्ति ननु दिग्भ्रमसाधुनानाः ॥२७॥

है मूलाश्रय आर्यधर्म तरु की उच्छ्वास संस्कार की,
है ये विश्व जनीन पुन्य पथिका वाराणसी मोक्षदा ।।२५।।

यही पर वैदिक धर्म का निदान है, यही पर बौद्ध जैन मतान्धकार को मार्तंन्ड बनकर आदि शंकराचार्य महाराज ने खन्ड खन्ड किया था, इसी स्थान से अन्य धर्मोका प्रादुर्भाव हुआ, विद्या प्रसविनी भारत सौभाग्य वर्धिनी पुन्यनगरी काशी पुरी को हमारा नमन हो ।

गर्णेन्दु :-(स्वगत) अहो इस कर्मयोगी महात्मा की कितनी सज्जनता है ?

(प्रकाश में) भगवन्, अब क्या करना होगा ?

दयानन्द :-वही वैदिक सिंहनाद । गुणेन्दु ! काशी के प्रकान्ड पन्डितों के साथ शास्त्रार्थ करना बडा गौरवशाली है । तुमने वाराणसी भ्रमण में क्या क्या कौतुक देखें ? क्या किसी बुद्धिमान के दर्शन भी हुए ?

गुणेन्दु :-भगवन् पर्वत दूर से सुन्दर लगते हैं इस उक्ति का यथार्थ अनुभव पा लिया मैंने ।

दयानन्द :-(हंसते हुए) तो भी सुनूं तो सही !

गुणेन्दु :--मैं सर्वत्र भ्रमण के लिये ही गया हूं और सवत्र—
कोई दम्भ भर प्रतारणपटु प्रागल्भ्य है भिक्षुक
धूर्त श्राद्ध रताशनगत, प्रज्ञाविहीन कृत,
मास सुरादि सेवन, आलस्यशीलाखिल,
तो भी द्वित्रमनस्वि पादरज से पुन्यस्थली काशिका ।२६।

दयानन्द:-(सहर्ष) महाशय । इन्हीं से काशी शोभायमान है
अस्तंगत श्रुतिसनातन धर्मभानु,
स्वार्थ, मबुदीय ढकना स्मृति चन्द्रमा प,
गाढान्धकार भव में अति विस्तराये,
दो तीन ही पथ दिखा भ्रमनाश कारी ।।२७।।

गुणेन्दुः—भगवन् !

किं श्रावयामि कौतुकम् ?

घण्टानिनादेन समाकुलेऽस्मिन्
गृहे गृहे भूतपतेर्निवासः ।
तटे तटे किं च घटात् पटानां
रटन्ति भेद प्रतिघट्ट भट्टाः ।।२८।।

तथा च—

न श्रूयते वेदविवेकशैली
दुस्तर्कपङ्के सकला निलीनाः ।
आवासर हा कुविचारदोषै-
रध्यासते पण्डितमण्डलीशाः ।।२९।।

दयानन्दः–साधारणमिदं कर्म तेषां घटपटविघटनम् ।

गुणेन्दुः–केचिद्व्याकरणावधानविधुराः शब्दार्थचिन्ताकुला
मीमांसारटवश्च नैकमतयः क्लिष्टाः परे तार्किकाः ।
केचिन्मन्त्रविवादिनः सुकृतिनः केचित्प्रबन्धामृतै-
रेव वेदविवेचना चतुरिमा संन्यासमालिङ्गति ।।३०।।

दयानन्दः–(विहस्य) ननु तवापि सुप्रसन्ना निरीक्षणवैदग्धी ।

गुणन्दुः—स्वामिन् ! अत्र काशिकायामवश्यकर्तव्यस्य शास्त्रार्थस्य रहस्य मया न सम्यग्विदितम् ।

दयानन्दः–एवं, शृणु—इदमेव विजयस्थानं धर्मस्य । अत्र निर्णीतस्य धर्मस्य पन्थानमनुयान्ति सर्वेऽपि भारतीयाः । ततः काशिनिवासिभिः पण्डितप्रकाण्डैः पूर्वं विधेयः श्रुतिधर्मसिद्धान्तः । शृणु गुणेन्दो ! रहस्यम् । एतेषां ब्राह्मणानामेव हस्तेषु भारतोदयसूत्रस्य निक्षेपः । कुलक्रमः खलु धर्मकर्मोद्धाराय ब्राह्मणानाम् ।

गुणेन्दुः–(स्वगतं) कथं कुलक्रमः, न गुणकर्मणी ?

गुणेंदु :—भगवन् ! क्या मैं कौतुक सुना दूँ ?
घन्टानिनाद मुखरीकृत आलयो मे,
है विश्वनाथ हर का सब ओर वास,
भागीरथी तट गतामल छात्र नित्यम्
अत्यन्त लीन मन हो रटते घटत्वम् ॥२८॥

और—

आती कर्णपथ मे श्रुतिसत्यशली
दुस्तर्क कदम निमग्न समस्त वेदी,
रात्रिदिवा अहह भ्रष्ट विचारदोषो
ये शोभते है कविराज यहाँ वहाँ पे ॥२९॥

दयानन्द–यहा घटत्व पटत्वादि कर्म तो साधारण है इनके लिये !

गुणेंदु—कोई व्याकरणावधान पटु, जो शब्दार्थ चिन्ताकुल,
मोमासा निपुणार्थ वादरत तो कोई वडे तार्किक,
कोई मंत्र विवादधी सुकृतवान्, कोई प्रबन्धामृती,
ऐसे वेदविवचको के गणका चातुर्य सन्यास मे ॥३०॥

दयानन्द–(मुस्कुराकर) तुम तो निरीक्षण मे बडे निपुण निकले।

गुणेंदु—स्वामीजी ! काशी शास्त्रार्थ की आवश्यकता मेरी समझ मे तो नही आयी कि इसमे क्या रहस्य है ?

दयानन्दः—अच्छा, तो सुन लो, काशीपुरी ही विजयस्थली है धर्म की, सभी भारतीय यहाँ निर्णीत धर्म को मानते हैं। अत: काशी निवासी प्रकान्ड पन्डितो से वेदोक्त धर्म का निणय कराना है। गुणेन्दो ! और सुनो रहस्य-इन्ही ब्राह्मणो के हाथो मे भारतोदय सूत्र का आधार है, धर्मकर्मोद्धार के लिये कुलक्रम तो ब्राह्मणो का है ही।

गुणेन्दु—(स्वगत मे) कुलक्रम क्यो, गुणकर्म नही ?

दयानन्द :—यदि खल्वेते पक्षपात विहाय गुणकर्मानुरागिणः श्रुतिसिद्धान्त प्रकाशनाय जागरिताः स्युः, तदा पुनर्जन्म कर्तुं प्रभविष्यन्ति भारतस्य।

गुणेन्दु :—(स्वगतं) हन्त निरस्ता शङ्का। (प्रकाश) भगवन्। सत्य समस्त, किन्तु साम्प्रतमनधिकारिशासकशासनात्-

शिक्षा नष्टा जना भ्रष्टाः सर्वा. शिल्पकलागताः।
परचक्रपीडितानां श्री ह्री धी कीर्तयो गताः ॥३१॥

दयानन्द :–सम्यक् पश्यसि बन्धो ! एतत्सर्वं हृदये निधाय प्रवृत्तिर्मे स्वातन्त्र्यमूलम्। ऐक्य पूर्व धर्माविरोधेन स्थापनीयम् ततः परं सव श्रुतिसिद्धान्तत. सहोदरा इव श्रेयसे कल्पिष्यन्ते। मूल धर्मः परमाभ्युदयस्य।

गुणेन्दु :–न मदीया मतिः स्फुरति भवदीयतेजसि।

दयानन्द ·–(अश्रुत्वेव) आगामिनि वासरे वेदविजयस्य सूत्र स्थापनीयम्। (सध्यान) ओ३म्, मङ्गलं विधास्यति विश्वनाथः।

गुणेन्दु :–(स्वगतं] अहो परमोत्कर्षः स्वामिनः।
प्रभो ! सत्यबन्धो ! देहि पवित्र प्रकाशम्।

दयानन्द :–आगच्छतु नित्यनियमाय।

[इति निष्क्रान्तौ।]

पञ्चम दृश्यम्

[स्थान दशाश्वमेधघट्टः। आनन्द-गौराङ्गौ पुरवासिनश्च प्रविशन्ति]

दयानन्द—और यदि ये ब्राह्मण पक्षपात छोड़कर गुणकर्मानुसार वैदिक सिद्धान्त प्रकाशन के लिए कटीबद्ध हो जाव, जागृत बन जावें तो निःसदेह भारत का पुनजन्म हो जाये।

गुणेदु—(स्वागत) ओहो! शंका समाधान हो गया (प्रकाश मे) महाराज, आपका कथन अक्षरशः सत्य है किन्तु सामयिक अनधिकारी शासन होने से।

शिक्षा नष्ट, जनभ्रष्ट, सारी शिल्पकला गयी,
पराधीन मनुष्यो की थी ही घी कीर्तियां मिटी ॥३१॥

दयानन्द-ठीक देख रहे हो भाई, यह सब देखकर ही तो मेरे हृदय मे स्वतत्रता की भावना उठी है; धर्मगत एकता सर्व प्रथम स्थापित होनी चाहिये, बाद मे तो सभी जन वैदिक सिद्धान्तो से सहमत होकर सहोदरो के से परस्पर वर्तेंगे कल्याण के लिये। धर्म ही तो परमाभ्युदय का आधार है।

गुणेदु –मुझे कुछ नही सूझता आपके विचारो के सामने।

दयानन्द—(अनसुना करके) आगामी दिनो मे वैदिक विजय सूत्र की स्थापना करनी होगी। (सोचकर) ओ३म् भगवान् विश्वनाथ कल्याण करेंगे।

गुणेदु—(स्वगत) स्वामीजी तो अत्यन्त पहुचे हुए हैं। प्रभो! सत्यबन्धो! पुनीत ज्योति प्रदान करो।

दयानन्द—चलो नैत्यिक कार्य करने चले।

(दोनो चले जाते हैं)

पचम दृश्य

[स्थान दशाश्वमेघघाट, समय सायकाल, आनन्द, गौराग और नगर निवासियो का आगमन]

गौराङ्ग :-हन्त भोः समाकुलं शिवनगरं धर्मवादेन । अहो आश्चर्यमाश्चर्यम् ! तस्य महात्मनः श्रुत्वा शास्त्रार्थचर्चा प्रतिगृहं, प्रतिहट्टं, प्रतिदेवकुलं प्रतिघट्टं च सर्वत्र पल्लवितं धर्मचर्चया । जाने किञ्चिन्नूतनं तत्त्वमुपदेक्ष्यति महात्मा अथवा नवीना भारतस्येतिहासपृष्ठे सौभाग्य-प्रतिष्ठा स्थास्यति । गतोऽहं गतदिने तस्य श्रोतुं शास्त्रार्थचर्चामहो-पाण्डित्यम् । अहो ! विवेचनवैदग्धी, अपूर्व इव दृश्यते असाधारणस्तस्य महात्मनो वैदिकधर्म पक्षपातः । सौजन्यसरलं पश्यतस्तस्य वदनं वापि विलक्षणा श्रद्धा जायते जनस्य । किं वा कथमेतन्न भविष्यति—

पावनं सृष्टसल्लोकं साधीयो विश्वशङ्करम् ।
धर्मकर्मोदयस्येदमुत्तमं ज्योतिरुद्गतम् ॥ १२ ॥

आनन्द :-कथं गौराङ्ग ! किमत्र चिन्तयसि ?

गौराङ्ग :-किं चिन्तनं शास्त्रार्थं कोलाहलमन्तरेण ?

आनन्द :-बन्धो ! किं दृष्टं गतवासरे तत्र ?

गौराङ्ग -अहो किं श्रावयामि ? महान्प्रकर्षस्तस्य । एकतः सर्वा वाराणसी-पण्डितमण्डली, अन्यत्र एकाकी सन्यासी महात्मा दयानन्दः । आश्चर्यमाश्चर्यं । नेपथ्ये—

भो भोः अन्तेवासिनः । सनद्धा भवन्तु । अद्य तेन सन्यासिना धर्मध्वंसकेन सम व्याकरणशास्त्रे भविष्यति सवादः ।

आनन्द :-[श्रुत्वा] अये किमिदं, कश्चिद्विद्वान् शास्त्राय मतवाम इव लक्ष्यते ।

गौरांग अरे ओ यह ! शिवनगरी तो धर्मवाद से गूँज उठी है। बड़ा आश्चर्य है। उस महात्मा के शास्त्रार्थ की चर्चा, घर-घर में गली बाजारों मे, मन्दिर-मन्दिर मे, घाट-घाट पर हो रही है। पल्लवित धर्म चर्चा के कारण लगता है कुछ नवीन तत्व को उपदेश देगा यह महात्मा अथवा भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर नवीन प्रतिष्ठा स्थापित करेगा। गत दिवस ही तो मैं इस महात्मा की शास्त्रार्थ चर्चा को सुनने गया था। ओ हो कितना पाण्डित्य है ! विवेचन का वैदग्ध्य क्या कमाल का है ! उस महात्मा का वेदों के प्रति असाधारण प्रेम है। यह पक्षपात तो अभूत पूर्व ही है। महात्मा के सौजन्य मण्डित मुख मण्डला को देखकर न जाने श्रद्धा कहाँ से उमड पड़ती है जन-जन के मनों में; क्या ऐसा तो नही हो जायेगा—

ज्योति उदित हो गयी नवली, धर्मकर्म उदयन उत्तम
पावनतम उत्पन्न जगत यह विश्व-शंकरी साधनतमा ।।३२।।

आनन्द—क्यो गौराग, क्या सोच रहे हो ?

गौरांग—शास्त्रार्थ कोलाहल के अतिरिक्त क्या सोचना है ?

आनन्द—भैय्या, कल शास्त्रार्थ मे देखा तुमने ?

गौरांग—अरे भई ! क्या सुनाऊँ ? वह बड़ा विद्वान् है महात्मा एक ओर सारी वाराणसी नगरी और दूसरी आर एकाकी साधुबाबा दयानन्द ! आश्चर्य, आश्चर्य,

नेपथ्य मे

अरे विद्यार्थियो ! सज्जित हो जावो, आज उस धर्मध्वज सन्यासी के साथ व्याकरण शास्त्र पर शास्त्रार्थ होगा।

आनन्द—(सुनकर) हैं ? क्या कोई विद्वान इनसे शास्त्रार्थ करने की इच्छा कर रहा है ?

गौराङ्ग -किं न जानासि ? स एव वृद्धः पण्डित स्वरसयोगेन जायते । [आकाशे दृष्ट्वा] भो भोः !

यस्याकर्ण्य घनाघनध्वनिमिव क्ष्वेडाप्रकर्षं गजा-
श्चीत्कुर्वन्ति रणन्ति पर्वतगुहास्त्रुट्यन्ति दिग्भित्तय ।
रे रे वृद्धशृगाल ! साकममुना पञ्चाननेनाधुना
स्पर्धाबन्धमुपेयुपस्तव कथ लज्जापि नो जायते ॥३३॥

कृष्णचन्द्र -[प्रविश्य] भो नरदेव ! कथ सम्भ्रान्त इव दृश्यसे ?

प्रथम —न श्रूयते भवता कोलाहलः ?

द्वितीय —आम श्रूयते किमस्ति तेन ?

कृष्णचन्द्र -भो ! आश्चर्यमाश्चर्यम !

भित्त्वा सतमस प्रकाश्य भुवन छित्त्वा जगन्निद्रितां
भङ्क्त्वाऽस्माकमनोरथ च परमामुन्मुल्य मायाविताम् ।
सप्राप्त रविमेनमाशुसकला बध्नन्तु बध्नन्तु भो-
रित्थ-घूकनिकाय एत्यभिरण तस्यप कोलाहल ॥३४॥

प्रथमः-ननु किं हृदये कृत्वा मन्त्रयसे ? स्फुट प्रतिपादय ।

कृष्णचन्द्रः किं न विदित शास्त्रार्थकुतूहलम् !

प्रथमः—अवगत तत्त्वम् । पण्डिता. शास्त्रार्थं कर्तुं व्रजन्ति ।

कृष्णचन्द्र —अथ किम् ? पर न तेपा विजय. । अहं जगदेव ! पुराणमताय तिलाञ्जलिं दास्यामि ।

द्वितीय.—ननु तस्यैव महात्मन प्रभावेण ।

कुलमणि -(प्रविश्य) आश्चर्यमाश्चर्यम् । (विलोक्य) अहो नटवर । त्वमत्रैव नरयसि ?

गौरांग—तुम्हे नही पता लग रहा है कि यही वृद्ध पण्डित शास्त्रार्थ करने वाला है, पारस्परिक बातचीत से !
(आकाश की ओर देखकर) अरे रे !
'श्यामाम्भोधर गूढशब्द समहीं मत्तेभ राजेश्वर,
आकर्णीकृत तत्क्षण प्रकटिता भीति प्रभिन्नाचल,
ओ रे वृद्धशृगाल ! सम्प्रति सह व्यापारवान् सिंह से,
स्पर्धा मे यदि तू रहा उतर तो लज्जा न आती तुझे ॥३३॥

कृष्णचन्द्र—[प्रविष्ट होकर] अरे नरदेव ! हैरान सा क्यो दीख रहा है ?

प्रथम—नही सुना तुमने हो हल्ला !

द्वितीय—हाँ, सुन तो रहा हू, पर क्या है यह ?

कृष्णचन्द्र—अरे, बडे आश्चर्य की बात है कि—
मिटान्धकार को, प्रकाश लोक को, जगतको नीद से जगा,
हमारी मनःकामना को तोडकर मायाविता का भावमूल से भगा
दिनेश का प्रवेश शीघ्र हो रहा, सभी इसी को
बाँध-बाँधलो अरे ! ॥३४॥
इसी प्रकार आ रहा है युद्ध क्षेत्र मे यूथ का समूह यह
उसी का शब्द है ।

प्रथम—क्यो भई ! मन ही मनमे क्या सोच रहा है? स्पष्ट कहो न ।

कृष्णचद्र—ज्ञात नही है क्या शास्त्रार्थ का तत्व ?

प्रथम—हाँ हाँ जानता हूँ शास्त्राथ का तत्व तो, पण्डित शास्त्रार्थ करेंगे ।

कृष्णचद्र—और क्या, किन्तु पण्डित विजयी नही होगे, जगदेव ! मैं भी पौराणिक मतको छोडने वाला हू ।

द्वितीय—क्या उसी महात्मा के प्रभाव से !

कुलमणि—आश्चर्य आश्चर्य है । (देखकर) अहो नटवर ! तू यही पर नाच रहा है ?

द्वितीयः—कथं संभ्रांतस्त्वम् ?

कुलमणिः-गतोऽहं शास्त्रविवादं श्रोतुम् ।

सर्वे:—(सकौतुकं) किं वृत्तं, किं वृत्तम् ?

कुलमणिः—खण्डितं पाखण्डजालं महर्षिणा । विजिताः सर्वे *शास्त्रविशारदाः पण्डिताः । शृणुत । यदा महात्मनि* दयानन्दे—

> आत्वगिभिश्चिरकालयोगमिलितैर्वेदैश्चतुर्भिः समं
> तस्मिन् हव्यमिव प्रतीपविमतं वादानले जुह्वति ।
> पर्यस्तातितमस्विनी घनघटा स्वच्छं नभोमण्डलं
> विश्वं वृत्तमनन्तमङ्गलगृहं सौभाग्यमुज्जृम्भते ॥३५॥

द्वितीयः—ननु तादृशाः समस्तशास्त्रपाथोनिधिकर्णधारकल्पाः, निःशेषतन्त्रस्वतन्त्रमतयः व्याकरणन्यायसांख्यमीमांसा-वेदान्तादिषड्दर्शनविमर्शनप्रखरपाण्डित्यपूर्णाः, अनेकपरिपन्थिमतमातङ्गमतगण्डखण्डनप्रचण्डप्रवाददण्डाः, उद्दण्डाः पण्डिताः कथमेकेन सन्यासिना दयानन्देन पराजिताः ? आश्चर्यम् !

कुलमणिः—दूरे विजयस्तेषां शृणु—

> उद्यद्भानुमिवाद्य-कौशिकघटाकादम्बिनी मारुतं
> जिष्णुं वैरिचमूमृगेन्द्रतनुजं दन्तावलानां ततिः ।
> भीतेव प्रपलायितव विगतव्यापारभारेव सा
> दृष्ट्वा पण्डितमण्डली यतिवरं दिग्भ्रान्तिमभ्यस्यति ॥३६॥

कृष्णचन्द्रः-ननु एते सर्वे सूरयः किं न जानन्ति धर्मरहस्यम् ?

कुलमणिः—साम्प्रतं शास्त्रार्थेन तदेव विदितम् । मिथ्यात्व-वञ्चिता निखिला निद्रासो व्यामोहयन्ति नानाधर्मवादेन पामरान् ।

द्वितीय–तू कैसे चकित हो गया ?

कुलमणि–मैं शास्त्रार्थ सुनने गया था,

सब–(कुतुहल के साथ) क्या हुआ ? क्या हुआ ? शास्त्रार्थ में ?

कुलमणि—महर्षि ने पाखण्ड का भाण्डा फोड दिया है, सारे शास्त्रार्थ केसरी, महर्षि दयानन्द ने जीत लिये हैं, सुनो,

महात्मा दयानन्द के शास्त्रार्थ विजयी होने पर

वादानल में, जले वाद के हव्य, विपक्षी मत के वाद,
चतुर्वेदविद योगसिद्ध ऋत्विक पुरोहितों के ही साथ
व्याप गयी रजनी निर्मलता मिटा नभस् घनी-घनी
लगता था सम्पूर्ण विश्व मे मगल प्रतिमा बनी-बनी ॥३५॥

द्वितीय—क्यों जी समस्त शास्त्र सागरो के कर्णधार, बडे-बडे विद्वान् अखिल तन्त्र स्वतन्त्र गनिमान, व्याकरण न्याय-सांख्य-मीमांसा-वेदान्तादि दर्शन विमर्शन में प्रखर पाण्डित्य पूर्ण अनेक विपक्षियो रूपी मदमस्त मातगो के गण्डस्थल खण्डन मे प्रचण्ड प्रवाद तर्कशील, उद्दण्ड ये पण्डित कैसे जीत लिये उस एकाकी दण्डी सन्यासी दयानन्द ने ? आश्चर्य है !

कुलमणि - दूर दूर सुन ला उसका विजयघोष—

वह पण्डितमण्डली बडो, लखभागी यतिको दिगन्त मे
जिस भाँति कौशिकावली लख रविको, घनघटा पवन को,
और जयी शत्रु सैन्य, मृगपति सूनू को करिवर समूह को
भयविभीत धावित प्रति धावित त्याग क्रिया व्यापार
भार को ॥३६॥

कृष्णचन्द्र—क्यों ये सब पण्डितवर्य धर्मरहस्य नहीं जानते ?

कुलमणि—इस शास्त्रार्थ से तो यही ज्ञात होता है। समस्त विद्वान् मिथ्यात्व से अवञ्चित होकर सारी मूर्ख जनता को बहकाये हुए हैं।

द्वितीयः—ननु त्वया यथावकाश विहितं महात्मनो दर्शनम् !

प्रथमः—(मध्ये) अयि, वञ्चितोऽसि तस्य विना दर्शनेन ।

मूर्तं धाम वरौजसां त्रिभुवनत्राणावतीर्णं महो
मन्ये मिष्टमभीष्टकल्पलतिकासूतं नवीन फलम् ।
आवासो यशसां, परं श्रुतिमुदामप्यास्पद श्रेयसां
सोऽयं वेदवरेण्यभर्गतरणिः काशीपुरीमागतः ।।३७।।

कृष्णचन्द्रः—अस्तु । किमस्ति तस्य महात्मनो मतं येन निखिला विपरीता भवन्ति ।

कुलमणिः—वेदसंमतं मतं तस्य, वेदविरुद्धं न प्रमाणयति ।

द्वितीयः—वेदानां प्रमाणं सूरयोऽपि प्रमाणयन्ति ।

प्रथमः—नहि, अस्माभिरेकोऽपि कदापि न श्रुतो मन्त्रः । ममायान्ति तेऽस्मद्गृहे स्मार्तकर्माणि कारयितुं तदा पुराणश्लोकप्रलापेन कुर्वन्ति सर्वम् ।

कुलमणिः—एवमेवम् । केऽपि वेदसिद्धान्त न जानन्ति ततस्तस्मिन्विषये किमस्ति वेदे प्रतिमापूजनं इति समुद्घुष्टो वादस्तेन महात्मना ।

प्रथमः—ननु किं तस्य मतस्य याथातथ्यम् ?

आकर्णयन्तु सर्वे—

कुलमणिः—निराकारस्त्रिभुवननायकः सच्चिदानन्दः परमात्मा । वेदाः परमं प्रमाणम् । नास्ति प्रतिमापूजनं वेदसंमतम् । विरुद्धाचारः श्राद्धादिकर्मकलापं, । न केवलं जन्मना वर्णनिर्णयः । गुणकर्मानुरोधिनी वर्णप्रतिष्ठा । न जायते पुरुषाकारः परेशानः । पाखण्डजाल तीर्थस्नानम् भगवत्सेव-

द्वितीय—तुमने ठीक ठीक दर्शन किये उस महात्मा के ?

प्रथम—(मध्य मे) अरे ! तुम उन्हे विना देखे ही रह गये ।

तीनो भवनो के रक्षणहित वो धराधाम अवतीर्ण हुआ
मानो मिष्ट अभीष्ट कल्पतरु लतिका फलनव्यजना,
वो ओजो निधि यश आलय है,—वेदपीठ कल्याण भवन,
काशी आया वेदभक्त अघनाशीकर्ता ध्वान्तनशन ।।३७।।

कृष्णचन्द्र—अच्छा, यह बताओ कि वह महात्मा ऐसी क्या बात कहता है कि सभी विरोधी बन जाते है ?

कुलमणि—वेदानुकूल मत है उसका, वेद विरुद्ध मत का खण्डन करता है ।

द्वितीय—वेदो का प्रमाण तो पडित गण भी मानते हैं ।

प्रथम—नही जी ! हमने तो एक भी वेदमन्त्र नही सुना अभी; हमारे घर मे तो आते ही रहते हैं । स्मृतिकर्म कराने, तब तो केवल पुराणो के ही श्लोक बोल के सारा कर्मकाड करा देते हैं ।

कुलमणि—ऐसा ही है, कोई भी वैदिक सिद्धान्त नही जानता । वेदो मे प्रतिमा पूजन का विधान है ? इस विषय पर उस महात्माने प्रश्न पूछा था ।

प्रथम—अच्छा, यह बताओ कि वास्तविकता क्या है वाद मे ? सुनें सब—

कुलमणि—त्रिलोकीपति भगवान् निराकार है, सच्चिदानन्द है परमात्मा है । वद ही स्वत प्रमाण है, प्रतिमापूजन वेद सम्मत नही है । मृतक श्राद्धादि कर्म अवैदिक है । गुणकर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था है, जन्ममात्र से नहीं, परमेश्वर शरीर धारण नही करता, तीर्थ स्नान पाखण्ड

वर्यंव मुक्तिः। कपोलकल्पित परलोकोपासनम।

अथवा सक्षेपत श्रूयताम्—

नीरूपो भगवांश्वराचरगुरु, स्सृष्टा, प्रमाण श्रुति
जोव: कर्मविशाद्युपति च जनि, श्राद्धादिकाण्डा वृथा।
तीर्थं सच्चरण, स्वकर्मगुणतो वर्णाश्रमाणा मस्थिति,
मोक्षः सत्यगिचारतो भवभृतामेतन्मत वैदिकम् ॥३८॥

कृष्णचन्द्रः—मदीयो गुरुरपि कदाचित्कदाचिदेव प्रनिपादयति। परन्तु स ब्रूते नाधिकारिणमन्तरा घमस्थिति.।

प्रथमः-अयमपि स्वार्थप्राय: प्रलाप:। समीचीना निर्णीता मुनिना धमप्रथा। वेदाचारविरोधेन मूखबहुल जात जगत्।

द्वितीयः-ननु स एव वेदिकधर्मः पुरातनमुनिसमत तदा कथ विलुप्तप्राय: साम्रतम्?

प्रथमः—शृणु रहस्यम्—

चार्वाकेण विभर्त्सित. कलियलाद्बौद्धेन सताडितो
जैनेन प्रतिपादचारमुदयद्रोहेण सत्रासित।
दुर्वारैर्यवनैस्ततः कवलितश्चाग्योम्यमास्कन्दितो
हहो वैदिकधर्म एव विपमां कां कां दशा नागमत् ॥३९॥

कुलमणि:—सत्य पश्यसि। तथापि तस्य सत्यस्य प्रचाराय विपत्परपरा।

प्रथमः—कथम्?

है। भगवान की सेवा से ही मोक्ष होता है। परलोकोपासना कपोल कल्पना है संक्षेप में यों सुन लीजिये—

निराकार है स्थावर जंगम का सृष्टा, चतुर्वेद है परमप्रमाण
जीव कर्मवश जन्मगृहिता, श्राद्धमृतकका व्यर्थतमाम।
सदाचार ही तीर्थस्नानं सहज कर्म गुण वर्ण प्रकार
मुक्ति प्राप्ति हो सद् विचार से वेदोदित सिद्धान्त उदार ॥३८॥

कृष्णचंद्र—हमारे गुरुजी भी कभी कभी ऐसा ही प्रतिपादन करते हैं। किन्तु वे कहते है कि बिना अधिकारी के धर्मस्थिति नही हो सकती।

प्रथम यह भी स्वार्थोन्मुख विचार है। मनु महाराजने धर्म व्यवस्था अति सुन्दर बनायी है। वेदाचार विरोध से ही संसार मूर्खो से भर गया है।

द्वितीय—तो क्या यही है वह वदिक धर्म प्राचीन ऋषि मुनि सम्मत! यह धर्म नष्ट क्यों हो गया अब?

प्रथम—इसका रहस्य सुनो—

किया प्रयास खास चार्वाक ने यही
मिटे जगत से वेदमत विचारणा,
यही किया प्रयत्न बौद्ध जैन ने सदा
मिटे प्रशस्त वेदमत सुधारणा,
यवनों ने असीम त्रास देके इसे
मिटाने का महान् यत्न खूब किया,
हुआ है जीर्णशीर्ण चाहे यह मिटा नहीं
महान् वेद का प्रवाह यान यह मिटा नहीं ॥३९॥

कुलमणि—ठीक कहते हो, तो भी सत्यप्रचार मे विघ्न बाहुल्य हैं।

प्रथम—कैसे?

कुलमणिः—तस्मिन्दिवसे निर्णयादनन्तरं कैश्चित्पामरैस्तस्योपरि लोष्टपाषाणवृष्टिरभिक्लृप्ता ।

सर्वे—धिक् धिक् पापान् ।

दोषेषु प्रथमेऽप्यमानमुदिता मायाप्रबन्धप्रियाः
कार्याकार्यविचारणाविरहिता लुब्धाः शठा दुर्मदाः ।
भ्रामं भ्राममहर्निशं विदधति छिद्राणि शुद्ध जने
मोदन्ते परदुःखतः प्रतिदिन दुष्टग्रहा दुर्जनाः ॥४०॥

(नेपथ्ये घण्टारवो भवति)

द्वितीयः—आगच्छन्तु सव दशनाय । भविष्यति भैरवपूजनम् ।

प्रथमः—[आकाशे] हंहो पूजकाः । श्राम्यन्तु श्राम्यन्तु क्षण भवन्तः ।

हंहो भैरव ! तिष्ठ, तिष्ठ भगवन् ! लास्यं क्षणं श्राम्यतु
हेरम्ब ! प्रतिकर्णतालमुदर चीत्कारशून्य कुरु ।
शंभो ! शङ्कर ! ताण्डवप्रिय ! मनाग्दत्तावधानो भव
श्रूयन्ते चिरमभ्युपेतभुवनोद्धाराः पवित्रा गिरः ॥४१॥

कृष्णचन्द्रः—अहो, ज्ञानबहुल भविष्यति जगत् ।

तत्वं जगत्त्रयहिताय पद गरिम्ण
ऐदयुगीनमुदयाय यशोभगीनम् ।
आकल्पमुल्लिखितकल्पमदोऽन्तरिक्ष
श्रुत्वा स्फुरत्यखिलभारतभाग्यचित्रम् ॥४२॥

कुलमणि—उसी शास्त्रार्थ दिवस की घटना है कि शास्त्रार्थ निर्णय के बाद ही बहुत सारे नीचों ने महात्मा के ऊपर ईंट पत्थरों की वर्षा करदी—

सब—धिक्कार है ऐसे नीचो को !

स्वय दोषसम्राट अन्यो मे वे ढूढते,
हर मान, आल्हाद पावे सदा धूर्तता चूटते,
अकार्यों मे वे कार्यधी लुब्धशठ दुर्मदी
प्रसन्नात्म दुष्टा परो के दुखो से मुदी ।।४०।।

(नेपथ्य मे घण्टा बजता है)

द्वितीय—सब लोग दर्शनो के लिए आजाइये । भैरव का पूजन होगा ।

प्रथम—(आकाश मे) ओ पुजारियो ! आप लोग थोडी देर सुस्ता लो जरा,

आ रही है कर्ण कुहरो मे सुपावन वाणियाँ
'विश्व का उद्धार होगा, गूजती है वाणियाँ
चिरसमय से त्रस्त कुण्ठीत, वेदमत सूरज उगेगा,
भ्रष्ट पाखन्डो मे वेष्टित देश का तामस भगेगा,
लास्य भैरव ! ठहर जाओ ! क्षणिक विश्राम पालो
ओ गणश्वर ! निज उदर से तालमय चीत्कार काढो
त्यागताण्डव शम्भुशकर ! ध्यान देना देव भोले
कौन है कहता सुनाता ! चित्तकर्षक भीतिकाएँ
है भगाता कौन शातिकाओ पुरातन भीतिकाए ।।४१।।

कृष्णचद्र—अहो ! सारा ससार ज्ञानवान् बन जायेगा अब तो ।

तीनो भुवनो का हित हेतु गौरव पद का पोषण हार,
तत्वपूर्ण वह युग उदयन को, कीर्ति देता उपहार,
इन बातो की कान्वकल्पना मूर्तिमत नभ मे साकार,
कण कण मोद भरा सजता है करता भारत का जयकार ।।४२

कुलमणिः-एवं यदि परमात्मा श्रेयो विधास्यति। नेदीयान्सदा भारतविजयावसरः। [सानन्द]

हंहो महर्षि दयानन्द! भारतोद्धारक!
चिरजीव, लभस्व विजय, राष्ट्रयोगिन्!
तारय संसार पारतन्त्र्यसागरात्।

अद्य हि—

चञ्चच्चन्द्रकरन्ति शिष्टपरिषच्चेतश्चमत्केरवे
कल्याणामरवाहिनो रसलसत्स्पन्दन्ति सन्मण्डले।
श्रीमच्चन्दनलेपनन्ति मधुराः श्रीमद्दयानन्द! ते
सर्वाङ्गे कुसुमप्रमोदरसिकाः शुभ्रा यशोराशयः ॥४३॥

द्वितीय—सत्यं सत्यम्। आगच्छन्तु पुनर्यथावसर मध्यन्दिने तत्र दर्शनार्थं गमिष्यामः।

सर्वे—एवम्।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति पाखण्डखण्डनं नाम चतुर्थोऽङ्कः

कुलमणि—ऐसा ही है, तो भगवान की कृपा होगी, तब तो भारत विजय का अवसर सन्निकट ही है। [सानन्द] ओहो दयानन्द महर्षि वर्य ! भारतोद्धारक ! चिरंजीवी हो ! कीर्ति पाओ, विजयी बनो, राष्ट्रयोगेश्वर ! अखिल जगत् को परतन्त्रता सागर से पार कर दो !

अब तो—

चचल चन्द्र किरण बरसी हैं,
शिष्टो की परिषद भारी है,
चित्त चमत्कृत हुए सभी के,
भद्रामृत सरिता न्यारी है,
मोदमधुररसपूर्ण दिशा,
सुवती शोभती अति प्यारी है,
दयानन्द ! हे साधो ! यतिवर !
चन्दन से भी शीतल तेरी है,
कीर्ति कौमुदी धवल पुण्यतम,
भवकी पावन कारिणी,
जय जय हो तेरी देवमहर्षे !
तपोजात कल्याण सारिण ॥४३॥

द्वितीय—सत्य है, सत्य है, तो चले समयसर मध्यान्ह बेला में उस महात्मा के दर्शन कर कृतार्थ होलें।

सभी—अच्छा, अच्छा, चलो चलो।

[सब चले जाते हैं।]

इति पाखन्ड खन्डन नामक चतुर्थ अक समाप्त

★

पञ्चमोऽङ्कः

मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

प्रथमं दृश्यम्

(स्थानम्-उदयपुरस्य विहारारामसंनिवेशः, समयः प्रातः कालः, केचिद्रक्षकाः । पुनः सचिवेन समं महीपालस्य प्रवेशः)

नायक-रक्षकाः ! यूयं यथास्थानमवधानेन भवन्तु सांप्रतमेव महाराजः श्रीएकलिङ्गस्य शंकरस्य दर्शनं कृत्वाऽत्रैवागमिष्यति सह सचिवेन ।

प्रथमः—ननु कथमद्य प्रातरेव महाराजेन स्वीकृतमेतत् ?

नायक-श्रूयते, श्रीदयानन्देन समं धर्मचर्चां विधातुम् ।

द्वितीयः-अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम्, अस्ति तावत् किंवदन्ती तेन महात्मना वाराणसीपण्डितमण्डली तमोघटेव भानुना निर्जिता धर्मध्वनि, अस्ति तत्र संशीतिपात्रं मे मनः ।

नायकः—किं दुष्करं परमात्मशरणस्य सत्याग्रहस्य ?

पंचम अंक

मृत्यु से मुझे अमृत में ले चलो

(प्रथम दृश्य)

स्थान—उदयपुर का विहारोद्यान, समय: प्रात:काल

कुछ रक्षक और मंत्री के साथ महाराणा का प्रवेश)

नायक—अरे रक्षको ! अपने अपने स्थान पर जाकर सावधानी से खड़े हो जाओ ! अभी अभी महाराणा जी भगवान एकलिंग महादेव के दर्शन कर यहीं आ रहे हैं अपने मंत्री के साथ।

एक :—महाराणाजी आज प्रात:काल यहाँ क्यों आ रहा है ?

नायक—सुनते हैं कि श्री दयानन्द के साथ धर्म चर्चा करने के लिए।

द्वितीय—अहो ! बड़ा आश्चर्य है, सुनने मे तो यह भी आया है कि उस महात्मा ने भगवान् सूर्य नारायण के समान ही अंधकार की घनी घटासी काशी की पण्डित मन्डली को छिन्न-भिन्न कर दिया, किन्तु मुझे विश्वास नही आ रहा है।

नायक—अरे ! इसमे संशय की क्या बात है ? परमात्मसहाय को क्या कठिन है संसार मे ?

तृतीय:—अस्ति कश्चिदकब्बरस्य सेनापतिः; यो दक्षिणां दिश गत्वा वाराणसीमजयत् ।

नायक:-धिङ् मूढ ! किं ब्रूपे ? स महात्मा दयानन्दः ।

तृतीय:-पर भोः ! शृणु—

न सेना संग्रामक्रमणचणमाश्वीयमथवा
गजा नो नो यानान्युपरचितदीर्घा न च जटा ।
यथा चाणक्येन प्रसभमपदग्धा द्रुपदजा-
स्तथा, मन्ये तेन द्विजकुलबुधाः सम्प्रति जिता. ॥१॥

प्रथम –[विहस्य] ननु त्वमपि परशुरामस्य शिष्यः । मूखशिरोमणे ! पन्डिताना जये विजयोपकरणस्य सेनागजतुरङ्गमस्य किं प्रयोजनम् ।

तृतीय :—ततः किं वाङ्मात्रेण विजयः ?

नायक :– पाण्डित्येन ।

तृतीय :—हंहो किमेतत्, नूतनं पाण्डित्य शास्त्रम् ?

हलं बलेर्वाऽशनिरुद्धवस्य
भीमस्य वा लाङ्गलपुच्छमेतत् ।
हनूमतश्चक्रमथास्ति किं वा ?
पण्डित्यमायोधनसाधन किम् ॥२॥

नायक :—मूढालङ्कार ! शास्त्रजन्य ज्ञान पाण्डित्यं वदन्ति ।

तृतीय :—एवं तदा शास्त्राणि कस्य कलत्राणि ?

प्रथम :—विन्ध्याचलस्य ! ।

द्वितीय :-[विहस्य] अरे हताश ! अलमलमज्ञातेन, परिच्छेदो हि पाण्डित्य, न जानासि त्व मृत्पिण्डबुद्धिः ?

तृतीय—कोई होगा अकबर का सेनापति, जो दक्षिण दिशा मे आकर काशीपुरी जीत गया।

नायक—धत् मूर्ख ! क्या बकता है ? वह तो महात्मा दयानन्द जीतने वाला !

तृतीय—किन्तु अजी सुनिये तो—

न सेना थी, घोडे रथ गज विमानादि करण,
न साथी था कोई, प्रहरण न थे शस्त्र निचय,
जलाये थे जैसे चणक मुनने द्रौपद तथा,
जलाये या जीते विबुधगण सारे ही उसने ॥१॥

प्रथम—[मुस्कुराकर] अरे ! लगता है तूभी परशुराम का शिष्य है, मूर्खराज ! पण्डितों के जीतने के लिये विजयसाधन सेना हाथी घोड आयुधों की कहाँ आवश्यकता है ?

तृतीय—तो क्या वाणी मात्र से विजय हो जाती ' ?

नायक—पाण्डित्य से !

तृतीय—अरे भई ! यह पाण्डित्य नामका नया अस्त्र है क्या ?

'हल है बलिका, वज्र अस्त्र उद्धवका,
या यह है भीमसेन का, यह लागल पूछ,
हनुमान का चक्र, और यह तो बोलो,
यह पाण्डित्य अस्त्र साधन है किसका ॥२॥

[सब हसने लगते हैं]

नायक—मूढ शिरोमणे ! शास्त्रो से उत्पन्न ज्ञान को पाण्डित्य कहते हैं।

तृतीय—तो ये शास्त्र किसकी पत्नी हैं ?

प्रथम—विन्ध्याचल की !

द्वितीय-ओ बुद्धि के वैरी ! रहने दो जिस शास्त्र ज्ञान-विज्ञान की चर्चा को, तू क्या जाने कि पण्डिताई क्या बला है ?

—नेपथ्ये—

एतः शमरागच्छतु प्रजापालः

नायक :—एष महाराजः सचिवेन सममागतः, गच्छत यूयम्।
[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः प्रजानायकः]

महाराज :-सचिवराज ! अद्य भगवतो भूतनाथस्य दर्शनसुखमनुभूयापि न जाने किमर्थं हृदयमुद्वेगतरलतामाश्रयते ?

सचिव :—शिवतातिः शङ्करानुग्रहात्, महाराज ! सतत वृत्तिरिय, प्रजारक्षणजागरूकस्य वसुधापते ।

एष धर्मः सदा सेव्यः पार्थिवैरुदयार्थिभिः ।
सततं हितकामेन प्रजानां पर्युपासनम् ॥३॥

महाराजः-विधीयते याथाकथाचनतया प्रजापुण्योदयेन अपि,नाम प्रसन्नवृत्तयः सर्वाः प्रकृतयः ?

सचिव :-भानुकुलवल्लभ ! सुकृतसग्रहसमुन्मुखे शासति श्रीमति वसुमतीं को नाम विपल्लवमपि स्पृशेत् ? भारतवर्षेऽपि गगन इव भानुना क्षत्रियकुलगौरवमावहता समुल्लसत्तेजःसहस्रेण श्रीमता विस्तारितमार्यपुरुषानुरूप समस्त यशः, अद्यापि विद्योतते दिव्यता दानवविद्वेषिणी भारतीयानामितिदुर्दान्तकर्मणा समरानुरागधारिभिः श्रीमत्कुलपूर्वजैः शतशः स्वदेशस्य स्वातन्त्र्यानुभावपुरःसरं स्थापितं गौरवम्। अधुनाऽपि सर्वकल्याणानामुपरिस्थितमपि स्वात्मसम्भावनादूरीकृतकदर्यविदेशागम

(नेपथ्य में)

महाराणाजी शनैः शनैः पधारिये,

नायक:– ये महाराणाजी मंत्री के साथ पधार गये है, अच्छा जाओ, तुम सब यहाँ से !

(इतने मे मंत्री के साथ महाराणा प्रवेश करते है)

महाराणा:-मंत्रिवर्य ! भगवान् भूतेश्वर के दर्शन कर लेने पर भी हृदय उद्वेलीत क्यों हो रहा है ?

मंत्री—कल्याण हो भगवान् शंकर के अनुग्रह से। महाराणाजी ! प्रजारक्षण तत्पर भूमिपालों की सदैव ऐसी ही वृत्ति होती है।

यही धर्म सदा श्रेष्ठ, उदयेच्छुक भूप को,
निरंतर प्रजा रक्षा, हितकारी विधान से ॥३॥

महाराणा-हाँ, यथाकथंचित् तो प्रजा के पुण्योदय से भी तो प्रजा प्रसन्न रहा करती है न ?

मंत्री–सूर्यकुल कमल दिवाकर ! सुकृत संचयकारी आपके शासनाधिरूढ रहते हुए कोई भी विपदा कैसे आ सकती है आपकी प्रजा के ऊपर ? समस्त भारतवर्ष मे भी, गगन में दिवाकर के समान, आपके महान् तेज की रश्मियाँ, असीमित प्रकाश पूंजमय क्षत्रिय गौरव को उजागर करती है; आज भी इस धरती का कण कण आपके बलिदानी अग्रसरों के प्रशस्त यवनविरोधी कथाओं से ओत प्रोत भासमान लग रहा है, स्वराष्ट्र की सुरक्षा के नामपर ! आज के युग में धर्मधुरीण भारतीय राष्ट्र के असख्य रक्षक आपके अनवद्य वंश के आदर्श पौरुष की गौरव गाथाएं बड़े श्रद्धाविभोर बनकर श्रवण करते है, एवं विदेशी उच्छृंखल अमानवीय

शासनशृङ्खल त्रैलोक्यमङ्गलप्रदीपं भवन्तं भारतसौभाग्यतिलक कलयन्ति मुक्तातन: ।

महाराज :–तत्रापि शिवङ्करः शङ्कर.। सचिवराज ! सांप्रतं कार्यवशान्न मया सभावित युष्मद्दर्शन तदद्य विद्यते किमपि नूतनकुतूहलम् ?

सचिव :—नास्ति राज्यव्यवहारे पर बहुप्रकृतय प्रजा: प्रतिवासरमनुभवन्ति भव्यताम् । संप्रति कश्चित् समस्त तन्त्र स्वतन्त्र: श्रुतिसिद्धान्तशिरोमणि श्रीदयानन्द: संन्यासी समागतोऽस्मन्नगरे पुराणमतखण्डनेन वैदिकमतस्थापनार्थम् । इति मया नगररक्षकमुखादाकर्णितम् ।

महाराज .—एवम् मयाऽपि श्रुतमस्ति स प्रतिमापूजनमपि तिरस्करोति ।

सचिव :—सत्य महाराजेन विदितम् ।

महाराज :--तत· कथ न विधीयते प्रतिबन्ध : ?

सचिव :–देव ! न राजशासनमर्हति धर्म: ।

महाराज :-किं नास्ति तत्र प्रभुत्व राज्यस्य ?

सचिव·–देव ! न धर्मो राज्यतन्त्र:, किंतु राज्य हि धर्मतन्त्रम् । यथवा प्रतिष्ठितस्य सानुरोधरक्षणमिति प्रस्तुतार्थव्यवस्था स्थेमान जनयति द्वयो: ।

महाराज:—एव ननु पुराणधर्मोऽपि स्थिर एवायम् ?

सचिव:—अत्रैव विचारणीय वच: श्रीदयानन्दस्य । तथा च वाराणसी पण्डिता: पराजितास्तेन !

दुरन्त आक्रमण को जिस पराक्रम से आपके वशजोंने-
पूर्वजों ने निरस्त किया, उसका साक्षी प्रत्येक भारतीय है।

महाराणा—सर्वत्र शिवशकर, शंकर भगवान का ही हाथ है। अभी तो मैं कायवश नहीं जान पाया शुभागमन का कारण, तो क्या नवीन कौतुहल है ?

मत्री—राजकाज मे तो कोई ऐसी बात नही है अन्नदाताजी ! परन्तु विभिन्न स्वभाव शील जनता सर्वदा ही सुख अनुभव करती रहती है, इस समय एक दयानन्द सरस्वति नामक सर्व तत्र स्वतत्र सन्यासी वैदिक सिद्धान्त मूघन्यता संवरण किये अपने नगर मे पधारे हैं, वे पुराणमत विध्वसन मे अग्रणी है, ऐसा मुझे कोतवाल साबके मुखसे सुनने को मिला है।

महाराणा—मैंने भी सुना है कि वे प्रतिमा पूजन का भी विरोध करते है।

मत्री—महाराज ने ठीक सुना है।

महाराणा—तो रुकावट क्यो नही लगायी गयी ?

मंत्री—महाराणाजी ! धर्म पर शासन प्रतिबन्ध नही लगा सकता,

महाराणा—क्या धर्म के ऊपर राज्य का प्रभुत्व नही है ?

मत्री—पूजनीय ! धर्म राज्यतत्र नही है, किन्तु राज्य ही धर्म-तत्र है। अथवा प्रतिष्ठित-प्रचारित धर्म का सानुरोध रक्षण भी, प्रस्तुत अर्थव्यवस्था दोनो को स्थिरता प्रदान करने वाली होती है।

महाराणा—इस प्रकार पुराण धर्म भी स्थिर ही है ?

मंत्री—इस प्रसग पर तो स्वामी दयानन्द की बात विचारणीय है। इसी पर तो वाराणसीके विद्वान् पराजित हुए हैं इनसे।

महाराजः-आश्चर्यम्, भवानत्र किं पश्यति ?

सचिवः—भारतमङ्गलम्। देव! कृतं मया महात्मनस्तस्य दर्शनम्। तथा च निर्णयोऽपि विहितः। प्रजानाथ! स पुनः सत्यधर्मदेशनाभिर्नूतनं जीवलोकं निश्चलां देशगौरवश्रियं च स्थापयिष्यति। अभ्युदयप्रतीसारं देशस्य तस्य मतम्।

महाराजः—तथापि द्विजद्वेषः समस्तं सुकृतं दहति।

सचिवः—देवदेव! नायं विद्वेषः, किंतु, दिङ्मूढस्य पुनरपि भ्रमनिरसनम्।

परिष्कृतात्मद्युतिदीपिनानां
द्विजन्मनां सूत्रितसंस्कृतानाम्।
तिरस्कृतिं हन्त विधाय तेषां
कुतः स्वदेशोदयकल्पनाऽपि ॥४॥

महाराजः—एवम्, तथापि यदि न कलहोन्मेषः स्यात्तथा कर्तव्यम्।

सचिवः—यथा देव आज्ञापयति। महाराज! निवेदयामि ननु?

महाराजः—ननु विश्रब्धं ब्रूहि।

सचिवः-श्रीमदभिस्तस्य महात्मनश्चरणदर्शनं विधेयम्।

महाराजः—(विहस्य) सचिवराज! मम हृदयानुगुणं मन्त्रितम्। अद्यैव मया प्रतिनिरतनाङ्गरक्षकः। समानीय भगवन्तमुद्यानमागमिष्यति।

सचिवः-प्रियं नः प्रियं नः!

महाराणा—आश्चर्य है यह तो ! आप क्या देख रहे हैं ?

मन्त्री—देश का शुभमंगल, महाराज ! देव ! मैं उस महात्मा के शुभ दर्शन कर चुका हूं, और निश्चय भी ले चुका हू. भूपते ! वे महात्मा नये सिरे से सत्यधर्मोपदेशों से ये नूतन जीवलोक एवं निश्चल राष्ट्र गौरव लक्ष्मी की स्थापना करेंगे; इनका भला विचार राष्ट्रीय-अभ्युदयोन्मुखीन है।

महाराणा—तो भी ब्राह्मण विद्वेष तो सम्पूर्ण पुण्यों को जला देता है मन्त्रीजी !

मन्त्री—देवाधिदेव ! यह द्विजद्वेष तो नहीं है, किन्तु दिङ्मूढों को फिर से निर्भ्रान्ति करना है—

विना द्विजों की श्रुतिशील ताके,
परिष्कृतात्मद्युति भावना के,
अशक्य है हन्त ! द्विजोच्चता से,
स्वधर्म देशोन्नति दिव्यदीप ॥४॥

महाराणा—अच्छा, तथापि कलह न हो, ऐसी व्यवस्था कीजिये। कीजिये।

मन्त्री—जो महाराणाजी की आज्ञा, यदि आदेश हो तो कुछ निवेदन करूं ?

महाराणा—निःसंकोच कहिये।

मन्त्री—महाराज श्री ! आपभी करें उनके चरणदर्शन ?

महाराणा—(मुस्कुराकर) मंत्रिराज ! तुमने तो मेरे मन की बात कह दी, मैंने अभी अभी अंगरक्षक भेजा है उस महात्मा के चरणों में ! वह ससम्मान स्वामीजी को उद्यान में ले आयेगा।

मन्त्री—हमारे हितकी बात हो गयी यह।

सेवकः—(प्रविश्य) जयतु जयतु देवः !

सचिवः—किमस्ति कार्यनिवेदनम् ?

सेवक —तत्र भवान् श्रीदयानन्दः समागतः–

सचिवः–किमत्रैव ?

सेवकः–नहि ! अस्यैव विहारोद्यानस्य नेदिष्ठे प्रदेशे धर्म-व्याख्यानं कुर्वन्नास्ते। मया निवेदितः स "स्वयमेव महाराज आगच्छतिरिति" प्रतिपादितवान्। श्रुत्वा देवः प्रमाणम्।

[राजा सचिवस्य मुखं पश्यति]

सचिवः–को दोषः संन्यासिनां दर्शने ? आगच्छतु महाराजः। राजपुरुष ! गच्छाग्रतः।

सेवकः—यथाज्ञापयति। इत इतः शनैः शनैरागच्छतु देवः।

(सर्वे परिक्रामन्ति। पटपरिवर्तनम्।
स्वामी दयानदः कथां कुर्वन्नास्ते प्रजाजनेषु)

गुणेन्दुः–भगवन् ! मन्ये श्रीसज्जनसिंह महराज इत एवा-गमिष्यति।

दयानन्दः—आगच्छतु तरणिकुलशिरोमणिः।

सेवकः–[प्रविश्य] भो भोः ! एष ससचिवो देवः।

[सर्वे उत्तिष्ठन्ति, दयानन्दं विहाय]

सर्वे—जयतु जयतु प्रजापालः।

महाराजः—भगवन् ! यः कोऽपि प्रजापालनकर्मणि नियुक्तः सोऽयं भगवन्त प्रणमति। [इति नमस्कारं करोति]

सेवक—(प्रवेश करके) देव की जय हो !

मंत्री—क्या निवेदन करना है ?

सेवक—पूजनीय स्वामी दयानन्द पधार गये है।

मंत्री—यही पर ?

सेवक—नहीं जी, इसी विहारोद्यान के निकटवर्ती स्थान में वे धर्मोपदेश कर रहे है। मैंने उनसे निवेदन किया तो वे बोले : महाराणाजी स्वयं ही पधारे यहां ! आगे आप जानें।

[राणाजी मंत्री का मुख देखते हैं]

मंत्री—संन्यासियों के दर्शन में कोई दोष नहीं है। पधारिये महाराणा श्री ! सेवक, आगे आगे चलो।

सेवक—जो आपकी आज्ञा ! इधर इधर, कृपया शनैः शनैः पधारिये देव !

मच घूमते है, पट परिवर्तन होता है। स्वामी दयानन्द जनसभा मे प्रवचन कर रहे हैं)

गुणेन्दु—भगवन् ! लगता है महाराणा सज्जनसिंह इधर ही आ रहे हैं।

दयानन्द—पधारिये ! क्षत्रिय आदित्य कुलावतंस !

सेवक—(प्रविष्ट होकर) अरे, अरे ! महाराजाधिराज महाराणाजी अपने मत्री के साथ पधारे हैं।

[सब उठ जाते हैं, दयानन्द को छोड़कर]

सब—जय हो जय हो ! प्रजावत्सल अन्नदाताजी की

महाराणा-भगवन् ! जो कोई भी जनसंरक्षण में नियुक्त है वही आप को सादर प्रणाम कर रहा है। [इस प्रकार हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं]

[सर्वे यथास्थानं तिष्ठन्ति]

दयानन्दः-राजन् ! अजस्रं राज्यभाजनं भूयाः ।

सर्वदा धर्ममर्यादामास्थाय विदुषां प्रजाः ।
सप्तसप्तिसमो राजन् ! पालयन्नेधि नायकः ॥५॥

सचिवः-अनुभूयते भगवदनुग्रहात् ।

दयानन्दः-प्रजावल्लभ ! क्षम्यतां निष्परिग्रहस्य निर्बन्धः ।

महाराजः-अनुगृहीतोऽस्मि दर्शनदानेन ।

सचिवः-किमत्र वक्तव्यं साधूनां ये नियतं पूतात्मानः पदरजोभिः पावयन्ति पृथिवीतलम् ।

महाराजः-भगवन् ! कथं भवन्तं संभावयामि ?

दयानन्दः-वैदिकधर्मपालनेन ।

महाराजः-योगीन्द्रवर्याः ! यथावदस्तु सर्वम्, किंतु प्रतिमा-पूजनखण्डनं मा कुरुध्वम् ।

गुणेन्दुः-[स्वगतम्] यच्चिन्तितं तदेव फलति ।

दयानन्दः-जननाथ ! अहमपि कथं सत्यानुमधानं त्यजामि ?

सचिवः-किमिदं सत्यम् ?

दयानन्दः-पुराणमतनिरासेन श्रुतिसिद्धांताविष्करणं दयानंदस्य सत्यम् ।

महाराजः-भगवन् ! त्यज्यतामयं दुराग्रहः, कलिकालोऽयं भयावहः । सर्वथा मदीयनगरे राज्यसंमानमनुभूय विधेहि यथागतं धर्मम् ।

दयानन्दः-आः किमिदमुच्यते ? श्वःश्रेयसस्य पन्थानं परित्यज्य राजसमानगह्वरे पतामि ! अथवा सत्यधर्मस्यावहेलनां विदधता भवतैव लज्जितव्यम् । अन्ये हि ते पामराः

[सब अपने अपने स्थान पर बठ जाते है]

दयानन्द-राजन् ! अखण्ड शासन करते रहो !

सर्वदा धर्ममर्यादा आर्यत्वशोभिता नृप ।
विद्वज्जन प्रशंसाप्ता, तव शासन मे बढ़े ।।५।।

मन्त्री—प्रभु के अनुग्रह से अनुभव हो रहा है सब सुख ।

दयानन्द-प्रजावल्लभ ! अपरिग्रहो के बन्धन तोड़ दीजिये ।

महाराणा-अनुगृहीत हू आपके दिव्यदर्शनो से यतीश्वर ।

मन्त्री—निज चरणरज से धराके कणकण पवित्र बनाने वाले महात्माओ के विषय मे जो कुछ कहे थोड़ा है ।

महाराणा-भगवन् ! आपकी कौनसी आज्ञा पालूं ?

दयानन्द-वैदिक धर्म स्वीकार कर लें ।

महाराणा-योगेश्वर ! आपका आदेश शिरोधार्य है, किन्तु प्रतिमा पूजन का खण्डन न कीजिये !

गुणेन्दु—(स्वगत) जो सोचा था वही फल रहा है ।

दयानन्द-प्रजापालक ! मैं सत्यानुसंधान कैसे त्याग सकता हू ?

मन्त्री—यह सत्य क्या है ?

दयानन्द-पुराणमत खण्डन से वैदिक सिद्धान्त की स्थापना ही दयानन्द का सत्य है ।

महाराणा-महर्षे ! यह दुराग्रह छोड दीजिये ! यह तो भयकर कलिकाल है, मेरे नगर मे निवासकर राजसम्मान भोगते हुए यथेप्सित धर्म का प्रचार कीजिये !

दयानन्द—राणाजी ! आप यह क्या कह रहे है ? निजकल्याण का मार्ग त्यागकर राज्यसम्मान के गर्त मे गिर जाऊँ ? क्या आपको सत्यवैदिक धर्म की अवहेलना करने मे लज्जा का अनुभव नही हो रहा है ? अन्य अधम संन्यासी कहलाने वाले साधुबाबा भले ही सत्यधर्म

सन्यासिव्यञ्जनाः स्वापतेयाध्येपणया धर्मं नानुरुन्धन्ति ।

सचिव.-तथापि कलिकालोऽयं धर्ममर्मविघातकः प्रतिबध्नाति श्रेयः ।

दयानन्दः-तत्किं वक्तुकामो राजराजः ?

महाराजः-यदि प्रतिमाखण्डन न विधास्यते तर्हि सकला तत एकलिङ्गसंपदमनुभवतु प्रसादपरंपराम् ।

दयानन्दः-हहो ! प्रतापकुलमण्डन ! किमिद कापुरुषप्रायं दयानदस्य सन्निधौ प्रलपसि ?

भूपालभूषण ! जगज्जयराजमान !
व्याटीकमानबहुलोज्वलविक्रमस्य ।
स्वातन्त्र्यचक्रपरिचङ्क्रमणोचितस्य
हहो ! प्रतापकुलजस्य न योग्यमेतत् ॥६॥

अथवा विस्मृतं किं प्रतापस्य वीरव्रतम् ?

अगणितगणरात्रस्फीतसंपत्तिसक्तिं
विहितपरमदेशत्राणमुत्सृज्य राज्यम् ।
अशनिवहनुदस्यन् स्थापयन्तं प्रताप
स्मर विजयगरिम्णामास्पदं श्रीप्रतापम् ॥७॥

महाराजः-योगिवर्य ! सर्वं जानामि, तथाप्येषोऽयं व्यवसायः प्रजाजनोद्वेगकरः ।

दयानन्दः-प्रजा राजानमनुसरति ।

महाराजः-सत्यं, तथापि कुलक्रमागतं न मार्गं त्यजन्ति जनाः । अथवा राजशासन सवस्व प्रतिबध्नाति ।

दयानन्दः-(सरोषम्) भोः, किमिदं शृणोमि ? म्लेच्छराजनीति-

पालनकर पाखण्ड बढ़ावें, किन्तु मैं तो ऐसा नहीं कर सकता राजन् !

मंत्री—ऋषिराज ! यह कलिकाल है, इसमें तो सद्धर्म का विघात होता है और श्रेय तिरस्कृत होता है।

दयानन्द–राजराजेश्वर ! आपके कथन का क्या भाव है ?

महाराणा—यदि मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो समस्त एक लिंग महादेव की सम्पत्ति आपकी है, आप उसका पूर्ण रूप से उपभोग करें।

दयानन्द—अरे हो ! प्रतापकुल कमलकान्त ! का पुरुषो की बातें कैसे कह रहें हैं आप दयानन्द के सामने ?

भूपालभूषण ! यशोनिधि राजमान
उच्चातिउच्च परमोज्वल विक्रमोर्ध्वं
स्वातंत्र्यचक्र परिचंक्रमणोचितोच्च-
राणाप्रताप कुलजात ! न यह प्रशस्तम् ॥६॥

अथवा कहीं आप राणाप्रताप का प्रताप भूल तो नहीं गए ?

अगणित सह पीडा, त्याग सम्पत्ति सारी,
विहित परमसेवा राष्ट्र को नौ उबारी,
अशनिसम विरोधी बाह्यशक्ति प्रचारी,
स्मरण कर जयश्री, आजतो अकबरारि ॥७॥

महाराणा—योगिराज ! मैं सब समझता हूँ, तो भी यह बात जनजनकी उद्वेगकारी हो सकती है।

दयानन्द–जनता राजा का अनुगमन करती है।

महाराणा–सत्य है, तो भी तो लोग कुलपरम्परा नहीं छोड़ते। अथवा राज्यशासन से आप बन्ध जाते है।

दयानन्द—(रोष प्रकट करते हुए) मैं यह क्या सुन रहा हूं ?

जगदंगारकौक्षेयकस्य श्रीप्रतापस्यापि महिमानमतिक्रामकं दुर्वचनम् ? अथवा लोकभीतिस्त्वां धर्मपथाद् भ्रंशयति ?

यः प्रोल्लङ्घयति स्म वारणघटागण्डस्थलीखण्डन
प्रोच्चण्डध्वनिनाऽप्यतुत्थयदहो व्योमाङ्गणं केसरी ।
तस्य क्रोडितविक्रमस्य शिशुः कौसीद्यकालाहतो
जीर्यज्जम्बुकभीषिकाभिरभवन्नश्यत्कुलप्रक्रमः ॥८॥

राजन् ! इवमपि धर्मशासनम्, न त्यक्षति दयानन्दः ।

महाराजः–(सक्रोधं) किमयं सत्यः सर्गः ?

दयानन्दः–ओम्, सत्योऽयं सर्गः ।

महाराजः–(सहर्षम्) धन्योऽसि धर्मोद्धारक ! सचिवराज ! किमिद शृणोमि ?

सचिवः–भारतगौरवं दुंदुभिनादम् ।

महाराजः–भगवन् ! क्षम्यतामस्य निर्बन्धः ।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् (इति पादयोः पतति)

दयानन्दः–विजयीभूयाः सज्जनसिंह !

गुणेन्दुः–(सहर्षं) भो भोः सज्जनाः शृणुध्वम् !

अकाण्डवैतण्डिकतुण्डखण्ड-
प्रचण्डपाण्डित्यगरिष्ठदण्डः ।
श्रीमद्दयानन्दयतीश एषो
धर्मस्वराज्यं वितनोतु भूयः ॥९॥

महाराजः–भगवन् ! किमनेन दासजनेन करणीयम् ?

दयानन्दः–कुलानुकरणम् । धर्मभ्रष्टस्य परस्परविद्वेषदावानलज्वलितस्य गौरवहतस्य पारतन्त्र्यपरीतस्य भारतस्य

विधर्मी म्लेक्षो से संत्रस्त राष्ट्र की रक्षा करने वाले
राणाप्रताप के महान् त्याग बलिदान को भी नीचा
दिखाने वाला है यह दुर्वचन ! या यों कहूं कि जनापवाद
से आप भयभीत हैं और धर्मपथ से भ्रष्ट हो रहे हैं ?

जो उलंघनशक्त था गजघटा गण्डस्थली खण्ड में
प्रोचण्डध्वनि से प्रकम्पित किया व्योमांगन सिंहने,।
ऐसे विक्रमशील के ही सुत ! क्यों सीधकाकातंने
बूढी जम्बुक घुड़कियों से डरके मेरा कुलीययश
राजेन्द्र ! दयानन्द इस धर्मसासन को नही छोड़ सकता।

महाराणा-(सक्रोध) यही है क्या सत्यसर्ग ?

दयानन्द—ओम्, यही है सत्यसर्ग !

महाराणा-(सहर्ष) धन्य है आप धर्मोद्धारक ऋषे ! सचिववर्य
मैं यह क्या सुन रहा हूं ?

मंत्री – भारतीय गौरव का दुन्दुभिनाद !

महाराणा—ऋषिवर्य ! क्षमा कीजिये, राज्य के निर्बंध के लिये
'शिष्य हूं मैं आपका' (यह कहकर चरणों में गिर पड़ते
है)

दयानन्द-महाराणा सज्जनसिंह का विजय हो।

गुणेन्दु—(सहर्ष) सज्जनों, सज्जनो ! सुनिये, सुनिये।

अयुक्त वैताण्डिक तुण्डभेद-
प्रचण्ड पाण्डित्य गृहीत दण्ड,
श्रीमद् दयानन्द ऋषिश पूज्य,
पुन: स्वराज्योन्नति को बढावें ॥६॥

महाराणा-भगवन् ! दास को क्या आज्ञा है ?

दयानन्द-वशानुकरण ! धर्मभ्रष्ट, परस्पर विद्वेष दावानल मे
प्रज्वलित, गौरव नाशक, परतन्त्रता शृंखलाबद्ध भारत

पुनरुद्धारं विधातुं धर्मावष्टंभेन बद्धपरिकरो भूयाः ।
महाराजः–यदादिशति गुरुदेवः । (सचिवम्) अव्याहतप्रचारो भवतु भगवतः सिद्धान्तमार्गः ।
सचिवः—यदादिशति राजराजः ।
महाराजः—अतः परं किमस्ति करणीयम् !
दयानन्दः–अत्रैव धर्मसंमेलनं भूयात् ।
सचिवः—सौभाग्यमस्माकम् ।
महाराजः–भगवन् ! अनुगृहीतोऽस्मि परमेश्वरेण । सर्वथा शिष्योऽस्मि भवताम् ।
दयानन्दः–जीव शरदां शतम् ।

—नेपथ्ये—

यः प्रातस्तिमिरावगुण्ठनपटीमुन्मथ्य पद्मश्रियं
लोकालोकमुरीचकार करुणापूर्णः स तिग्मद्युतिः ।
संप्रत्यम्बरमौलिमण्डनकलां तेजोमहिम्ना वहन्
प्रौढप्रौढरुचिः प्रतापकलितो मध्याह्नमालम्बते ॥१०॥

सचिवः–(श्रुत्वा) राजन् । मध्याह्नसमयः ।
दयानन्द —महाभाग ! साधयतु भवान् सांप्रतम् ।
महाराजः—यथा गुरोः शासनम्

[सर्वे उत्तिष्ठन्ति, निष्क्रामन्ति च]

द्वितीयं दृश्यम्

[स्थानं योधपुरम्, राजभवनम्, प्रातःसमयः, कतिचन पुरुषाः]

कञ्चुकी–आदिष्टोऽस्मि राजकुलेन नन्नीजाननामधेयाया वाराङ्गनाया नृत्यमहोत्सवार्थं गत्वा सुसंविधां विधेहि प्रासादमण्डप इति । तद् भो भो राजपुरुषाः—

नीरन्ध्रद्युतिदिग्धपीतसरसस्पर्धानुबन्धोद्धते-
र्मालाभिः कुसुमैः कृताभिरुदयच्छृङ्गारसभङ्गिभिः ।
द्वारे तोरणसत्क्रियां परिचरः कुर्वन्तु लीलोज्वलां
सिक्ते चन्दनवारिणा च परितः प्रासादमुल्लासिते ॥११॥

का पुनरुद्धार करने के लिए आप कटिबद्ध हो जाइये।

महाराणा-जो गुरुदेव की आज्ञा! (सचिव से) भगवत्पाद को धर्मप्रचार मे निष्कण्टकता रहे।

मन्त्री-जो आपका आदेश।

महाराणा-और कोई आदेश दीजिये गुरुदेव!

दयानन्द-यहाँ धर्मसम्मेलन होना चाहिये।

मन्त्री-हमारा सौभाग्य होगा।

महाराणा-भगवन्! परमेश्वर की बडी कृपा है। मैं आपका शिष्य हो चुका हू अब।

दयानन्द-त्व जीव शरद शतम-तुम जीओ शत शरद प्रजेश्वर!

-नेपथ्य मे-

जो प्रात घनअन्धकार हर के पद्मो की शोभा बढा
लोगो मे द्युतिदिव्यभव्यभरके भास्वान है भासता
सप्रत्यम्बर मौलिकमण्डनकला को जो दिपाता स्वयम्
प्रौढ प्रौढ रुचि प्रतापनिलय प्रायात मध्याह्न मे ॥१०॥

दयानन्द-महाराणाजी! आप पधारिये अब!

महाराणा-जैसी गुरुवर की आज्ञा।

[सब उठ खडे होते हैं, और चले जाते है]

द्वितीय दृश्य

[स्थान-जोधपुर राजप्रासाद, समय प्रभात, कुछ राजपुरुष]

कचुकी-मुझे राजकुल से आदेश हुआ है-नन्हीजान नाम की वेश्या के नृत्य महोत्सव के लिये महालय मण्डप मे व्यवस्था करवाऊं। तो अरे अरे, ओ! सुनते हो —

सुरभित सुमनविनिर्मितमाला जालसमूहालकृत द्वारा
अलसित धवल विमल सारम्भा विलसित तोरणहार।
कण कण कमन सलिल चन्दन से सिचित धराभिरामा
महल बहुल शोभाविष्कृत कर सभूषित प्रतिधामा ॥११॥

पुरुषः-(प्रविश्य) मा तावत्, प्रतिषिद्धोऽयमुत्सवः ।

कञ्चुकी-आः केन ?

पुरुषः—स्वयं महाराजेन ।

कञ्चुकी:-कथमेतच्चिन्तितमेकन्चापतितमन्यत् ?

पुरुष.—श्रीदयानन्दः सन्यासी महाराजाय धर्मबोधं करिष्यति।

कञ्चुकी:-प्रियं नः ।

पुरुषः—कथं प्रियं नः ? भो भाग्येनाद्य द्रष्टव्यं नृत्यमासीत्
तदपि निरुद्धं महाराजेन।

कञ्चुकी:-ननु सा वाराङ्गना निराशीभूय गमिष्यति ।

पुरुषः-अथ किम् ? गतैव सा रोषकषायितवदना स्वगृहम् ।

कञ्चुकी:-समीचीनम् ! अथवा साम्प्रतं समस्तं राज्यतन्त्रमेव
वेश्यापणायमानम् । शृणु—

चेटीव प्रियमण्डली न नृपतेः पृष्ठं परं मुञ्चति
धात्रीय क्षमते प्रधानपरिषद् भ्रूभङ्गसंकोचनम् ।
वित्तोलुण्ठनका विटा इव परे पाण्डित्यमाप्ता रुचौ
वारस्त्रीव विराजते किमपरं सर्वैव राज्यस्थितिः ॥१२॥

पुरुषः-अस्तु तदावां गच्छावः ।

कञ्चुकी:-एवम् ।

[इति निष्क्रान्तौ]

तृतीयं दृश्यम्

[स्थानं योधपुरस्योद्यानवाटः, सन्ध्यासमयः दासी प्रविशति]

पुरुष–(प्रवेश करके) नहीं, नहीं अब वह महोत्सव नहीं होगा।

कंचुकी–क्यों किसने रोका है?

पुरुष–स्वयं महाराजाने!

कंचुकी–क्यों तो सोचा था और क्यों रोक दिया गया?

पुरुष–श्रीमद् दयानन्द नामक सन्यासी धर्मोपदेश करने वाले हैं।

कंचुकी–अच्छा हुआ हमारे लिये।

पुरुष–हमारे लिये क्या अच्छा हुआ? बड़े भाग्य से तो आज सुन्दर नृत्य देखने के लिये मिलने वाला था, उसे भी महाराज ने रोक दिया।

कंचुकी–वह वेश्या तो निराश होकर चली गयी होगी!

पुरुष–और क्या, वह तो क्रोध से तमतमाये मुख लेकर चली गई अपने घर!

कंचुकी–बहुत अच्छा हुआ अथवा साराही राज्यतंत्र वेश्याओं का शौकीन हो गया है। सुनो!

> चेटीसी प्रिय मण्डली न नृप की है छोडती पीठ को,
> संकोची सचिवों की सर्वपरिषद धात्री समानी वृथा,
> द्रव्यादान परायणाग्र पटुता धारे परे से विट
> बारस्त्रीसम हो गयी नृपगति क्या अन्य बातें कहें ॥१२॥

पुरुष–अच्छा, चलो चले अब।

कंचुकी–जो इच्छा।

(दोनों चले जाते है)

तृतीय दृश्य

(स्थान जोधपुर प्रासाद का उद्यान समय संध्याकाल दासी आती है)

दासी—आर्या ने आदेश दिया है मुझे दयानन्द के पाचक को बुला लाने का। तो यही ठहरकर बाट देखूं; जाता हुआ पाचक मिल जाएगा। हाय रे क्या बुरा नहीं किया राजाधिराजने उस साधु के वशीभूत होकर बेचारी हमारी स्वामिनी का? तभी तो स्वामिनी कुपित सर्पिनी बनकर स्वामी के प्राणों को हरने की इच्छा कर रही है, और एतदर्थ कुछ न कुछ क्रूर कार्य करने चली हैं। क्योंकि सामान्य कुल में जन्मी नारी तो अपना अपमान नहीं सह सकती, तो विविध कपट नाटक करने वाली अमर्याद मार्गगामिनी वारांगना की तो बात ही क्या है! वैसे तो पाचक वेश्या का नाम सुनकर नहीं आयेगा, इसलिये मैं पाचक के पड़ोसी के घर में जाकर ही बैठूं। ब्राह्मण का नाम सुनकर पाचक आ जायेगा [आगे बढ़कर) उद्यान मार्ग से अरे वही तो आ रहा है पाचक, अच्छा तो, पास में चलूं [पार्श्व में जाकर] महाराज प्रणाम करती हूं आपको!

पाचक—(देखकर) कल्याण हो तुम्हारा, कौन हो तुम?

दासी—मैं नगरवासिनी किसी अभागिनी ब्राह्मणी की दासी हूं।

पाचक—[स्वगत] कोई विधवा होगी। तो फिर?

दासी—वह प्रतिदिन व्रतोपवास करती रहती है, विना ब्राह्मण को जिमाये नहीं खाती, आज प्रतिक्षा के बाद भी कोई वेदपाठी ब्राह्मण नहीं आया।

पाचक—तो देवीजी अतिथीव्रत का आचरण करती है?

दासी—और क्या! महाराज! यदि कार्य हानि न होती हो तो आप ही आज चलिये, दक्षिणा की प्राप्ति होगी।

पाचक—[स्वगत] दक्षिणा है तो चलना चाहिये [प्रकाश में] कितनी दूर है देवी का घर?

दासी:—ननु समीप एव वर्तते !
पाचकः—एवम्, आगच्छतु भवती ।

[उभौ परिक्रामतः । पटपरिवर्तनम्]

[ततः प्रविशति 'नन्नीजान' वेश्या, सह सख्या]

सखी:—आगच्छतु भवती । तदेतद विविक्तं निकेतन प्रतिवेशिना स्वयमेव कृतम् । निषीदतु भवती, आसनमिदम् ।
नन्नी:—[उपविश्य] अपि सखि ! चिन्तितं फलिष्यति ?
सखी:—कल्पलतयेव त्वया चिन्तितं किं न फलति ? कोऽयं वराकः पाचकः ।
नन्नी:—सखि । असह्यमिदं कष्टम् । तस्य साधोरवसाने मे शान्तिर्भविष्यति ?
सखी:—अथ सोऽपि ज्ञास्यति प्रभवति काचिदिति ।

[नेपथ्ये]

इत इतो महाराजः ।

सखी—[श्रुत्वा] ननु संपन्नफलमागता मालिका पाचकेन समम्
नन्नी:—एव त्वयाऽपि किञ्चित्करणीयम् । [कर्णे एवमिव] गच्छ अनेन द्वारेण । [सखी गता]
दासी:—[प्रविश्य] इतो महाराज ! इदमस्माकं गृहम् [नन्नीं विलोक्य] पश्यतु, तिष्ठति व्रतमुपास्यमानाऽऽर्या । [नन्नी] देवि ! एष ब्राह्मणः सत्कृत ।
नन्नी:—[उत्थाय] भगवन् ! वन्दे भवन्तम् । मालिके ! आसनं वितर विप्राय । महानुग्रह एष विप्रस्य, तन्मा भूत् तस्य स्वकार्यविघातस्तदिमां पञ्चविंशतिमुद्रापूर्णां सशाटिकां दक्षिणां तस्मै प्रदाय विसर्जयतु तं महाभागम् ।

दासी—अजी समीप ही है।
पाचक—अच्छा, तो चलो।

[दोनो घूम जाते हैं। परिवर्तन होता है]

(नन्ही जान वेश्या अपनी सखी के साथ प्रवेश करती है)

सखी—पधारिये देवी। यह घर एकान्त मे है, पडोसी ने स्वय ही कर दिया है, विराजिये आप, यह रहा आसन।
नन्नी—(बैठकर) क्योरी ! सोचा हुआ कार्य हो जायेगा ?
सखी—कल्पलता के समान, आपका सोचा हुआ क्यो नही फलेगा ? इस वेचारे पाचक की क्या विसात है ?
नन्नी—सखि ! यह कष्ट तो असहनीय हो गया है। उस साधुबाबा के मर जाने पर ही मुझे शान्ति मिलेगी !
सखी—उस बाबा को भी पता चलेगा कि आप भी काई हैं।

(नेपथ्य मे)

सखी—[सुनकर] लगता है की बात बन गयी है पाचक से
नन्नी—तुझे भी तो कुछ करना चाहिये (कान मे ऐसे) इस द्वार से चली जा।

(सखी चली गयी)

दासी—[प्रविष्ट होकर] इधर से महाराज ! यह है हमारा घर, [नन्नी को देखकर] देखिये व्रतोपवास करती हुई आर्या सामने बैठी है। (नन्नी से) देवि ! ये रहे ब्राह्मण देवता इनका स्वागत सत्कार कीजिये।
नन्नी—(उठकर) भगवन भूमिदेव ! प्रणाम करती हू, आपको। मालिके ! पण्डित जी को आसन पर बिठाओ। ब्राह्मण देव की बडी भारी कृपा हुई इनके काय म कोई विघ्न नही होना चाहिये; अत इन्हे धोती के साथ मे पच्चीस मुद्रा दक्षिणा देकर विदा कर दो।

दासी:—यथादिशति ।

पाचकः-[स्वगतम्] अहो ! महानादरः सूचित । किं पञ्च-विंशतिमुद्रापूर्णा दक्षिणा ?

दासी:—महाब्राह्मण ! गृहाण भवत्या अल्पामपि समर्चाम् ।

पाचकः-[गृहीत्वा] स्वस्ति भवत्यै, मालिके ! महदौदार्यं भवत्या. ।

दासीः—महाराज ! अलमल प्रशसया । चिरसचित वित्तं समस्तमेदाययाऽतिथिसात् करिष्यते ।

पाचकः-अहो वदान्यता, अथवा दैववशात् सप्राप्य धनानि य सुकृतानि न समाचरति, किं तस्य तेन पुण्यहीनेन धनेन ?

दैवयोगेन लब्धानि धनानि विविधान्यहो ।
असभोगेन योगेन यनानीव सतां मतम् ॥१३॥

नत्री:—मालिके ! कथं चिरायते कलिका ?

दासीः—सा राजभट्ट गृहीत्वा त्वरितमागमिष्यति ।

पाचक –(स्वगतम्) कथ राजभट्टः ? अवश्य तेन श्रौतस्मात-विधान सपादनीयमनया (प्रकाशम्) भवति ! अहमपि वेद्मि कर्मकाण्डसरणि, तदाज्ञापयतु किं करणीयम् ?

दासी:—नास्ति महाराज ! विधान कर्तव्यान्तर विद्यते ।

पाचक –(स्वगतम्) पृच्छामि तदपि यदि मया नाम साधनीय ततो महानर्थलाभः (प्रकाशम्) भवति ! किं तत् कार्यं विद्यते ?

दासी:—अत्र स्थानपरिग्रहं करोतु ।

दासी—जो आज्ञा आपकी।

पाचक-ओ हो! खूब आदर किया है। पच्चिस मुद्रा की दक्षिणा?

दासी—महान् भूसुर! इनकी थोडी सी पूजा स्वीकार लें।

पाचक-(लेकर) आपका कल्याण हो! मालिके! बडी भारी उदार हैं ये देवीजी!

दासी—महाराज! प्रशसा न कीजिये! देविजी इस समस्त चिरसग्रहीत धनको अतिथियो को दे देने वाली हैं।

पाचक-आहो! कितनी श्रेष्ठता है यह! अथवा भाग्यवश उपलब्ध धन पाकर जो पुन्यार्जन नही करता, तो उसे उस उपनीत धनो का क्या लाभ है?

> देव योग से लब्ध धन, विविध भाँति के जो
> असभोग से, योग से वनसमान सत्पुरुष मत ॥१३॥

नन्दी—मालिके! कलिका को देर क्यो हो गई?

दासी—वह राजभट्ट को लेकर शीघ्र आयेगी!

पाचक-(स्वगत) क्यो राजभट्ट को? लगता है यह राजभट्ट श्रोतस्मार्त के कर्मकाण्ड करायेगा इनके यहाँ। (प्रकाश मे) देवि! मैं भी जानता हू कर्मकाण्ड तो, आज्ञा दीजिये क्या करना है?

दासी—महाराज! कर्मकाण्ड तो कुछ नही करवाना, और ही कुछ कार्य हैं।

पाचक-(स्वगत) इस कार्य के बारे मे ही पूछ देखूं, स्यात है इसमे कुछ अधिक अर्थ लाभ हो जावे। (प्रकाश मे) देवीजी! वह क्या कार्य है?

दासी—आप यही पर ठहरिये!

(इति तिष्ठति)

दासी:—इयं नः सखी ब्राह्मणी महता दुःखेन परिभूयमाना ।
नन्नी.—(मध्ये) कथ त्वयाऽपि मालिके ! यस्य कस्याग्रतो रुद्यते ?
पाचकः-कथय मालिके ! किमस्ति दुखं ? अहमपि ब्राह्मणो भूत्वा स्वजाति दुख न सहिष्ये ।
दासी:-अथ कां वृत्तिमुपजीवति महाभागः ?
पाचकः—अहं नाम राजगुरोर्दयानन्दस्य पाचकोऽस्मि; अथवा नहि, नहि शिष्योऽस्मि ।

(उभे हसतः)

नन्नीः—[दीर्घ निःश्वस्य] गच्छतु महाराजः ।
पाचक.-[स्वगतम्] कथ दयानन्दनामश्रवणेनातया नि श्वसितम ? किमपि हृद्गत नाम भवेत् ? [प्रकाशम्] ननु प्रतिपादयत्वार्या ।

नेपथ्ये

आगच्छतु राजभट्टः ।

पाचकः-आः कोऽयं राजभट्टः ?
दासी:—महाराज ! किं कथयामि हतभागा ? तेन दयानन्देन खल्वस्या अबलायाः सर्वस्वमपहृतम ! (इति रोदिति) ।
पाचकः-(स्वगतम्) अत्याहितं किमपि, आः सर्वस्वम ? सर्वस्वं हि पतिरबलायाः, किमानिष्टं समाचरितमस्याः पत्यौ दयानन्देन ? (विचार्य) अथवा श्रूयते तस्य तादस चरित्र यथा बहवः पण्डिताः पराजितास्ताडिताः दण्डिताश्च (प्रकाशम्) ननु विश्रब्धं ब्रूहि । किमस्ति करणीयम् ? आः स्वजातिविपदं न सोढाऽस्मि ।

(ठहर जाता है)

दासी—यह हमारी सहेली ब्राह्मणी बहुत दुखी है।

नन्नी—(बीच म ही, मालिके ! तू क्यो रोने लगती है सब किसी के सामन ?

पाचक—कह तो सही मालिके ! क्या दुख है उसको ? मैं भी तो ब्राह्मण होकर स्वजाति दु ख नही सह सकता।

दासी—आपकी वृत्ति क्या है, महाराज ?

पाचक—मैं तो राजगुरु दयानन्द स्वामी का पाचक हू, नही नही मैं तो शिष्य हू उनका।

(दोनो हंस पडती है)

नन्नी —[दीर्घ नि श्वास छोडकर] पधारिये महाराज।

पाचक—(स्वगत) इसने दयानन्द का नाम सुनकर क्यो नि श्वास छोडा ? मन मे कुछ तो होना चाहिये। (प्रकाश मे) आर्या प्रतिपादन तो करें क्या बात हैं ?

नेपथ्य मे

आइये आइये राजभट्ट !

पाचक—अरे यह राजभट्ट कौन है ?

दासी—क्या कहू महाराज ! इस दयानन्द ने बेचारी इस अवला का सर्वस्व छीन लिया है। (रोने लग जाती है)

पाचक-(स्वगत) कोई भयकर घटना घटी है। हु सर्वस्व ? अबलाका सर्वस्व क्या हो सकता है ? क्या बिगाडा है अबलाके पतिका दयानन्द ने ? (विचार करके) सुनाई तो ऐसा ही देता है इनके चरित्र की बात को इन्होने अनेक पन्डितो को जीत है ताडित् किया है दन्डित कराया है। (प्रकाश म) अच्छा तो ठीक ठीक बताओ क्या करना है, मुझसे स्वजाति विपदा नही जाती यह !

दासी -किं प्रतीकारं करिष्यति महानुभाव ?

पाचकः-अवश्यम् ।

दासी -(सहर्षम्) तत प्रसन्नाऽऽर्या पूर्वं सहस्त्र मुद्रा ततं पञ्चसहस्त्र च दास्यति ।

पाचक -(स्वगतम्) आ: किमिद शृणोमि, मन्ये गत दारिद्र्यम् ! (प्रकाशम्) किमस्ति तत ?

दासी -(कर्णे एवमिव)

पाचक -(सभयम) इद तत्र दुष्करम् ।

नन्नी:—मालिके ! कथ ब्राह्मण खेदयसि को नाम जगति शृणोति परस्य विपद, तत्रापि हताशाया अबलाया ? (इति रोदिति)

पाचक -(स्वगतम्) आ. किं करणीयमुचितम् ? एकत. स्वार्थ, परत्र विश्वासघात, अन्यत्रावलातिरस्कृति. (प्रकाशम्) भवति ! तथापि बाधते मा पदे पदे विह्वलता—

एतादृशेन सहसा यतिवञ्चकेन
पाप चिनोमि कुमतिर्धनलोभलुब्ध ।
वासोऽपि मे न नरके कृमिकीटपूर्णे
सभाव्यते, तदहमत्र परत्र नष्ट ॥१४॥

दासी -अलमल सशयितात्परलोकादात्मानमुपेक्षितु कातरवत् सर्वथा प्रसीदतु धासवृत्तिमपाकर्तुम । अस्ति भूयान् वित्तराशिरार्याया या सतुष्टा पुनरपि सतोषयिष्यति भवन्तम् । अथवा कस्तेऽसौ दयानन्द ?

नन्नी -मालिके ! कृत कृतमतिपरिदेवनेन । को नाम करग्रह

दासी—आप क्या प्रतिकार कर सकते हैं महाराज ?

पाचक-अवश्य करूंगा समुचित प्रतिकार।

दासी—(सहर्ष) तो प्रसन्न आर्या प्रथम एक सहस्त्र रुपये दे और पुन. पाच सहस्त्र रुपये भेंट में देंगी आपको।

पाचक-यह मैं क्या सुन रहा हूं, लगता है निर्धनता तो चली जायेगी ऐसे ! (प्रकाश मे) तो क्या कार्य है ?

दासी—(कान मे ऐसा है।)

पाचक-(सभय) यह तो कठीन है।

नन्नी—मालिके ! ब्राह्मण देवता को क्यो पीड़ा पहुंचा रही है ? कौन है ऐसा जो दूसरो की विपत्ति सुनता है और तिस पर भी हताश अबला की ? (रोने लगती है)

पाचक-(स्वगत) तो क्या करना ठीक है ? एक ओर स्वार्थ है, दूसरी ओर विश्वासघात है: तिसरी ओर अबलाका तिरस्कार है। (प्रकाश मे) देवी ! मुझे यह विह्वलता कदम कदम पर व्यथित बना रही है।

'यतिवर को भी सहसा धोखा देकर क्यो अपकर्म करूं ?
कुमति पाशमे फंसकर धनहित क्यो पापो का चयन करू ?
नरकवास मे भी कृमिकीटो भरे मुझे ना स्थान मिलेगा,
अहह. लोभवश मेरे दोनो लोको का आवास मिटेगा ॥१४॥

दासी—बस रहने दीजिये कायरो के समान स्वय को सशयित परलोक के विचारो से भ्रान्त बनाने से ! दासत्व वृत्ति को भगा दीजिये, आर्या के पास बहुत कुछ है धनराशि। सन्तुष्ट होने पर तो ये और भी देंगी आपको धन। अथवा यह तो बताइये, यह दयानन्द आपका क्या लगता है ?

नन्नी—मालिके ! अब रहने दे अधिक आक्रोश से, कौन है ऐसा

करोति पीतपरिभ्रष्टस्य सागरे ?, सत्यमिद परस्य दु.ख शीतलं कलयन्ति जनाः। .किं मेऽत्र जीवितेन ? हन्त ! तेनैव दयानन्देन मदीय सर्वस्वं जीवित हृतम्। साप्र दग्धहृदया किं करवाणि धनेन, जनेन, वीवितेन वा। तदनेन यमसहोदरेणैव सर्वदु खापहारकेण हालाहलेन करिष्यामि करणीयम् !

(इति पटान्तात हलाहल निःसारयति)

पाचक·—आः ! कथ सत्य हलाहलम ? उ ..मा । न पेय न पेय विपम् !

[*हालाहल गृहीत्वा*]

छेत्स्यते येन पापेन चन्दनद्रुममञ्जरी ।
कुठारेण करालोऽय भुजङ्गस्तेन कर्त्यते ॥१५॥

—नेपथ्ये—

एहि राजभट्ट !

सखी—(प्रविश्य) आर्य ! राजभट्टः समायातः ।

नन्नी—एवम् ! त राजभट्टम्—

पाचकः—(मध्ये) विसर्जयतु, स्वीकृत मया तत् कर्म ।

नन्नी—एव क्रियतां मालिके ! यथा महाराज आदिशति । देहि प्रथम मुद्रासहस्रम् ।

[दासी ददाति]

पाचकः— (*गृहीत्वा*) *भवति ! न भेतव्म्* (*स्वगम्*)
गत दारिद्र्य भोजनस्य (प्रकाशम्)
भवतु साधयाम्यहम्

नन्नी—मथाऽविलम्बेन भवेत्तथा करणीयम् ।

पाचकः—ननु प्रातरेव द्रक्ष्यसि ।

[मुद्रा गृहीत्वा गतः]

जो जहाज मे सागर मे पतित डूबते हुए व्यक्ति का हाथ पकड़ता है ? सत्य तो यह है कि अन्यो का दुःख देखकर लोगो को ठन्डक होती है। मेरे ऐसे जीवित से क्या लाभ है ? हाय रे ! इसी दयानन्द ने तो मेरा सवस्व छीन लिया है। जले हृदय से मैं क्या करूंगी धनन्दौलत का ? आदमियो और जीवन का ? तो यह रामसहोदर हालाहल विषसे ही सारे दुःख द्वन्द्व दूर कर लूंगी अपने अब !

(वह वस्त्र से हालाहल निकालती है)

पाचक—ओहो ! सचमुच मे यह तो विष हालाहल ही है ? ऊ··· मा मत पीना, मत पीना विष !

[हालाहल विष हाथ मे लेकर]

कटेगी पाप से जिससे, चन्दन द्रुम मजरी,
फिर से भयानक यह, भुजग उससे कटे ॥१५॥

—नेपथ्य मैं—

सखी—(प्रवेश करके) आर्ये ! राजभट आ गया है।

नन्नी—अच्छा ! उस राजभट्ट को—···

पाचक—(बीच मे ही) लौटा दीजिये, मैं करूंगा यह काम।

नन्नी—मालिके ! ऐसा कर जैसा महाराज चाहते हैं। प्रथम एक सहस्त्र रुपये दें दे इन्हे।

(दासी देती है)

पाचक—(लेकर) देवि ! डरना नही (स्वगत) भोजन की खट-पट तो मिट गयी। (प्रकाश मे) मैं काम साध लूंगा।

नन्नी—जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी करें।

पाचक—अजी कल प्रातःकाल ही देख लेना।

(मुद्राएँ लेकर चला जाता है)

सखी—*भवति ! अनादि नाटकम् ।*

दासी—निर्वहणं ननु दुष्करम् ।

नन्नी—ननु सिद्धमेव समीहितम् । पश्य—

> कार्याकार्यविवेकशून्यमनसस्तृष्णाभिभूता: परं
> येन घ्नन्ति सुत गुरु च जनक स्वभ्रातर मातरम् ।
> नानारण्यसरित्पयोधिविषमग्रावाम्बरव्यापिनो
> गाहन्ते विपद जना: प्रतिपद लोभस्य तच्चेष्टितम् ॥१६॥

एहि करणीयान्तरमाचराम:

[इति सर्वा: निष्क्रान्ता:]

[स्थान योघपुरम् मध्याह्नकाल:, श्रीदयानदकुटीतोऽविदूरे]

काशीनाथ:–(प्रविश्य) अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम् । अहो महासत्त्वता तस्य, महात्मन:, सहसा नरेश: स्वाच्छन्द्यं विहाय नम्रीभूय शिष्यायते । अहो किमाश्चर्यम् ?

शान्ताराम:–(प्रविश्य) आगतोऽस्मि राजकुलात् (विलोक्य) भो: किं करोति भवान् ?

काशीनाथ:–महाभाग ! किं श्रूयते राजकुले नवीन कुतहलम् ?

शान्ताराम:–किमस्ति कुतूहल धर्ममन्तरेण ? भ्रान्तमिव सकल राजकुल दृश्यते ।

काशीनाथ:–महाभाग ! कोऽपि मूर्त इव धर्म: समभ्यागत: ।

शान्ताराम:–अथ किम ?

सखी—देवि नाटक तो हो गया।

दासी—निर्वाह कठीन है।

नन्नी—अरी इच्छा पूरी हो गयी देख—

कार्याकार्य विवेकशून्य मनसे, तोमाभि भूतान्वर,
मालावन्धु पितात्मजो गुरुजनो को मारते है मुदा,
नामारण्य नदी पयोधि विपम ग्रामाम्बर व्याप्त जो,
ऐसों को विपद सदैव गहति सर्वत्र लोभाश्रय ॥१५॥

इधर आओ, करने का कार्य अन्दर करेंगे।

(सब चली जाती हैं)

चतुर्थ दृश्य

[स्थान जोधपुर, समय: मध्याह्न; स्वामी दयानन्द के निवास के निकट में]

काशिनाथ—(प्रवेश करके) ओहो ! बड़ा अचरज है। बड़ा अचरज है ! ! उस महात्मा की महान् आत्मियताओ देखो ! जाने क्या जादू कर दिया कि जोधपुराधीश अत्यन्त नम्र हो गये है, और सब प्रकार की लम्पटता छोडकर स्वामीजी के शिष्य बन गये है ये ! कितना आश्चर्य हैं ?

शान्ताराम—(प्रविष्ट होकर) मैं राजघराने से आ रहा हूं, (देखकर) अजि ! आप क्या कर रहे है ?

काशिनाथ—महाराज ! राजकुल मे कोई आश्चर्य की बात सुनायी दे रही है ?

शान्ताराम—धर्म की बात के अतिरिक्त और क्या सुनायी दे सकता है ? समस्त राजकुटुम्ब शान्त सा लग रहा है।

काशिनाथ—क्या धर्म साकार होकर आ गया है ?

शान्ताराम—और क्या ?

गुणेन्दुः—(प्रविश्य) अहो ब्रह्मचर्यं हि प्रथमवलम्बनं कल्याणस्य, न विस्मयाय तेजस्विनां महासत्त्वता । हन्त, धर्मप्राणस्य भारतस्य परित्राणाय मन्येऽभिनव इव कोऽपि धर्मातिशयः साक्षादाविर्भूय भूतसंघातं पाखण्डतमसः परिपाति संप्रति । भारतोदयकरः श्रीवेदसिंहध्वनिः संप्रति सर्वत्र श्रूयते ।

शैवं हन्त शिवायितं, विगलितं तुच्छं मतं वैष्णवं
शाक्तं संकुचितं, गत जिनमतं, जंबालजालाहितम् ।
खृष्टीय च चलायितं प्रशमितं मोहम्मदीयं यतो,
जातः संप्रति भारतोदयकरः श्रीवेदसिंहध्वनिः ॥१७॥

काशीनाथः—ब्रह्मचारिन् ! जाने, भवान् तस्य चरणचञ्चरीक इति ।

गुणेन्दु—ओम्, अहं त भगवन्तं दयानन्दमुपासे ।

शान्तारामः—महाराज ! अहो महिमा तस्य योगिनः ।

गुणेन्दुः—एवम्—

आशैलेन्द्रशिखालयाद् दलयताऽलीकालिदन्तावल-
श्रेणीकुम्भघटामदाद्‌यत जटाघातस्फुटत्कर्पटम् ।
स्वाहंकारकरालमोजसि महासत्त्वेन दीप्ताशयं
लोकेऽलङ्करणं यशः शवलितं सिंहेन वा योगिना ॥१८॥

काशीनाथः—अतः परं किं हृदयसंमतं भगवतो दयानन्दस्य ?

गुणेन्दु—(प्रवेश करके) अहो ! ब्रह्मचर्य ही कल्याण का प्रथम सोपान है. तेजस्वियो की महासत्वता विस्मय के लिए नही होती। आनन्द की बात है; धर्म प्राण भारत की रक्षा करने के लिये कोई महापुरुष नवीन रूप मे आविर्भूत हुआ है; और राष्ट्र मे अभिव्याप्त गाढान्धकारको मिटा रहा हैं। भारतोदय कारिणी वेदसिंह ध्वनि, दशो दिशा मे प्रतिध्वनित होती हुई सुनाई पड रही है—शैवो का भी मत प्रसार यह शान्त हो गया और वैष्णवो का भी मत आक्रान्त हो गया।

शाक्तवाद का संकोचन, जैनवाद का बौद्धवाद का
वान्त हो गया,
मुसलमान, ख्रीष्टो का भी मजहब दीप शान्त हो गया,
सम्प्रति वेदादित्य ज्योतिका प्रखर प्रकाशन कान्त हो
गया ॥१७॥

काशिनाथ—ब्रह्मचारीजी ! लगता है आप उनके चरण सेवक हैं ?

गुणेन्दु—ओम्, मैं महर्षि दयानन्द का पदपद्म सेवक हू ?

शान्ताराम—महाराज ! उन महान् योगिराज की महिमा तो बताइये।

गुणेन्दु—अच्छा, तो सुनिये—

वो योगी अथवा मृगेन्द्र अपनी तेजास्विता से अहो !
आ शैला बुधि राष्ट्र मे निजपयश ख्याति प्रचारार्यवान् !
ये हाथी मत्त सम्प्रदाय सुनके ही गर्जना नाद को,
चारो ओर भगे हैं। प्राणपण से रक्षार्थ स्वीयास्वका ॥१८॥

काशिनाथ—इसके अतिरिक्त भगवान दयानन्द को क्या अभीष्ट है ?

गुणेन्दु :–ननु व्यक्तमेव भारतोदय इति—

विद्वांसः श्रुक्तिबोधवन्धुरधियः सत्योन्मुखा श्रोत्रिया
भूपालाः प्रजया जयन्तु विहितस्वातन्त्र्यशिक्षोदयाः ।
ब्रह्मक्षत्रविशां परोपकरणं शूद्रैः समेषां समं
भूयाद् भारतवर्षगौरवयशःसंजीवनं जीवनम् ॥१९॥

नेपथ्ये

भो भो गुणेन्दुप्रभृतय श्रीदयानन्दचरणानुजीविन !
धावत धावत, योऽसौ भोजनपाचकः स भगवते स्वामिदया-
नन्दाय विषं दत्वा पलायितः ।

[गुणेन्दुर्मूर्च्छति]

उभौ–समाश्वसिहि, समाश्वसिहि महाभाग !

गुणेन्दुः—(उत्थाय) आ कोऽयमकाण्डे वज्राघातः ? आः पाप !
पाचकाधम ! किमिदमाचरितम् ?

काशिनाथः—महाभाग ! सभावयतु शीघ्रं गत्वा भगवन्तम् ।

गुणेन्दुः—एवम्, आः पाचकहतक ! दुष्टभुजङ्ग ! नराधम
जगन्नाथ [1] !

(इति गच्छति)

शातारामः—(आकाशे) कोऽयमुत्पातः ?

क्षारं निपीय सलिलं पदवीं प्रपन्ना
स्वं जीवनं सकलजीवकृते दधाना
किन्तु प्रचण्डपवमानपरपराभि-
र्मेघा व्रजन्ति निधनं क्वचिदन्तराले ॥२०॥

अहमपि तत्रैव गच्छामि । आः पाप ! पाचक !

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

पंचमं दृश्यम्

[स्थानं स्वामिनो निवासः सर्वे नरेशसहिता. शिष्या, गुणेन्दुः,
स्वामी च]

---

१ घेड इति केचिद् ।

गुणेन्दु—'भारतोदय' की भावना तो व्यक्त ही है—

विद्वान हों युति बोधशील मति के, सत्योन्मुख श्रोत्रिय,
राजा हों, जनताहितार्थ कृतिक, स्वातंत्र्य सिक्षापर,
विप्र क्षत्रिय, वैश्य का हित बढ़े शूद्रान्त्यजों का सह,
होवे भारतवर्ष गौरव यश: संजीवनी जीवनी ॥१९॥

—नेपथ्य में—

अरे, ओ गुणेन्दु आदि ब्राह्मचारियों । स्वामी दयानन्द के शिष्यों, दौड़ो, दौड़ो, वह जो पाचक था वह महर्षि दयानन्द को विष खिलाकर भाग गया है ।

[गुणेन्द्र मूर्च्छित हो जाता है]

दोनों—थोड़ा होश में तो आजावो महाराज !

गुणेन्दु—(उठकर) यह अयुक्त वेला में कैसा वज्रपात हो गया है ? ओ नीचातिनीच पापी पाचक ! तूने यह क्या कर दिया है ?

काशिनाथ—महाभाग ! शीघ्र जाकर स्वामीजी को संभालो ।

गुणेन्दु—अच्छा, अच्छा, ओ पापी पाचक ! दुष्ट सर्प ! नराधम जगन्नापि । (चला जाता है)

शान्ताराम—(आक्रोश में) यह कैसा उत्पात हो रहा है ?

क्षाराम्बु पान करके मनके पयोद
अन्यों के हेतु निजजीवन धारते ये,
किन्तु प्रचण्ड पवमान परम्परा से,
हा ! मेघ भी भर रहे कुछ दूर जाके ॥२०॥

(सब चले जाते हैं)

पंचम दृश्य

स्थान: स्वामी दयानन्द की कुटिया, जोधपुर नरेश सहित अनेक शिष्य गुणेन्दु एवं स्वयं स्वामी दयानन्द । समय-मध्यान्ह-काल: जोधपुर नरेश भगवन् ! स्वास्थ्य कैसा है अब ?

योधपुरनरेश—भगवन् ! अपि स्वास्थ्यं सम्प्रति ?
गुणेन्दुः—नरेश ! निःसारितं भगवता योगमार्गेण विषम् ।
सचिवः—तथापि चिकित्सकमतं प्रशस्यते ।
दयानन्दः—न प्रयोजनं जाने ।
नरेशः—सचिवराज ! क्व सः पाचको जगन्नाथश्चाण्डालः ?
सचिवः—प्रेषितस्तं पलायितं धर्तुं गुल्मनायकः ।

[ततः प्रविशति गुल्मनायकः पाचकं गृहीत्वा]

गुल्मनायकः—जयतु महाराजः ! एष पाचको जगन्नाथः ।

[गुणेन्दुः सरोषमुत्थाय तं गले गृहीत्वा ताडयति]

दयानन्दः—गुणेन्दो ! कोऽयं प्रकारः ?
गुणेन्दुः—पापस्य प्रतीकारः ।
दयानन्दः—मुञ्चतु भवान् तं, ब्राह्मणोऽसौ ।
सचिवः—जात्या, किन्तु कर्मणा साम्प्रतं चाण्डालः !
नरेशः—रक्षक ! गच्छ शूलमारोप्यतामयम् ।
दयानन्दः—नरेश ! मैवं ! पाचक ! गच्छ गच्छ ।
नरेशः—भगवन् ! किमिदं विधीयते ?
दयानन्दः—दयानन्दसदृशमेतत् कर्म । राजन् ! न चन्दनात् हालाहलं प्रादुर्भवतु ।
नरेशः—तर्कि विचारितम् ?
दयानन्दः—अस्य मोक्षः !

[सर्वे चकिता भवन्ति]

सचिवः—तदा सा वारवनिता राजदण्डपात्रं भवतु ।
दयानन्दः—नहि साऽपि मा दण्डपात्रं भवतु ।

गुणेन्दु—नरेश्वर ! स्वामीजी ने योगक्रिया से विष तो निकाल दिया है।

मंत्री—तोभी चिकित्सक का विचार जान लेना चाहिये।

दयानन्द-जिससे क्या प्रयोजन है ?

नरेश —सचिवराज ! वह चाण्डाल पाचक जगन्नाथ कहाँ है ?

मंत्री—राजाधिराज ! उसे पकड़ने के लिये जमादार को भेज दिया गया है।

[तभी जमादार पाचक को पकड़कर लाता है।]

जमादार–महाराज की जय हो ! लीजिये यह रहा पाचक जगन्नाथ !

[गुणेन्दु क्रोध में आता है और गले से पकड़कर पाचक को पीटता है]

दयानन्द—गुणेन्दु ! यह कौनसा ढंग है ?

गुणेन्दु—पाप का प्रतिकार।

दयानन्द-छोड़ दो इसे, ब्राह्मण है यह।

मन्त्री—जन्म से, कर्म से तो चाण्डाल है यह।

नरेश-रक्षक ! ले जाओ इसे फाँसी पर चढा दो।

दयानन्द-जनाधिप ! ऐसा मत कीजिये, पाचक ! जा, चला जा यहाँ से !

नरेश —भगवन् ! यह क्या कर रहे हें आप ?

दयानन्द—नरेश ! दयानन्द के योग्य तो यही कार्य है। चन्दन से हलाहल तो उत्पन्न नही होता।

नरेश- क्या आदेश है आपका !

दयानन्द-छोड़ दीजिये इसे। [सब चकीत हो जाते हैं]

मंत्री—तब तो वेश्या को दन्डित करना होगा !

दयानन्द-उसको भी दन्ड न दीजिये।

नरेशः–भगवन् ! विधेयोऽस्मि, भवतः, तथापि न मन्ये भवद्वचः।
दयानन्दः—राजन् ! अन्योऽयं राजमार्गाद् धर्ममार्गः।
सचिवः—ततः—
दयानन्दः—क्षम्यतामुभयोरपराधः।
नरेशः–(पाचकसे) पापिष्ठ ! पश्य, पश्य।
पाचकः—(चरणे पतित्वा) महाराज ! क्षम्यताम्।
दयानन्दः—जगन्नाथ ! गृहाणेदं धन, यथेच्छं व्रज। मा कदापि पुनः करणीयमीदृशं कर्म (रक्षकं) मुञ्च पाचकम् (मुञ्चति। पाचको धनं गृहीत्वा व्रजति)
नरेशः—(जनान्तिकं) सचिव ! पश्य पश्य भगवतो मुख, जाने *करुणापीयूष वर्षति, अथवा सूर्यशततेजोभासितम्।*
सचिवः—सोऽयं योगप्रभावः।
दयानन्दः—नरेश ! सचिवराज ! सांप्रतं राज्यकार्याय साधयन्तु भवन्तः।
सचिवः—भगवन् ! एतदत्याहितं विलोक्य न मे हस्तपाद प्रसरति साध्येषु।
दयानन्दः–स्वभावोऽयं करुणावताम्। गच्छन्तु भवन्तः।
(सर्वे प्रणामादनन्तरं गच्छन्ति)
दयानन्द–एहि विश्रमाय वत्स !

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(षष्ठं दृश्यम्)

[स्थान अजमेरनगरम्। समयः दीपोत्सवस्य सुम्मावसरः; सर्वे शिष्याः स्वामी दयानन्दश्च)

गुणेन्दुः—भगवन्, महर्षे ! अपि नाम सह्या वेदना ?
दयानन्दः–वत्स ! वेदनाबहुलं शरीरं, तत्र नास्ति ममाभिनिवेशः तथा च गुरुदत्तरामानदादिभिः सांप्रत यथाशक्यं पुनरपि समुपचारो विधीयते।

नरेश—भगवन् ! आपका शिष्य हूं, किन्तु इस विषय में आप की बात मान्य नही हो सकती।

दयानन्द-यह धर्ममार्ग है, राजमार्ग के अतिरिक्त !

मंत्री—तो पुनः—

दयानन्द-दोनो का अपराध क्षमा कर दीजिये।

नरेश—(पाचक को) अधमातिअधम ! देख, देख,

पाचक-(चरणों में गिरकर) अन्नदाता, क्षमा कर दीजिये।

दयानन्द-जगन्नाथ ! ले लो यह धनराशि, जहाँ चाहो चले आओ, आगे पुनः ऐसा दुष्कर्म मत करना। (रक्षक से) छोड़ दो जिस पाचक को।

रक्षक पाचक को छोड़ देता है। पाचक धन लेकर चल देता है।

नरेश(मंत्री के निकट) मंत्रीवर्य ! देखो देखो गुरुवर का मुख-मण्डल; करुणामृत की वर्षा हो रही है जिससे अथवा शतसहस्त्र सूर्यों की तेजस्विता प्रकट हो रही है।

मंत्री—नृपते ! योग का प्रभाव है।

दयानन्द-भूपते ! सचिवराज ! अब आप लोग राज्यकार्य करें।

मंत्री—यह देखकर मेरे हाथ पैर किसी कार्य में नही चल रहे।

दयानन्द-करुणा हृदयों का ऐसा ही स्वभाव होता है। जाइये आप सब। वत्स विश्वनाथ, इधर आओ !

[सब चले जाते हैं]

षष्ठ दृश्य

[स्थान : अजमेर नगर, दीपमालाका दिन-समय; सायंकाल स्वामी दयानन्द और सब शिष्य तथा अनुयायी]

गुणेन्दु—भगवन् ! महर्षे ! बड़ी असह्य वेदना हो रही है ?

दयानन्द-वत्स ! शरीर तो वेदना से भरा है, इस शरीर में मुझे कोई आकर्षण नही रहा है, तो भी गुरुदत्त और रामानन्दादि बहुत उपचार कर रहे हैं।

गुरुदत्तः—महर्षे ! न तादृशं मदीयभाग्यम्, संकटग्रस्तं तत्रभवन्त विलोक्य द्रवतीव सहस्रधा मे हृदयम्।

दयानन्दः—वत्स ! न शोचनीयम्। निसगक्रमोऽयं प्राणभृताम्।

> सत्यं ज्ञानमनन्तमादिविमलं ब्रह्मास्ति तत्त्वं पर
> जीवः कर्मवशस्तदीयकरुणापीयूषतोयाकुलः।
> ससारे घटियन्त्रवत् प्रचलिते भोक्ता फलानां कृती
> मोक्षानन्दभवभ्रमादुपगताश्यायाति सयाति च ॥२१॥

अथ निःशेषावसानमयः कालक्रमः।

गुरुदत्तः—भगवन् ! अस्ति नाम परमेश्वरः ?

दयानन्दः—वत्स ! ओमस्त्येव। [इति योगमहिमान दर्शयति]

गुरुदत्तः—(चक्षुरुन्मील्य, स्वगतं) आः किमिदं ज्योतिःस्पृष्टमिव मदीय चक्षुः ! अथवा दीपकोत्सवप्रज्वालिताभिर्दीपिकाभिरावृतम्।

दयानन्दः—वत्स गुरुदत्त ! वत्स रामानंद ! आर्यसमाजस्य रहस्यसूत्रस्य निक्षेपो भवत्तु ननु वर्तते। श्रीयजुर्वेदभाष्य, ऋग्वेदार्यभाष्यविवरणं, शब्दाशास्त्रव्याख्यान, सत्यार्थप्रकाशश्च यथान्यायं राष्ट्रभाषायां विशदीकर्तव्यानि।

रामानन्दः—यथा गुरोरनुशासनम्, अयमेव पन्थाः श्रेयसे।

दयानन्द.—एवम्, जानासि वत्स !

> वेदो नित्यमधीयतां तदुदितः सर्वेश आराध्यता
> निःश्रेयः समुपास्यतां तदितरत्पथः परित्यज्यताम्।
> सत्य धर्मरहस्यमार्यवरतस्तत्व पर श्रूयतां
> सत्यप्रेमतपःपरोपकृतिभिः सर्वैः सुखं स्थीयताम् ॥२२॥

गुरुदत्तः—[स्वगतम्] कथमन्यथा मनश्चैतन्यमनुभवति ?

गुरुदत्त-महर्षे ! ऐसा सौभाग्य कहाँ है। आपको पीडापीडित देखकरमेरा हृदय तो सहस्त्रो खन्डो मे खन्डित हो चुका है।

दयानन्द-पुत्र ! इसकी चिन्ता मत करो। प्राणियो का यह स्वभाविक क्रम है जन्म एव मरण—

सत्यज्ञान अनन्त आदि विमल ब्रह्मादितत्व प्रभु
जीवात्मा निजकर्म बन्धनगत प्राप्ता सुखो का तथा,
दुखो का घटियन्त्र तुल्य भव मे, भोक्ता फलो का कृति
मोक्षानन्द भवभ्रमो स रहित याता प्रयाता फली ॥२१।

यह नि शेष विनाशशील कालक्रम है।

गुरुदत्त—गुरुदेव ! क्या वस्तुत भगवान है ?

दयानन्द—ओम है तो गुरुदत्त ! [योगमहिमा दिखाते है]

गुरुदत्त—(आँख खोलकर मनही मन मे) अरे ! ज्योति स्पृष्ट से दिये मेरे नयन मे कैसे लग रहे है। कही दीपमाला भी दीपराजियो का आलोक तो नही हैं यह मेरे लोचनो मे समाया हुआ। श्री यजुर्वेदभाष्य श्री ऋग्वेदाचार्य भाष्य विवरण, शब्दशास्त्र व्याख्यान, एव सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थ आयभाषा मे प्रकाशित कर देना।

रामानन्द-जैसी गुरुदेव की आज्ञा यही कल्याण का पथ है।

दयानन्द-तो वत्स ! यह तुम्हे ज्ञात है ?

वेदो का पठनादि नित्य करना, वेदोक्त ईशार्चना
मुक्तिद्वार गहो तजो तदितर प्रथ सदा सज्जनो।
तथ्या कर्पण कीजिये सुकृतमत है तत्व ये मोक्षद
सत्य प्रम तप परोपकरणी से सौख्य पाव सभी ॥२२॥

गुरुदत्त—(स्वगत) मन मे अन्य चैतन्य की अनुभूति क्यो हो रही है ?

रामानन्द –भगवन् ! कथं वयं ते भूय: प्रियं करवाम ?

दयानन्द:–किमस्त्यधिक सर्वदाऽऽशास्यते—

वेदा भेदमपोमलीमसतमप्रत्यर्थिपाखण्डिता
खण्डोदण्डसमुज्वला द्विजवरैरायान्तु दिव्यक्रमम् ।
पृथ्वीशा: प्रजया भवन्तु कृतिनो देशोदये दीक्षिता
भूयाद् भारतधर्मवीरविजय: सौभाग्यसभूतये ।।२३।।

तथा च—

विद्या तेजो वच: शौर्यं समुत्साहयशस्विन: ।
भवन्तु क्षेमससर्गात् भारतीया मनस्विन: ।।२४।।

सर्व:—भवदनुग्रहात् सर्वं भविष्यति ।

दयानन्द.–गुणन्दो ! ज्ञायता का वेला ?

गुणन्दु:–[दृष्टवा आगत्य] महर्षे ! अस्ताभिलाषी भगवान् भास्कर: ।

दयानन्द:–एवम् । [ध्यानं कृत्वा सानन्दम्] जगत्पते ! साधु-लीला कृता भवता ! !

[सर्वे चकिता भवन्ति]

दयानन्द.—गुरुदत्त ! ननु विदित परमात्मरहस्यम् ?

गुरुदत्त:—नहि, भगवन् ।

दयानन्द – तत: पश्यन्तु भवन्तो भगवत. पावन महिमानम् ।
[योगमहिमानं दर्शयति । सहसा सूर्यमण्डलावृत भवति नदन, तन्मध्ये महर्षिमुखात् श्रूयते सर्वे.]

ओ३म् भूर्भुव. स्व: ।

'परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ।।
यत्र ब्रह्मविदो याति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे' ।।

रामानन्द—भगवन् ! हम आपके हितार्थ क्या करें ?
दयानन्द इससे अधिक क्या होगा कि हम सर्वदा आशा करते रहें—

विद्वान ब्राह्मण नित्यसत्यनिरत श्रोताव्ययार्थी रहे
वेदोद्धार विधान भव्य नव हो पाखण्डखण्डोद्यत ।
राजा भी जनता सुखार्थ सतत राष्ट्रोदयेच्छा धरे,
होवे भारतवर्ष धर्मशर्म भरित प्रज्ञान विज्ञान से ।।२३।।
और भी———विद्या आयु प्रतापोजसमुत्साह यशस्विता,
भारतीय प्रजाओं मे सद्भावोदार्यता ।

सब लोग-आपके आशीर्वाद से सब हो जायेगा ।
दयानन्द-गुणेन्दु, क्या समय हुआ है ?
गुणेन्दु—(देखकर लौट आया) महर्षे ! भगवान भुवन भास्कर अस्ताचलगामी हो रहा है ।
दयानन्द-अच्छा, [ध्यानावस्थित होकर सानन्द) विश्वेश्वर ! जगदीश्वर । अच्छी लीला दिखाई आपने !

[सब चकीत होते हैं]

दयानन्द-पता चला परमात्मा के रहस्य का ?
गुरुदत्त—नही महाराज ।
दयानन्द—तो देख लो उस परमेश्वर की महिमा को, (योग महिमा दिखाते है । सहसा सूर्यमण्डल सी आकृति उभरती है, स्वामीजी के देदीप्यमान् मुख पर । सब महर्षि के मुख मे सुनते है)

ओ३म भूर्भुवः स्वः ।
परित्राणाय साधूनां विनाशायाच दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ।।
यत्र ब्रह्मविदोयान्ति दीक्षया तपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्मदधातु मे ।।

ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो !

ओ३म्, ओ३म् ओ३म् !

सर्वे—आश्चर्यमाश्चर्यम् । जय परमात्मने ! जय जय महर्षे, दयानन्द ! ! जय ! जय जय !!

अग्ने नय सुपथा—ओ३म् क्रतो स्मर ! ·

गुरुदत्त—आः किमिदं पश्यामि ? अथवा परमात्मदर्शनम् ? जय महर्षे ! जय, जय वेदोद्धारक ! ! जय ! ! !

[सर्वे साञ्जलयो भवन्ति]

गुरुदत्तः—भो भो आर्यपुरुषाः ! शृणुत—

अङ्कुरितः कलिकल्मषहारिणि कुमारभट्टे यः ।
पल्लवितः श्रीशङ्करहृदये सदये समन्ततः पुण्यः ।।२५।।

विरजानन्दमहामुनिसविदि पुष्पितः परं प्रकाशेन ।
सोऽयं श्रुतिसुरविटपी फलितः करुणाकरे दयानन्दे ।।२६।।

जय परमपावन, भूतभावन, सच्चिदानन्द !
विश्वनायक ! जय, जय महर्षे ! दयानन्द ! जय ! !

[तेजोमण्डलमधिकं चकास्ति दिव्यमन्त्रजपः]

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

[सर्वे चमत्कारं पश्यन्ति । पटाक्षेपः]

दयानन्दयशोगङ्गा पुनातु भुवनत्रयम् ।
इति मृत्युञ्जयो नाम पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।।

ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो !

ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

सब लोग-आश्चर्य, आश्चार्य, भगवान की जय हो, महर्षि की जय हो, विजय हो ! दयानन्द की जय हो ! जय हो !! जय हो !!!

गुरुदत्त—अरे मैं यह सब क्या देख रहा हू ? क्या सही तो प्रभु का दर्शन नही है ? जय महर्षे ! जय वेदोद्धारक !!! जय !!!

[सबके हाथ जुड़ जाते हैं]

गुरुदत्त—सुनिये, सुनिये एकत्र हुए आर्यो !—

जो पुण्य अंकुरित हुआ कुमारिल में कलि मलनाशी,
हुआ पल्लवित शंकर के सुहृदय हृदय पात्र में भासी,
विरजानन्द दन्डी की वाणीने पुष्पित किया जिसे था,
भव्य ज्योति से वही वेद तरु दयानन्द में फलित हुआ था,
जय हो परमपुनीत जग पावन, सच्चिदानन्द ! हे जय हो,
विश्वनाथ हे ! जय जय ऋषिवर ! दयानन्द ! तेरी जय हो,

[मुखमन्डल से तेज जलने लगता है, अन्तर्जाप हो रहा है ऋषिका]

ओ३म् भूर्भुव:स्व: । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो योन: प्रचोदयात् ।

[सब चमत्कार का दर्शन करते हैं । पटाक्षेप]

'दयानन्द यशोगाथा, हरे कल्मष विश्व का,
यह मृत्युंजय नामक पंचम-अंक समाप्त हुआ ।

इति महर्षिदयानन्दस्वामिना शिष्यपण्डितभीमसेनशर्मणामन्ते-
वासिना वेदशास्त्रसम्पन्नाना गुरुवर बालकृष्णशर्मणा
शिष्याणा गुर्जरराष्ट्रललामभूताना दर्शनसार्व-
भौमाना मोहमयीगुरुकुलाचार्यपादानां
श्रीमत्पण्डितमायाशङ्करशर्मणा कृपाभा-
जनशिष्यवरेण प्रतिष्ठितस्नातक-
सत्यव्रतेन विरचित पावन
महर्षिचरितामृत नाम
नाटक पूर्तिमगात् ।

"ओमिति स्फुरदुरस्यनाहत, गर्भगुम्फितसमस्तवाङ्मयम ।
दन्ध्वनीति हृदि यत्पर पद तत्सदक्षरमुपास्महे मह ।।"

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय ।। यजुर्वेद

*

महर्षि दयानन्द स्वामी के शिष्य पंडित भीमसेन शर्मा के अंतेवासी, वेद वेदांग सम्पन्न, गुरुवर्य बालकृष्ण शर्मा के शिष्य, गुर्जर राज्य के ललामभूत, दर्शन सार्वभौम, मुम्बईस्थ गुरुकुल के आचार्यवर्य श्री पंडित मायाशंकर शर्मा के कृपापात्र शिष्यरत्न प्रतिष्ठित स्नातक सत्यव्रत लिखित; एवं गुरुकुल के भू. पू० आचार्य 'संस्कार पथ' के सम्पादक' आचार्य विभुदेव शास्त्री ने राष्ट्रभाषा में अनुवादित किया।

यह पवित्र महर्षि दयानन्द चरित नाटक समाप्त हुआ ! ओ३म् इस प्रणव रूप में जो स्वतः हृदय में निरंतर सुच्चरित हो रहा है, जिसने अंदर मे समस्त वाङ्मयको गूंथ (एक सूत्रित कर) रखा है, और जो हृदय मे बाहर गूंज रहा है, उस अविनाशी परम तेज की हम उपासना करते हैं।

उस ही का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य मृत्यु दुःख से छूट जाता है।

उसके साक्षात्कार के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नही है। इति यजुर्वेदः

अभ्यर्थना

दूरादसूया निघूंय कृपा कृत्वा ममोपरि ।
रचितमृषिभक्त्येदं विलोक्य तद्बुधोत्तमैः ॥१॥
दोषत्वमुज्ज्वलगुणा अपि यान्ति येषु,
तैरुन्नते: किमथवेह तिरस्कृतेः किम् ?
दोषोऽपि येषु गुणतामुपयाति भूयां-
स्तेभ्यो नमोऽस्तु सततं भुवि सज्जनेभ्यः ॥२॥

दृष्टिदोषेण सीसकाक्षरभङ्गाद्वा यदि कुत्रचित्स्थाने अशुद्धिः सम्भवेत्सा सदयीभूयानूचानैः क्षन्तव्येत्यभ्यर्थयते-

रचयिता स्नातक सत्यव्रत: ।

अभ्यर्थना

जो सद्गुणों को जन दुर्गुण मानते हैं,
उनके प्रसाद अवसाद का न मूल्य,
संसर्ग से विगुण सद्गुण हों जिन्हों के,
वे ही महोदय नमस्य सदा धरा पै ॥

दृष्टि दोषों से, धातुज अक्षरों के भग से जहाँ-जहाँ पर अशुद्धियाँ हुई हो, तो सदय हृदयी महाशय एतदर्थ मुझे क्षमा कर कृतार्थ करें।

इति प्रार्थयिता स्नातक: सत्यव्रत (ग्रन्थकार)

श्री दयानन्द दिग्विजयादि महाकाव्य के प्रणेता आर्य
कवीन्द्र महाभाग श्री मेधाव्रत मुनि महोदय
द्वारा प्रेषित आशीवचन—

श्रीमन् वेदविशारदाय सुकवे ! सत्यव्रतस्नातक !
बारम्बार पढा 'महर्षि चरितम्' आनन्द आया मुझे;
आशातीत रसान्विताधिकतम प्रावीण्य दर्शी,
तो भी तृप्ति न पासका सुरुचिता स्वामी दयानन्द की !
सौराष्ट्र के मणिसमान महानृषिका
है चारुचित्ररमणीय चरित्र लेख,
सौराष्ट्र के ही कवि ने ऋषिका लिखा है,
भक्ति प्रसाद गुणगुम्फित आर्यवृत्त।:
हितकरी जगको, जगके गुरु,
सुकृतिशीर्षयतीश्वर की कृति,
तव पवित्रचरित्रमयी शुभा,
पढ निमग्न मुदम्बुधि मे हुआ ॥
अभिनन्दन अर्पित है मेरा, सुरवाङ्मय नाटक लेखक को,
ऋषिवर्यके ऋणसेउऋ्ण हुए ऋषितर्पण से कविराज सुधी ॥४
साहित्यरत्न पदवीधर, सत्यसन्ध,
सत्यव्रत प्रबल वैदिक भक्ति शील।
सरस्तती राधन कीर्ति कौमुदी,
विस्तारयेन प्राज्ञमनोहरां प्रभो ॥

अभ्युदयाभिलाषी
मुनि मेधाव्रताचार्य मुख्याचार्य आर्यकन्या
गुरुकुलस्य दिल्लीस्थनरेला नगर वर्तिनः
दिनांक १-४-१९६४